भारतीय नवजागरण के सन्दर्भ में हिन्दी और बंगला साहित्य

(हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद की पीएच. डी. (हिन्दी) उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध)

१९९९

प्रस्तुतकर्त्री

चन्द्रा मुखर्जी,

एम. फिल्.

विभागाध्यक्ष

प्रो. नूरजहाँ बेगम

एम. ए. (हिन्दी) एम.ए. (संस्कृत) पीएच डी , डी. लिट्,

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,

हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद-500 046 (आ प्र.)

निर्देशक

प्रो. सुवास कुमार

पीएच. डी.

हिन्दी विभाग,

हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद-500 046. (आं.प्र.)

Name of the research Scholar : CHANDRA MUKHERJEE
Department / Centre : HINDI, HUMANITIES
University of Hyderabad

This is to certify that I, Chandra Mukherjee have carried out the research embodied in the present thesis for the full period prescribed under the Ph.D. ordinances of the University.

I declare that no part of this thesis was earlier submitted for the award of any research degree or diploma to any University.

Signature

Date:
Place:

S.C. KUMAR
Prof [illegible] Dept. of Hindi
Central University [illegible]
Hyderabad [illegible]

(RESEARCH SUPERVISOR)

(HEAD OF THE DEPARTMENT / CENTRE)
Prof. & Head, Dept. of Hindi
School of Humanities
University of Hyderabad
HYDERABAD-500 134

(DEAN OF THE SCHOOL) 13/10 95
DEAN
SCHOOL OF HUMANITIES
University of Hyderabad
Hyderabad-500 134

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

अध्याय - 1

पुनर्जागरण के आशय तथा भारतीय संदर्भ

भूमिका 5-12

परिवर्तन होने के कुछ मुख्य कारण 12-31

दार्शनिकों एवं चिंतकों का प्रभाव

वैज्ञानिक आविष्कार

भौगोलिक अन्वेषण

शहरों एवं मध्यम वर्गों का उदय

प्रभावशाली व्यक्तित्व का योगदान

पुनर्जागरण के स्रोत एवं उसका विस्तार

साहित्य में नवजागरण

कला में नवजागरण - चित्रकला/मूर्तिकला/वास्तुकला/संगीत

नवजागरण का भारतीय संदर्भ 31-79

रीतिकाल में अंधकार युग की अवधारणा

उन्नीसवीं सदी का नवजागरण

1. राजनीतिक परिस्थितियाँ

2. सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियाँ

ब्रह्मसमाज/आर्य समाज/प्रार्थना समाज/थियोसोफिकल
सोसायटी/रामकृष्ण मिशन/हिन्दुओं का पुनरुत्थान

3. सांस्कृतिक परिस्थिति

शिक्षा/प्रेस/यातायात के साधन/

संगीत - प्राचीन काल/मध्य काल/आधुनिक काल

चित्रकला

साहित्य में नव जागरण

बंगला साहित्य में/असमी व उड़िया में/मराठी में/

गुजराती में/पंजाबी उर्दू और हिंदी में/तमिल में/

तेलुगु में/कन्नड़ में/मलयालम में

अध्याय - 2

हिंदी तथा बंगला के साहित्य का परस्पर संबंध - भाषा की परम्परा, साहित्यिक, परम्परा, हिंदी और बंगला साहित्य का एक दूसरे पर प्रभाव -

1. भाषा की उत्पत्ति और वर्गीकरण 81 - 99

ध्वनियों के आधार/भारोपीय परिवार/भारतीय आर्य भाषा/मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा/ आधुनिक भारतीय आर्य भाषा

2. हिंदी भाषा का इतिहास 99 - 103

प्राचीन काल/मध्य काल/आधुनिक काल

3. बंगला भाषा का विकास 103 - 107

आदि काल/मध्य काल

पृष्ठ संख्या

1· संक्रांति मध्य काल

2· पूर्व मध्य काल

3· उत्तर मध्य काल

आधुनिक काल

4· हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास 107 - 120

आदि काल/भक्ति काल {पूर्व मध्य काल}/रीति काल/आधुनिक काल

5· बंगला साहित्य के इतिहास की एक झलक 120 - 130

प्रारंभिक अवस्था/धर्म मंगल काव्य/मनसा मंगल काल परम्परा/चंडी मंगल/सत्रहवीं शताब्दी का साहित्य/आधुनिक युग

6· हिंदी बंगला {भाषा और साहित्य} का परस्पर संबंध 130 - 161

अ· भारतेन्दु युग

आ· द्विवेदी युग

इ· छायावाद युग

मित्राक्षर : बलाका या स्वर छन्द

मिलहीन छन्द

सुमित्रानन्दन पंत

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

ई· छायावादोत्तर युग

उ· नई कविता

7· निष्कर्ष 161

पृष्ठ संख्या

अध्याय - 3

पुनर्जागरण का बंगला और हिंदी साहित्य पर प्रभाव

प्रस्तावना 163-165

नवजागरण के संदर्भ में बंगाल 165-168

समाज सुधार : नारी उत्थान 169-181

धार्मिक रूढ़ियों का निराकरण एवं राजा राम मोहन राय
राममोहन राय एवं ब्रह्मसमाज/देवेन्द्रनाथ एवं ब्रह्मसमाज/
प्रार्थना समाज/आर्य समाज/रामकृष्ण परमहंस/विवेकानन्द

बंगला वाङ्मय में आधुनिकता का जयघोष 181-198

ईश्वर विद्यासागर - भाषा संस्कारक एवं समाज सुधारक
अक्षय कुमार दत्त/आधुनिक बंगला काव्य/बंगला उपन्यास/
आधुनिक युग में बंगला नाटक/रवीन्द्रनाथ

हिंदी प्रदेश में नवजागरण - 1857 का स्वाधीनता आंदोलन - 198-200

1857 से पूर्व अंग्रेजों से संग्राम - 200-205

पटना में सिपाही विद्रोह/बंगाल में सिपाही विद्रोह
पागल पंथी सम्प्रदाय/बंगाल में सन्यासी आन्दोलन/

महाराष्ट्र में राष्ट्रीय चेतना का उदय/आंध्र में विद्रोह
कर्नाटक प्रदेश में विद्रोह/केरल में विद्रोह/मद्रास में विद्रोह/
पंजाब में विद्रोह/बिहार में विद्रोह/आसाम में विद्रोह/
उड़ीसा में विद्रोह/गुजरात में विद्रोह

पृष्ठ संख्या

1857 - सिपाही विद्रोह, स्वाधीनता संग्राम या सामंती युद्ध 205 - 208

1857 के उपरांत नवीन परिस्थितियां 208 - 239

भारतेन्दु युगीन कविता/भारतेन्दु युगीन नाटक/भारतेन्दु युगीन हिंदी निबंध/भारतेन्दु युगीन उपन्यास/भारतेन्दु युग में पत्रकारिता/अध्ययन का निष्कर्ष

अध्याय - 4

स्वाधीनता और उपनिवेशवाद के प्रश्न तथा हिंदी और बंगला साहित्य

भूमिका

भारत में नवजागरण क्या अंग्रेजी उपनिवेशवाद से संभव हुआ ? 250 - 254

नवजागरण में दो चिन्ता धाराओं का विकास 254 - 256

भारतेन्दु युग में देश भक्ति एवं राज भक्ति 256 - 258

बंगला साहित्य में देश भक्ति एवं राज भक्ति 258 - 259

अंग्रेजी औपनिवेशिक नीतियों के प्रति जागरूकता 259 - 260

अंग्रेजी उपनिवेशवाद और भारतीय नवजागरण 260 - 264

द्विवेदी युग : औपनिवेशिकता के प्रति प्रतिक्रिया 264 - 268

ब्रिटिश उपनिवेशवादी काल 268 - 269

हिंदी व बंगला प्रांत में उपनिवेशीकरण की स्थिति 269 - 271

स्वत्वबोध की भावना तथा निज भाषा के प्रति प्रेम 272 - 274

द्विवेदी युगीन साहित्यकारों पर [illegible] का आरोप 274 - 276

द्विवेदी युगीन नवजागरण का अंतर्विरोध 277 - 278

द्विवेदी [illegible] की स्थिति 278 - 279

	पृष्ठ संख्या
बदलते युग का साहित्यिक परिवेश	279 - 281
छायावादी युग की राजनीतिक पृष्ठभूमि	281 - 284
छायावादी साहित्य पर पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव - मतभेद	284 - 294
हिंदी एवं बंगला साहित्य में रोमांटिक प्रवृत्तियाँ	295 - 304
छायावादोत्तर साहित्य में उपनिवेशवाद विरोधी प्रवृत्ति	304 - 313

अध्याय - 5

प्रजातंत्र और समाजवाद संबंधी विचारों की हिंदी तथा बंगला साहित्य में अभिव्यक्ति

भूमिका	320 - 321
प्रजातंत्र का अर्थ व परिभाषा/प्रजातंत्र का उद्भव	321 - 333
स्वतंत्रता से पूर्व हिंदी एवं बंगला कविता प्रगतिवाद/प्रयोगवाद	334 - 379
स्वातंत्र्योत्तर परिदृश्य	379 - 394
समाजवाद बनाम लोकतंत्र/साठोत्तरी बंगला एवं हिंदी कविता	
संकल्प का स्तर और मुक्ति संग्रामी कविता	
शिल्पगत नवीनता	
उपसंहार : अध्ययन का निष्कर्ष	395 - 403
सहायक ग्रंथ सूची	404 - 414

प्राक्कथन

बीसवीं शती की पूर्व संध्या में राजनैतिक रूप से परतंत्र किन्तु आत्मिक रूप से चिरसक्षम भारत में नवजागरण का संदेश आया । यह नवजागरण या पुनर्जागरण पाश्चात्य रेनेसां की तर्ज पर गढ़ा गया शब्द था किन्तु जिसका संदर्भ पूरी तरह भारतीय है । 14वीं - 16वीं शती के मध्य यूरोप में घटित होने वाला रेनेसां का यह महान आन्दोलन, समाज साहित्य, विज्ञान एवं कला जैसे क्षेत्रों में उन्नति की एक असाधारण लहर के रूप में मानों तीव्र गति से फैलने लगा और धीरे धीरे इसने समूचे विश्व को प्रभावित किया । भारत के कुछ विद्वानों ने यूरोप की इस घटना का समानान्तर रूप ढूँढ़ते हुए आधुनिक युग में भारत में होने वाले राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक परिवर्तनों को पुनर्जागरण तथा नवजागरण का नाम दिया । परन्तु भारतीय नवजागरण, यूरोपीय नवजागरण से कई दृष्टि से भिन्न है । जो लोग यह मानते है कि भारतीय नवजागरण यूरोपीय नवजागरण के समान है उनका यह कहना है कि जिस प्रकार नवजागरण की चेतना पहले इटली में आरंभ होकर सारे यूरोप में फैली उसी प्रकार भारत में नवजागरण सबसे पहले बंगाल में आया उसके बाद दूसरे प्रांतों में फैला । इस दृष्टि से देखा जाय तो प्रश्न उठता है कि बंगला नवजागरण से क्या हिंदी नवजागरण प्रभावित है ? यदि हां तो किस दृष्टि से भिन्न है । नवजागरण, उपनिवेशवाद, स्वाधीनता के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन, [illegible] राष्ट्र का स्वप्न [illegible] हिंदी व [illegible] साहित्य का [illegible] रहा है । [illegible] [illegible] था । [illegible] दौरान [illegible] पाया गया ।

हिंदी और बंगला नवजागरण के अध्ययन क्रम में इस शोध प्रबंध को पाँच भागों में विभाजित किया गया । प्रथम अध्याय में पुनर्जागरण से आशय और भारतीय संदर्भ में पुनर्जागरण क्या है, इसकी व्याख्या की गई है । द्वितीय अध्याय में हिंदी और बंगला साहित्य के परस्पर संबंधों का विवेचन किया गया है । तीसरे अध्याय में उन्नीसवीं शताब्दी के हिंदी और बंगला साहित्यों का पुनर्जागरण के संदर्भ में अध्ययन किया गया है । चौथे अध्याय में अंग्रेजों के उपनिवेश बने भारत में स्वाधीनता और राष्ट्रीयता की समस्या पर विचार किया गया है । पाँचवें एवं अंतिम अध्याय में प्रजातंत्र तथा समाजवाद सम्बन्धी विचारधारा के सम्बन्ध में हिंदी एवं बंगला साहित्य का अध्ययन किया गया है । अत्यन्त व्यापक विषय को संक्षेप में समेटने के प्रयास में सफल होने का दावा तो नहीं कर सकती हूँ परन्तु यह शोध कार्य करने का संतोष अवश्य मिला है ।

प्रस्तुत प्रबंध को पूर्ण करने में जिन विद्वानों और गुरूजनों का सहयोग था, उनमें सर्वप्रमुख है मेरे श्रद्धेय गुरूवर प्रो॰ [illegible] तथा मेरे पूजनीय माता-पिता जिनको मेरा शतकोटि प्रणाम समर्पित करती हूँ । इनके अलावा डीन [मानविकी] प्रो० वे॰वेंकटरमण राव जी व हिंदी विभागाध्यक्ष प्रो॰ नूरजहाँ जी के सहयोग भी शामिल हैं जिनके लिए मैं उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना चाहती हूँ । मेरे शोध कार्य को पूर्ण करने में जिनका असाधारण रूप से सहयोग रहा है वे हैं मेरे पति श्री चित्तरंजन राउतराय जिनकी आत्मीयता एवं असीम प्यार के बिना यह शायद ही पूर्ण हो सकता था । उनके लिए क्या प्रकट करूँ......? मैं अपना जीवन समर्पित करना चाहती हूँ । मेरी छोटी सी उत्पन्न है तो मुझसे छोटी पर वही मेरी प्रेरणा रही

स्रोत है जो हर कदम पर मुझे प्रेरणा देती है, मुझे उत्साहित करती है, इस अनोखी लड़की के लिए मेरे दिल में असीम प्यार है, उसे मेरा स्नेहाशीर्वाद ।

मैं उन सभी गुरूजनों एवं दोस्तों के प्रति आभार प्रकट करना चाहती हूँ जिन्होंने इस मंगल कार्य को पूर्ण करने में मेरी मदद की ।

विनीता चन्द्रा मुखर्जी

अध्याय - 1

1. पुनर्जागरण से आशय : भारतीय संदर्भ

अध्याय - 1

1. पुनर्जागरण से आशय : भारतीय संदर्भ

काल निरवधि है । इसकी निरविच्छिन्न धारा तीव्र गति से बहती है । केवल बोध की सुगमता के लिए मानव मनोविज्ञान कालावधि या इतिहास को विभाजित करता है । काल विशेष का सटीक अध्ययन तभी संभव हो सकता है जब हम इतिहास की मौलिक एकता सम्बन्धी अवधारणा लेकर चलें । इतिहास घटनाओं का अजस्र स्रोत होता है, जो अतीत से आती हुई परम्परा को हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है और साथ ही हमारे वर्तमान को आने वाली (भविष्य की) पीढ़ियों तक वहन कर ले जाता है । इसी तथ्य को आधार मानकर प्रायः हम काल को कुछ इस तरह से विभाजित करते हैं - प्राचीन युग, मध्य युग एवं आधुनिक युग । यद्यपि इस विभाजन में कृत्रिमता परिलक्षित होती है परन्तु आधार [illegible] वर्तमान को

जड़ें अतीत की गहराइयों में इतनी धंसी हुई होती हैं कि अतीत का उल्लेख किये बिना आधुनिक युग का अध्ययन असंभव लगने लगता है। घटनाओं में परिवर्तन व वैचारिक आन्दोलन अचानक होने वाली बात नहीं है - इसकी पृष्ठभूमि धीरे धीरे तैयार होती है। इतिहास को कई बार ऐसे परिवर्तनों की राह से गुजरना पड़ा जिसने न केवल अपने वर्तमान को स्तब्ध कर दिया बल्कि अतीत और भविष्य को भी अत्यधिक प्रभावित किया। ऐसी स्थिति कभी-कभी ही आती है जब मानव अपनी एकरूपता को त्यागकर विकास-पथ की ओर उन्मुख होता है और इतिहास एक नये मोड़ को प्राप्त कर लेता है। ऐसी ही एक घटना थी जिसे कुछ इतिहासकारों ने रेनेसाँ का नाम दिया। इसे शास्त्रीय अध्ययन का पुनर्निर्माण भी कहा जा सकता है। "रेनेसाँ" शब्द से आशय पाश्चात्य सभ्यता के इतिहास में उदय होने वाले उस नवीन युग से है जो मध्य युग के अन्त में घटित हुआ था।[1] यूरोपीय, खासतौर से इटली की सभ्यता और संस्कृति ने 14 वीं - 16 वीं शती अर्थात् परवर्ती मध्यकाल में जो रूप ग्रहण किया उसे "पुनर्जागरण" का नाम दिया गया।[2] मूलतः इस फ्रेंच भाषा के शब्द का सम्बन्ध लैटिन के 'रेनासर' तथा इटालियन 'रिनासिमेन्टो' से निकट का था जिसका अर्थ पुनर्जागरण था। यह शब्द पुनरुत्थान, पुनर्जन्म, प्रस्फुटन आदि

- -

1. The term Renaissance is widely understood to denote a new age in the history of Western Civilization at the end of the Middle Ages - Encyclopaedia Britannica Vol.15, Page 660

2. Renaissance is usually applied to the civilization of [illegible], particularly that of Italy, in the period from the 14th through the 16th centuries - Encyclopaedia [illegible] Vol.[illegible], Page [illegible].

अर्थों को द्योतित करता है ।[1] आगे चलकर व्यापक ऐतिहासिक अर्थ में इसका प्रयोग होने लगा ।

"मानक हिंदी कोश" के अनुसार पुनर्जागरण का अर्थ है : "1. सोये हुए का फिर से जगना 2. यूरोप के इतिहास में 14वीं, 15वीं और 16 वीं शताब्दी की वह स्थिति जिसमें कला, ... विद्या और साहित्य का नये सिरे से अनुसंधान और प्रचार होने लगा था, और जिसके कारण मध्य युग का अन्त तथा आधुनिक युग का आरंभ हुआ था । "रिनेसांस"[2] हिंदी विश्वकोश में यूरोप के संदर्भ में बताया गया है कि "पुनर्जागरण का अर्थ पुनर्जन्म होता है । मुख्यत: यह यूनान और रोम के प्राचीन शास्त्रीय ज्ञान की पुन: प्रतिष्ठा का भाव प्रकट करता है । यूरोप में मध्य युग की समाप्ति और आधुनिक युग का प्रारंभ इसी समय से माना जाता है । इटली में इसका आरंभ फ्रांसिस्को पेत्रार्क (1307 - 1374) जैसे लोगों के काल में हुआ, जब इन्हें यूनानी और लैटिन कृतियों में मनुष्य की शक्ति और गौरव सम्बन्धी अपने विचारों और मान्यताओं का समर्थन दिखायी दिया । 1453 में जब कांस्टेंटिनोपल पर तुर्कों

- -

1. Renaissance, rĕn-ĕ-säns', originally a French word whose literal meaning is rebirth (Lat. renascor, Ital. Rinascimento), the term has been applied metaphorically to a wide variety of phenomena ranging from an experience in the life history of an individual to the characterization of the culture of an entire epoch. Although "renaissance" is used to describe cultural 'revivals' or 'flowerings' of widely different times and places ---- these usages are derived by analogy from the most common meaning of the word - Encyclopaedia Americana - Vol. 3 - Page 367b.

ने अधिकार कर लिया तो वहाँ से भागने वाले ईसाई अपने साथ प्राचीन यूनानी पाण्डुलिपियाँ पश्चिम लेते गये । इस प्रकार यूनानी और लैटिन साहित्य के अध्येताओं को अप्रत्याशित रूप से बेजेंटाइन साम्राज्य की मूल्यवान विचार सामग्री मिल गयी । चार्ल्स पंचम द्वारा रोम की विजय {1527} के पश्चात पुनर्जागरण की भावना आल्प्स के पार पूरे यूरोप में फैल गयी ।"[1] "उस समय यूरोपीय संस्कृति में एक नये जीवन का संचार हुआ था, जिसका वेग लगभग 16वीं शती तक बना रहा । यह युग मोटे तौर पर दो सौ वर्षों {1350-1550 ई॰} का माना जाता है। इस युग में नये नये अन्वेषण और आविष्कार हुए, धर्म और दर्शन का नया संस्करण किया गया, कला और विज्ञान की नयी साधना का समारंभ हुआ, राजनीति और समाज व्यवस्था में मौलिक क्रांति का सूत्रपात हुआ । ..... इस प्रकार यूरोप का एक प्रकार से नया जन्म हुआ और इसी कारण उस युग को "नव जन्म" या "पुनर्जन्म" के पर्याय भूत "नवजागरण" या "पुनर्जागरण" {रेनेसाँ} का अभिधान प्रदान किया गया है । "नवजागरण" की कल्पना के प्रचार का श्रेय इटली के नवजागरण के प्रथम इतिहासकार बर्कहार्ट को है, यद्यपि रेनेसाँ {नवजागरण} शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम प्रसिद्ध फ्रान्सीसी इतिहास दार्शनिक मिशेलेट ने 19वीं शती के पूर्वार्द्ध में किया था ।"[2]

एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका में रिनेसाँस के बारे में जो विवरण दिया हुआ है उससे पुनर्जागरण की अवधारणा संकुचित एवं

- -

1. हिंदी विश्वकोश : खंड-7, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी पृ॰ 240

2. [illegible] पृ॰313

सीमित हो जाती है । उसमें कहा गया है -"यूरोप में मध्यकाल के गमन आधुनिक काल के आगमन के बीच रिनेसांस स्थित है, विशिष्ट रूप से इटली जगत में और उसमें भी कला और शिक्षा की दुनिया में पुनर्जागरण का अभिधेयार्थ देता है । पुनर्जागरण की अवधारणा के इतिहास के रूप में वही शाश्वत बोध रहा - पुनर्जन्म एक पौराणिक गुत्थी । पुनर्जन्म का विचार क्लासिकल और क्रिश्चियन दोनों ही स्रोतों में है । ग्रीक और रोमन माइथोलाजी और धर्म में ऐसे अनेकों उदाहरण है, जिनमें कोई चमत्कारिक शक्ति किसी नायक में प्रवेश कर जाती है, इस तरह शक्ति के पुनर्नवीकरण और पुनर्प्रतिष्ठा जब बड़े पैमाने पर लागू होती है, तब सामाजिक चरित्र ग्रहण कर लेती है जैसे "पुरागणतन्त्रों" की पुनर्प्रतिष्ठा ।"[1]

पुनर्जागरण ने ऐसा क्या कर दिया था जो मध्य युग से अलग था ? इसके लिए पुनर्जागरण के इस युग का किंचित विश्लेषण करना होगा जिससे मध्य युग से इसका अन्तर स्पष्ट हो जाय । वस्तुतः यह ऐसा बौद्धिक, साहित्यिक, कलात्मक एवं वैज्ञानिक आन्दोलन था जिसने मानव के मानसिक क्षितिज को व्यापकता प्रदान की है । इसमें अतीत

- -

1. The idea of rebirth was common both in classical and Christian sources. Greek and Roman mythology and religion contained frequent instances of sudden and miraculous renewals of power in the lives of individual heroes. Also on a wider scale it was thought that a whole society could be renewed or restored, and the measures introduced by Augustus at the beginning of the Roman Empire were advanced as a restoration of the ancient republic - Encyclopaedia Americana, Vol.23, Page 367b

के प्रति आकर्षण एवं वर्तमान को जान लेने की अभिलाषा व्यक्त हुई थी । इसका श्रेय मानव की उस जिज्ञासा प्रवृत्ति को है जिसमें बौद्धिक तथा भौतिक आध्यात्मिक प्रगति होती है ।

पुनर्जागरण (या नवजागरण) साहित्य एवं कला में तो अभिव्यक्त हुआ ही था परन्तु तत्कालीन मानव का आर्थिक जीवन भी पहले से सुधर चुका था । उदाहरण स्वरूप कृषि के क्षेत्र को ही ले जहाँ परम्परागत जागीर की साधारण पद्धतियों की जगह वाणिज्य और उद्योग ने ले ली । फलस्वरूप सामाजिक संबंधों में भी परिवर्तन हुए । अमीरों की जागीरों, सामन्तों के दुर्गों एवं धर्माध्यक्षों के महलों के स्थान पर व्यस्त नगर व शहर बनने लगे । राजनीति में भी नवीन चेतना जागने लगी थी और सामन्तों एवं पोप (परम धर्माध्यक्ष) का दबदबा घटने लगा । शक्तिशाली राज्य शासन स्थापित होने लगे । वैज्ञानिक क्षेत्र में भी पुराने ईश्वरपरक रूढ़िवादी तरीके को छोड़कर, ठोस वैज्ञानिक पद्धति में भूगोल, विज्ञान, शरीर विज्ञान एवं चिकित्सा शास्त्र आदि में अनुसंधान हो रहा था । "शिक्षितों के नये पेशे सामने आने लगे थे ।"[1] जैसे लेखाकार (हिसाब किताब रखने वाला) वकील, इंजीनियर, डाक्टर, शिक्षक, शिल्पी, मिस्त्री आदि । इस प्रकार मानसिक श्रम पर निर्भर करने वाले बुद्धिजीवी वर्ग का उदय होने लगा था । बड़े मकान, चित्र, मूर्तियाँ आदि आधुनिक ढंग से निर्मित हो रही थीं । धर्म के नाम पर रूढ़िवद्धता

- -

1. New professions reflected the growth of both literacy and specialized lay education - the dictatores, or teachers of practical rhetoric and lawyers and the ever present notary (a combination of accountant, solicitor and public recorder) - Encyclopaedia Britannica, Vol.15 - page [illegible]

समाप्त होने लगी तथा मानव अपने जीवन को अधिक से अधिक आनंदमय बनाने का भरसक प्रयास करने लगा था और इस चक्कर में वह धार्मिक से अधिक व्यावहारिक हो गया । विज्ञान और कला दोनों परस्पर निकट होते जा रहे थे । मानव शरीर का अध्ययन वैज्ञानिक, विज्ञान के आधार पर करता तो कलाकार, कला के आधार पर । चित्रकार और मूर्तिकार सही अनुपात के लिए गणित की जानकारी प्राप्त करने लगे थे । साहित्यकार अब कल्पना जगत को त्यागकर यथार्थ जीवन को प्रेरित करनेवाली आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करने लगा था । अब मनुष्य जीवन का लक्ष्य केवल युद्ध करना या संन्यास ग्रहण कर लेना नहीं अपितु मानव कल्याण बताया जाने लगा । मनुष्य अपने मन, वचन और कर्म के सौंदर्य की महिमा साहित्य, कला और विज्ञान में अभिव्यक्त करने लगा था ।

धार्मिक संस्थाएं एवं सामन्ती प्रथाएं तीव्र आलोचना का शिकार होने लगी । चर्च, पोप या पादरी, आलसी सामन्त आदि पर से मनुष्य का विश्वास उठने लगा । आम आदमी उन से घृणा करने लगा। इसका अर्थ यह नहीं कि वे उस सर्वशक्तिमान भगवान के अस्तित्व को ही नकारने लगे, बल्कि इस काल के लोगों के मन में भगवान के प्रति परम आस्था थी जिसका तत्कालीन मनुष्य के मानवतावादी, दृष्टिकोण से ही पता चलता है । इस प्रकार हम कह सकते है कि ये मानवतावादी धार्मिक भी थे, किन्तु उनका मानव प्रेम अपूर्व था जो मनुष्य और विश्व के प्रति स्वस्थ संबंधों को खोज कर रहा था । इस दिशा में उनका प्रयास मात्र सराहनीय कहा जा सकता है ।

तकरीबन 200 वर्ष तक यूरोपीय इतिहास में व्यापक रूप से छाये रहने वाला रेनेसाँ या नवजागरण नामक यह महान आन्दोलन इटली में 14वीं शताब्दी में उदित होकर उत्तर यूरोप की ओर धीरे धीरे फैल गया। इस आन्दोलन ने वैज्ञानिक ढंग से मनुष्य की सोचने की शक्ति का पुनरुत्थान किया। जीवन से सम्बन्धित सभी विषयों पर स्वच्छंद एवं निर्भीक होकर सोचने और अभिव्यक्त करने के लिए उसे प्रोत्साहित किया। यह एक ऐसा आन्दोलन था जिसने कोटि-कोटि जनता के मानस को संस्कारित किया।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि बुद्धिवाद, मानवतावाद एवं मानव मन की जिज्ञासु प्रवृत्ति रेनेसाँ की तीन प्रमुख विशेषताएं हैं। चाहे तो इसे बौद्धिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक एवं व्यावहारिक विस्तार का युग भी कह सकते हैं।

पश्चिमी रेनेसाँ के कुछ प्रमुख कारण :

पुनर्जागरण रूपी इस आन्दोलन का आभास उस युग में यद्यपि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में मिलता था परन्तु इतिहासकार इसको कुछ महान, प्रतिष्ठित किन्तु समाज के कुछ, सीमित लोगों के विचारों व कर्मों में ही सक्रिय देखते हैं। पुनर्जागरण महान व्यक्तियों के मानवीय कर्मों का ही सामाजिक रूपान्तरण है। सुविधा के लिए पुनर्जागरण के प्रमुख कारणों को इस प्रकार विभाजित कर सकते हैं।

१. दार्शनिकों एवं चिंतकों का प्रभाव :

रोगर बेकन (Roger Bacon)[1] एलबरटस (Albertus)[2] थोमस एक्विनास (Thomas Acquinas)[3] एसीसी के सैंट फ्रांसिस[4], दान्ते[5] आदि 13 वीं शताब्दी के दार्शनिक ही नहीं बल्कि इस नूतन युग को मशाल दिखाकर मार्गदर्शन करने वाले महापुरुष भी थे। मध्य युग

---

1. Roger Bacon (1214-1292) - English Philosopher and man of science who helped lay the foundations of modern scientific thinking - En. Americana, Vol.3, Page-28

2. Albertus Magnus (1206-1280) - German Scholastic philosopher and theologian, known in English as Albert the Great. Albert was a pioneer in the development of experimental sciences and brought to the attention of the christian world the treasures of natural truths contained in Aristotle and his Arab commentators - En. Americana, Vol.1, Page-504

3. St.Thomas Acquinas (1225-1274) - St.Thomas' influence was great in his own time and from the 13th century on he has never lacked followers.

4. St. Francis of Assisi (1118-1226), founder of Franciscan order. Francis was a high spirited youth, who delighted in the fellowship of revelry and the romance of Chivalry. He lived extravagantly but early evinced a sincere compassion for the poor.

5. Italy was a land of powerful regional dialect tradition$ until the late 13th century, Latin was the only language common to all, ------ Dante's choice of it for his Divine Comedy ensured its pre-eminence.

में चर्च का अधिकार क्षेत्र इतना व्यापक हो गया था कि वह केवल तत्कालीन मनुष्य के मन मस्तिष्क पर ही नहीं बल्कि उसके कर्म क्षेत्र या यों कहिए कि उसके जीवन के हर क्षेत्र में अपना प्रभुत्व स्थापित कर चुका था । चर्च, पोप व पादरी के सत्ता प्रश्न चिह्न लगाने का अधिकार किसी को नहीं था । परन्तु इन विचारकों ने आम आदमी की चिन्तन शक्ति की काया पलट कर दी । इन्होंने उस सोये हुए मनुष्य को जगाया और उसमें जिज्ञासु प्रवृत्ति को कूट - कूट कर भर दिया । उसकी विवेचना शक्ति को जगाया । उसे स्वतंत्र भाव से विचार करने व वैज्ञानिक ढंग से सोचना सिखाया । यथा - "रक्वीनस ने बताया कि विश्व का प्रधान प्रवर्त्तक, प्रस्तावक व परिचालक बुद्धि है । (The prime author and mover of universe is intelligence)] रोगर बेकन लोगों से अनुरोध करते थे कि वे पोप पर अत्यधिक निर्भर न करें । उन्होंने स्वतंत्र लौकिक विकास पर जोर दिया । पुनर्जागरण रूपी आन्दोलन को सक्रिय बनाने में उन चिन्तकों का अप्रतिम योगदान रहा जिन्होंने अपने मौलिक चिन्तन, जिज्ञासु प्रवृत्ति एवं स्वतंत्र भावाभिव्यक्ति के द्वारा प्रेरणा के स्रोत बनकर लोगों को प्रभावित किया ।

2. वैज्ञानिक आविष्कार :

पुनर्जागरण काल में पाण्डुलिपियों और मूर्तियों के द्वारा प्राचीन यूनान और रोम की सांस्कृतिक समृद्धि को [illegible]र निकाला गया था । [illegible] अब ग्रीक एवं लैटिन को ही सबसे समृद्ध भाषा माना जाता था, इस लिए तत्कालीन [illegible] भी इन्हीं भाषाओं में रचना [illegible] अपनी विद्वत्ता [illegible] मानते थे । [illegible] भाषा के [illegible] ज्ञान का फायदा

उठाने में असमर्थ होते थे । उस समय ज्ञान का प्रचार एवं प्रसार हो पाना भी मुश्किल था । किताबें हाथों से लिखी जाती थी । अतः उनका मूल्य भी बहुत अधिक हुआ करता था । ऐसे में तत्कालीन लोग अपनी धार्मिक एवं राजनीतिक व्यवस्था से भी बहुत कुछ अनजान ही रहते थे । केवल उच्च वर्ग के धनाढ्य व्यक्ति को ही इसकी सही जानकारी रहती थी । परन्तु, छापाखानों के खुल जाने से समाज में अभूतपूर्व परिवर्तन होने लगा । पहला छापाखाना जर्मनी में सन् 1465 में गुन्टेनबर्ग ने खोला था ।[1] तदुपरान्त केक्सटन { Caxton } ने सन् 1471-72 में प्रिंटिंग विद्या को सीखकर इंग्लैण्ड में सन् 1476 में खोला । इटली एवं हंगरी में भी छापाखाना खुल गया था । छापाखाने के खुल जाने से किताबें अधिक मात्रा में छपने लगी । अब केवल शास्त्रीय भाषा में ही नहीं बल्कि क्षेत्रीय भाषा में भी किताब छपने लगी । इससे विज्ञान, कला, साहित्य, संस्कृति आदि की जानकारी केवल मठों, विश्वविद्यालयों एवं उच्च सामाजिक स्तर के लोगों में ही नहीं बल्कि आम जनता तक पहुँचने लगी ।

विज्ञान के क्षेत्र में तरह तरह के अन्वेषण हुए । प्रसिद्ध पोलिश वैज्ञानिक निकोलस कॉपरनिकस {1473-1543}[2] ने लगभग तीस वर्षों तक

- -

1. The invention of printing in Europe is usually attributed to Johannes Gutenberg in Germany - En. Britannica Vol.15, Page 221

2. Nicolaus Copernicus (1473-1543), Polish astronomer, who founded modern astronomy.

   Copernicus comprehended the true nature of the earth. He fully understood that it is a planet revolving about the sun, in the company of other planets. Therefore like its fellow planets it too is a heavenly body. Since the earth itself is in the heavens, the contrast between heaven and earth [illegible] being replaced by the [illegible] concept of [illegible], Vol.7, Page-755.

साधारण यंत्रों से ही, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, निरीक्षण करने के पश्चात यह निष्कर्ष निकाला कि पृथ्वी सूर्य के ग्रहों में से एक है तथा ये सभी ग्रह सूरज की परिक्रमा करते हैं। हालांकि चर्च की यह मान्यता थी कि पृथ्वी ही ब्रह्माण्ड का केन्द्र बिन्दु है एवं सूरज समेत सभी ग्रह उसकी परिक्रमा करते हैं। विज्ञान के क्षेत्र में ज्ञान, यह एक क्रांति था, अतः चर्च ने अपनी मान्यता के विरूद्ध छपने वाली इस किताब पर प्रतिबंध लगा दिया। इटली के गियार्दानो ब्रूनो को इस बात पर मृत्यु दण्ड दिया गया कि वे कापरनिकस के सिद्धांत को मानते थे और अंत तक इसी बात पर अड़े रहे।

गैलीलियो ﴾1564 - 1642﴿ जैसे वैज्ञानिक को भी निस्तार नहीं मिला क्योंकि उन्होंने टेलिस्कोप जैसे यंत्र का आविष्कार किया। इस यंत्र के द्वारा आकाश का निरीक्षण किया और कापरनिकस एवं ब्रूनो के सिद्धांत को सही ठहराया।

इन सब आविष्कारों से एक ओर आमआदमी के मानसिक दृष्टिकोण का विस्तार होने लगा और दूसरी ओर धीरे धीरे पारम्परिक रूढ़िवादी विचार धाराओं का अन्त भी होने लगा।

3. भौगोलिक अन्वेषण :

मनुष्य में सुप्त होती जिज्ञासु प्रवृत्ति जागृत होकर पुनर्जागरण काल में भौगोलिक अन्वेषण की ओर भी बढ़ी। मनुष्य का दुनिया और जीवन के छिपे हुए सभी रहस्यों को खोज करके देखना चाहता था।

यूरोपीय नौचालक (विशेषकर वे जो पोर्तुगाल और स्पेन के संरक्षण में जी रहे थे) भौगोलिक खोज करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । सन् 1453 में जब कान्स्टाण्टिनोपल पर तुर्कों ने विजय प्राप्त कर ली तब यूरोप पूरब की तरफ नयी समुद्रीय रास्ता खोजनेके लिए विकल हो उठा । नतीजा यह हुआ कि खोजियों ने न सिर्फ पूरब की दिशा में समुद्री रास्ता खोजा बल्कि कई महाद्वीपों, महादेशों को भी ढूँढ निकाला । उदाहरण स्वरूप कोलम्बस और वास्कोडिगामा को ले सकते हैं जिन्होंने यूरोप के लिए अमेरिका और भारत की खोज की और इन्हीं से प्रेरणा पाकर, इनकी परम्परा को कायम रखते हुए, 17वीं सदीमें यूरोप आस्ट्रेलिया से परिचित हुआ । इन भौगोलिक खोजों के कारण पश्चिम यूरोप के लोग एशिया के लोगों के निकट होने लगे व एक दूसरे की संस्कृति से परिचय प्राप्त करने लगे । इन्हीं समुद्री खोज यात्राओं के दौरान पृथ्वी के प्रति ब्रह्माण्ड के प्रति या नदियों या महासागर के आकार प्रकार के प्रति जो भ्रम धारणायें थीं वे सब मिटने लगी और मनुष्य वैज्ञानिक वास्तविकताओं से अवगत होने लगा ।

4. शहरों एवं मध्यम वर्गों का उदय :

भौगोलिक खोज के कारण एक प्रकार का व्यापारिक आन्दोलन भी शुरू हुआ । बाहरी देशों के साथ वाणिज्य या व्यापार का सम्बन्ध जैसे जैसे बढ़ता गया वैसा ही यूरोप में समृद्ध नगरों एवं शहरों की स्थापना होने लगी । शहरों में [illegible] [illegible] वर्ग के लोगों का उदय होने लगा जो मध्यम वर्ग कहलाता । [illegible] [illegible] वर्ग ने आगे [illegible] यूरोपीय [illegible] में महत्वपूर्ण योगदान [illegible] । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ज्ञान के पुनर्जागरण

का केन्द्र बनने लगे । मध्यम वर्ग के लोग न केवल सामाजिक स्तर पर बल्कि आर्थिक स्तर पर भी विकसित होने लगे । वे अपने बच्चों के लिए नूतन शिक्षा संस्थाएं खोलने लगे जो चर्च के दबदबे से दूर थी ।

5. प्रभावशाली व्यक्तियों का योगदान :

कुछ धनाढ्य एवं प्रभावशाली लोगों द्वारा भी पुनर्जागरण की भावना को प्रश्रय मिला । कई अमीर एवं प्रभावशाली जैसे राजा, पोप, व्यापारी आदि अभिजात वर्ग के लोग इस नये आन्दोलन में शामिल हो गए । फ्रांस के राजा फ्रांसिस प्रथम ने इटली के विद्वानों को अपने देश में निमंत्रित किया । फ्रांसीसी लोग भी पुनर्जागरण आन्दोलन के नूतन ज्ञान का आलोक प्राप्त कर सके । इस तरह इंग्लैण्ड के हेनरी अष्टम, स्पेन के चार्ल्स पंचम, पोलैण्ड के सिगिस्मन्ड, डेनमार्क के क्रिस्टियन द्वितीय आदि राजाओं ने विद्वानों कोअपने देशों में आने के लिए निमंत्रित किया । पोप निकोलस पंचम एवं दसवें लियो शास्त्रीय कला, साहित्य एवं संगीत के प्रशंसक थे । वे भी इस आन्दोलन का समर्थन करते रहे तथा ग्रीक रोमन क्लासिक्स के पुनरुद्धार में उन्होंने भरपूर प्रेरणा प्रदान की । कुछ धनी परिवार पुरातत्व से संबंधित वस्तुओं को खरीदने में उत्सुकता दिखाने लगे और यही लोग पुनर्जागरणकालीन दिग्गज कलाकारों एवं शिल्पियों को प्रोत्साहित करने लगे । इस तरह पुनर्जागरण रूपी अग्नि "गन्ध ज्वार" के समान निरन्तर विस्तारित होती जा रही थी ।

पुनर्जागरण के स्रोत एवं उसका विस्तार :

[illegible] का पुनर्जागरण का प्रारंभ [illegible] हुआ । इसके पश्चात [illegible] दूसरे देशों [illegible] । [illegible] हो सकता है ? इसके

कई कारण हो सकते है । पहली बात तो यह है कि रोमन सभ्यता और संस्कृति का केन्द्र बिन्दु इटली ही रहा । प्राचीन रोमन सभ्यता इटली से पूर्णतः मिटी नहीं थी । रोमन साहित्य एवं विद्या को प्राचीन रोम के कई भवनों एवं मठों में सुरक्षित रखा गया था जो दूसरे देशों के विद्वानों एवंकलाकारों का ध्यान आकर्षित करने लगे । पूरब पश्चिम में व्यापारिक संबंधों के कायम होते ही वेनिस, मिलान जैसे इटालियन शहर आर्थिक रूप से समृद्ध होने लगे । इसके चलते एक ऐसे मध्य-वर्गका उदय हुआ जो जीवन के प्रति उदार दृष्टिकोण रखता था । इसी मध्य वर्ग ने आगे चलकर इटली में उत्साह एवं उमंग के साथ ज्ञान की ज्योति जलायी ।

जब तुर्कों ने कान्स्टाटिनोपल को पराजित किया तब ग्रीक विद्वानों ने अपनी पाण्डुलिपियों एवं कला के भण्डार सहित इटली में आश्रय लिया । इन्हीं विद्वानों ने पुराने शास्त्रों के प्रति इटली वासियों के मन में आसक्ति जगायी । इन्हीं के मार्ग दर्शन से साहित्य एवं कला इटली में फलने फूलने लगी । इटली के राजघराने के कुछ लोग व एकाध पोप आदि ने भी इन ग्रीक विद्वानों को प्रोत्साहित किया ।

इस प्रकार इटली में हो रहे नवजागरण से दूर - दूर के देश अवगत होने लगे । इटली में हो रहे इस ऐतिहासिक आन्दोलन को पुनर्जागरण या नवजागरण इसलिए कहा जा रहा था क्योंकि रोम के पतन और 14 वीं, 15वीं शती के पुनरुत्कर्ष के बीच एक अंधकार

युग §Dark Age §[1] की कल्पना इतिहासकारों ने की । अतः इस अंधकार युग के फौरन बाद ही प्राचीन रोम और यूनान की सभ्यता का उत्कर्ष एक प्रकार से पुनः जागृत होने वाली बात थी क्योंकि ऐतिहासिक रूप से ऐसा समझा जाने लगा था कि पूरे समाज का पुनरुद्धार हो रहा है । नवीन कलात्मक तथा साहित्यिक उपलब्धियों में लोग नवजीवन को झलक पा रहे थे । इस तरह के अद्भुत परिवर्तन के कारण आस पास के प्रायः सभी देश इटली से प्रभावित होने लगे । पुनर्जागरण वाले मानवतावादी दृष्टिकोण जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैण्ड तथा इतर यूरोपीय देशों में भी पैदा होने लगा ।

जर्मनी में सांस्कृतिक गतिविधि धीरे धीरे प्रगति के रास्ते की ओर अग्रसर हो रही थी परन्तु जिस प्रकार नवजागरण की लहर दूसरे देशों में उमड़ रही थी वैसा जर्मनी में नहीं हुआ §विशेषकर कला और

- -

1. The 14th Century poet and classical scholar Petrarch was probably the first to conceive of the 1000 years from late Roman antiquity down to and including his own day as an age of darkness, marked by the extinction of excellence in both literacy, culture and public virtue ---- addressing himself to the younger generation, Petrarch expressed the hope that "this slumber of forgetfulness" would soon be dispelled and that man would be able "to walk forward in the pure radiance of the past."

Petrarch introduced some of the main elements of the Renaissance ideal, particularly the twin myths that antiquity was the zenith and the "Dark ages" the nadir of human creativity and that a revival of culture and an emprovement of society were dependant upon a revival of classical learning.

- En. Britannica, Vol.15, Page-660.

साहित्य में§ । उस समय शास्त्रीय ज्ञान के प्रति आसक्ति जर्मन लोगों में अपेक्षाकृत कम ही देखी गयी ।

16वीं शती के आरंभ में फ्रांस में बौद्धिक जागरण प्रत्यक्ष रूप से सामने आने लगा । चार्ल्स अष्टम-1[1] ने अपने देशवासियों को इटली के ज्ञान से अवगत कराने का भरपूर प्रयास किया । कहा जाता है कि उनके नेतृत्व में फ्रेंच सीखने नेपल्स गये जहां उन्होंने ज्ञान प्राप्त करने के लिए इटली से सम्पर्क स्थापित किया । इरेसमस जैसे कई विद्वान पेरिस की ओर आकृष्ट हुए और वहां के विद्यालयों में पढ़ाने लगे ।

इंग्लैंड के सांस्कृतिक जागरण में वारिर[2] जैसे महान नेता का हाथ था । आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज §विशेष कर ओक्सफोर्ड§ विश्वविद्यालय सांस्कृतिक सक्रियता का केन्द्र बिन्दु बने हुए थे । जॉन कोलेट §1466-1517§ नामक एक धार्मिक उद्घोक्ता ने धार्मिक पुनरुद्धार लिए लाक्षणिक या अन्योक्तिपरक ढंग से मध्य युगीन धार्मिक सिद्धांतों की व्याख्या की ।

मनुष्य यदि अपने जीवन की खुशी को उसकी संपूर्णता में पाना चाहे तो यह जरूरी है कि वह जीवन के हर क्षेत्र में समान रूप से विकास करे । किसी समाज में जब पुनर्जागरण जैसी घटना घटित होती है तो वह पूरी जाति, सभ्यता एवं संस्कृति आदि को हिला कर रख देती है ।

- -

1• Encyclopaedia Americana, Vol.23, Page 374a

2• Encyclopaedia Americana, Vol.4, Page 64

नवजागरण के दौरान यूरोप में विविध क्षेत्रों में कुछ क्रांतिकारी परिवर्तन हुए । उन क्षेत्रों के बारे में संक्षेप में विचार करना समीचीन होगा ।

साहित्य में नवजागरण :

मध्य युगीन साहित्य पर धर्म और अध्यात्म का प्रभाव बहुत अधिक था । परन्तु नवजागरण कालीन लेखकों ने अधिकतर मानव एवं मानव से सम्बन्धित भौतिक विषयों पर ही रचना की । इस युग में प्रभावकारी अभिव्यक्ति शैली की उद्भावना की गयी तथा मनुष्य एवं मनुष्य से निर्मित इस संसार का अंकन किया गया । इसलिए इसे सांस्कृतिक पुनरुत्थान की दृष्टि से महत्वपूर्ण समय माना गया । इसके अलावा इस समय के लेखक क्षेत्रीय भाषाओं में भी रचना करने लगे थे । धीरे धीरे क्षेत्रीय भाषा समाज में अपनी पहचान बनाने लगी । साहित्य में विचारों का ऐसा नयापन आने लगा - जो चर्चों से प्रभावित विद्वानों के लेखों से परे एक धर्म निरपेक्ष एवं उदारवादी दृष्टिकोण को व्यक्त करता था । यद्यपि विख्यात साहित्यकारों का इटली गढ़ ही बन गया था परन्तु ऐसा ही साहित्य हमें फ्रांस, इंग्लैण्ड, जर्मनी, हालैण्ड, स्पेन एवं पोर्तुगल में भी देखने को मिलता है । मैकियावेली (Machiavelli) तत्कालीन इटली के महान राजनीतिक लेखक थे, जिन्होंने "द प्रिन्स"[1] नामक एक सुविख्यात कृति की रचना की - इटली के राजनीतिज्ञ व प्रशासक इस कृति को सूत्र मानकर प्रशासन करते थे । दान्ते ने "डिवाइन कामेडी"[2] एक महत्वपूर्ण महाकाव्य रचा जिसका मुख्य उद्देश्य मृत्यु के पश्चात आत्मा की स्थिति के

- -

1. En.Britannica, Vol.15, Page 665.

2. -do- Vol.15, Page 666.

बारे में कहना था, परन्तु परोक्ष रूप में उन्होंने इस महाकाव्य में मनुष्य का एक दूसरे के प्रति प्रेम, देश प्रेम तथा इटली को संघटित एवं स्वतंत्र रूप में देखने की इच्छा को अभिव्यक्त की। पेट्रार्क[1] ने भी इस दिशा में सराहनीय काम किया इसलिए इन्हें मानवतावाद का प्रवर्तक मानते है। उनकी रचना में तत्कालीन मनुष्य की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक जीवन संबंधी जानकारी प्राप्त होती है। एरिस्टो एवं टास्सो भी इटली के प्रमुख कवि थे। परन्तु डेकामेरान के कथाकार बोकाशियो[2] (1313-1375) इटालियन गद्य में पिता माने जाते है। पेट्रार्क, बोकेशियो जैसे साहित्यकारों ने तत्कालीन धार्मिक व्यवस्था व नैतिकता पर प्रश्न चिह्न लगा दिये। मानवतावादी दृष्टिकोणों को विकसित करने में उनका योगदान अविस्मरणीय है।

अंग्रेजी साहित्य ने भी पुनर्जागरण के समय समृद्धि के चरमोत्कर्ष को प्राप्त कर लिया था। अंग्रेजी कविताओं में चॉसर[3] का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। प्रसिद्ध अंग्रेज लेखक थामस मोर (1478-1535) ने 1516 में लैटिन में "यूटोपिया" की रचना की। मोर ने व्यक्तिगत सम्पत्ति का कड़ा विरोध किया क्योंकि यह आम जनता के दुःख का कारण बनता है। मोर ने सरकार को धनिक वर्ग के षड्यंत्र का प्रतिफल माना जो सरकार का उपयोग केवल अपने स्वार्थ के लिए करते हैं। इस प्रकार तत्कालीन समाज

- -

1. En.Americana, Vol.23, Page 369

2. -do-

3. En.Britannica, Vol.4, Page 64

तथा राजनीतिक सत्ता के विरुद्ध आवाज उठायी और "यूटोपिया" में ऐसे उर्वर टापू की कल्पना की जहाँ शोषण का नामोनिशान नहीं । इस प्रकार उन्होंने भविष्य के न्यायपूर्ण व्यवस्था का एक अनोखा एवं सुन्दर सपना देखा था । प्रसिद्ध अंग्रेजी नाटककार विलियम शेक्सपीयर §1564-1616§ ने पतनशील सामंतवाद और उभरते पूँजीवाजी के संक्रमणकालीन त्रासदी को बड़े कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है । उन्हें मनुष्य की गरिमा तथा सौंदर्य के घीसते हुए रूप पर बहुत दुःख था जिसे उन्होंने "हैमलेट", "ओथेलो", "रोमियो एण्ड जुलिएट", "किंगलीयर" आदि नाटकों द्वारा अभिव्यक्त किया है । इसके अलावा "सेम्युएल जानसन", मेक्लोए § Macloue § आदि भी इस युग के विशेष हस्ताक्षर थे ।

फ्रांसीसी लेखक फ्रांसिवा रावेला §1494-1553§[1] अपने समय के बहुत लोकप्रिय लेखक थे जिन्होंने अपनी रचनाओं में सामन्ती प्रथाओं और परम्पराओं का उल्लेख किया । इन्होंने अपनी कथाओं में "पोपेमानिया" नामक कल्पित देश के बारे में लिखा जो पोप की व्यवस्था का विद्रूप था । मेकेल डी मोनटेन § Michael de Montaigne §[2] इसी समय के व्यक्तिवादी लेखक थे ।

मार्टिन लूथर ने बाइबल का जर्मन भाषा में अनुवाद किया जो बहुत ही प्रभावोत्पादक था । इंग्लैण्ड के नवजागरणकालीन लेखक इरेस्मस ने "प्रेज आफ द फाली" के द्वारा तत्कालीन वर्ग की बुराई तथा पादरी वर्ग के अत्याचारों का भाण्डा -फोड़ किया ।

- -

1. En.Americana, Vol.23 Page 373

2. -do- Vol.23 Page 373

महान मानवतावादी स्पेनी लेखक मिगुएल दि सर्वान्ते §1547-1616§ ने अपनी विश्व प्रसिद्ध रचना डॉन क्विक्जोट §Don Quixote § में पतनोन्मुख सामन्तवादी वर्ग पर करारा व्यंग्य किया । लोप डि वेगा जैसे नाटककार तथा कैलडेरोन §Calderon § जैसे कवि भी स्पेन के नवजागरण काल के प्रमुख साहित्यकार थे ।

पोर्तुगाली लेखक सिमोन्स §C'moens § ने अपने महाकाव्य लुसियाड्स §Lusiads § में वास्को डी गामा की समुद्री यात्रा के बारे में लिखा ।

इस प्रकार साहित्य के द्वारा पुनर्जागरण काल में सामन्तवाद और धार्मिक रूढ़ियों के विरुद्ध आवाज उठायी गयी जिसमें नयी मानवीय व्यवस्था की स्थापना का आह्वान भी छिपा हुआ था ।

कला में नवजागरण :

मध्य युग से लेकर कुछ बाद तक (कुछ अंशों में आधुनिक युग में भी) कलाओं पर चर्च व ईसाई धर्म का प्रभाव साफ नजर आता था । प्रारंभिक अवस्था में ईसाई कला बहुत ही सुकुमार, संवेदनशील व मानवोचित थी । परन्तु धीरे धीरे कलाओं को धार्मिक साम्प्रदायिकता का शिकार होना पड़ा । कलाओं पर लगाये गये चर्च के अनावश्यक प्रतिबंध के कारण उनमें कृत्रिमता आने लगी । सुकुमार भावों की जगह वहाँ रूढ़ एवं कठोर भाव दिखने लगे । परन्तु जैसे - जैसे समाज में मानवतावादी दृष्टिकोण फैलने लगा, कला का सरल, सुन्दर व विकसित रूप प्रत्यक्ष होने लगा ।

चित्रकला :

प्राचीन ग्रीक एवं रोम शहरों में चित्रकला का अधिक विकास नहीं हुआ था । पुनर्जागरण कालीन चित्रकार मौलिक ढंग से अपने विचारों को प्रस्तुत करने लगे । मूर्तिकला एवं शिल्प कला जिस प्रकार शास्त्रीय कलाओं से प्रभावित दीख पड़ती है वैसा मौका चित्रकला में नहीं था । पुनर्जागरण कालीन चित्रकारिता मानवतावादी दृष्टिकोण से ओत-प्रोत है- परंतु विषय की दृष्टि से देखा जाय तो वहाँ प्राय: ईसाई धर्म का ही चित्रण अधिक हुआ है । पलास्तर की दीवारों पर भित्ति - चित्रांकन शैली का विकास हुआ । तैलीय चित्रकारिता का आविष्कार भी इसी समय हुआ था ।

पुनर्जागरण कालीन चित्रकला सर्वप्रथम इटली में फलने फूलने लगी । हालांकि चित्रकला के इतिहास में पुनर्जागरण से पूर्व अनेक चित्रकारों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है जैसे सिमाबास[1], गिओट्टो[2], फ्रा एन्गोलिको[3] मसाशियो[4], गोज्जोलि[5], फ्रा फिलिप्पो लिप्पि[6], बोटिचेल्ली[7] आदि परन्तु पुनर्जागरण कालीन माइकेल एंजेलो (1475-1564)[8] राफेल (1483-1520)[9] तथा लियोनार्दो द विंसी (1452-1519)[10] के बहुआयामी व्यक्तित्व के सामने इनके पूर्व भी हार मानगये । ये केवल चित्रकार ही नहीं बल्कि एक वैज्ञानिक, इंजीनियर, कवि, गीतज्ञ, शिल्पी, मूर्तिकार

1, 2 - En.Americana Vol.23 Page 374 c

3, 4, 5, 6, 7 - En.Americana Vol.23 Page 374 d

8,9,10 - En.Americana Vol.23, Page 374 e

आदि भी थे । उनमें बुद्धि, अनुभव और शोध का अद्भुत समन्वय था । वे सामान्य मनुष्य का चित्र और मूर्तियाँ बनाते थे । "मोनालिसा", "द लास्ट सप्पर", "द वर्जिन आफ द गोट्टो", द वर्जिन एण्ड चाइल्ड विथ सेंट राननँ" आदि उनकी उत्कृष्ट कलाकृतियाँ है । इन सभी चित्रकारों के चित्रों में एक अनोखा लालित्यमय अतः सौंदर्य अभिव्यक्त हुआ है । उनके चित्रों में रंगों का सही चयन, आवश्यकतानुसार प्रकाश का प्रयोग, उपयुक्त पृष्ठभूमि के अंकन से चार चाँद लग जाते है एवं चित्र का गूढ़ अर्थ शीघ्र ही ध्यान में आ जाता है ।

इस युग मे जिस प्रकार के महामानवों की माँग की वैसे ही पाया । तभी तो एंगेल्स कहते हैं - "ये चिन्तन शक्ति में, आवेग एवं चरित्र में सार्वत्रिकता एवं विद्या में महामानव थे ।"[1]

माइकेल एंजेलो [1475-1564] भी बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न कलाकार थे । वे एक मूर्तिकार, वास्तुकार, चित्रकार, इंजीनियर, सैनिक व कवि थे । मानव देह के सौंदर्य के वे अप्रतिम अध्येता और पारखी थे । फ्लोरेंस के स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने के पश्चात आत्मबलिदान का सौंदर्य उनका प्रिय विषय बन गया था । सिसटाइन चैपल में उनका शानदार भित्तिचित्रांकन उनकी प्रतिभाशाली कार्य सिद्धि या सफलता का नमूना मात्र है । भित्ति चित्रांकन में "लास्ट जजमेंट" उनकी सर्वश्रेष्ठ कलाकृति है । मनुष्य की क्षमता, मनुष्य का साहस और संघर्ष, मानव में गहरी आस्था से वे श्रेष्ठ चितेरे थे ।

- -

1. मार्क्स एंगेल्स -"साहित्य और कला" -पृ. 290

राफेल (1483-1520) पुनर्जागरण युग का उन्नतम श्रेष्ठ चित्रकार था । सुन्दर शालीन और बुद्धिमान चरित्र उसे आकृष्ट करते थे । माँ की ममता तथा मानवप्रेम जैसी कोमल भावनाओं को उन्होंने अपनी तूलिका से जीवित कर दिया था ।

जर्मनी, स्पेन, नीदरलैण्ड तथा अन्य यूरोपीय देशों में भी कला में नवजागरण उपस्थित हुआ । ये सारे देश इटली के पुनर्जागरण से प्रभावित थे । जर्मनी के चित्रकार ड्यूरर (1471-1528)[1] केवल कलाकार ही नहीं वास्तु शिल्पी, इंजीनियर कवि और शास्त्रीय भाषाओं का ज्ञाता थे । इन्होंने सुधार पूर्व जर्मनी की स्थिति को चित्रों के माध्यम से जनता तक पहुँचाया । रेम्ब्रां वान रिज्न (1606-1669) डच के महान चित्रकार थे । लोगों की भावनाओं और आन्तरिक चरित्र को सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप से अभिव्यक्त करने में इन्हें महारत हासिल थी । दैनन्दिन जीवन से संबंधित चित्र बनाना इन्हें बेहद पसन्द था । गरीबी एवं संघर्ष में जीवन बिताने के बावजूद वे अन्त तक मनुष्य से प्रेम करते रहे एवं मानवता में विश्वास रखते थे ।

स्पेनी चित्रकार दियेगो वेलास्क्विज (1599-1660) ने राजदरबार में रहते हुए भी अपने चित्रों में राजा और सामन्त आदि को तुच्छ मनुष्य के रूप में चित्रित किया । इनके अलावा स्पेन के मुरिल्लो, ग्रीको, हॉलैण्ड के फ्लेन्स तथा वेन आदि रेनेसां युग के प्रमुख चित्रकार थे ।

- -

1. En.Americana, Vol.23 Page 374 c

मूर्तिकला :

जिस प्रकार पुनर्जागरण युग में चित्रकारिता का नए ढंग से विकास हुआ था ठीक उसी प्रकार वास्तुकला का भी विकास हुआ । फर्क केवल इतना है कि मूर्तिकार या वास्तुकार शास्त्रीय परम्परा या शास्त्रीय पद्धति पर निर्भर कर सकते थे क्योंकि वास्तुकला में काफी विकास हो चुका था । नवजागरण के मूर्तिकार मानव की देह का सूक्ष्म अध्ययन करने लगा जिससे उसकी मूर्ति एकदम सजीव लगने लगी । फ्लोरेंस में सैंट जार्ज एवं संत एंजेल्स की मूर्ति, वेनिस में सैंट मार्क की विख्यात मूर्तियाँ डोनोटेल्लो[1] की प्रतिभा की परिचायक हैं । मैकेल एंजेलो[2] संगमरमर के हर टुकड़े में मानव की सुन्दर आकृति का दर्शन करते थे । उन्होंने साढ़े पाँच मीटर ऊँची संगमरमर से बाइबिल में वर्णित डेविड नामक एक युवक चरवाहे की मूर्ति बनाई जिसने दैत्याकार अत्याचारी गोलियाथ को पत्थर के टुकड़े से धराशायी कर दिया था । इसी तरह मोजेस नाम की मूर्ति जो संगमरमर से बनी है वह भी काफी सराहनीय है । मैकेल को एक चित्रकार की अपेक्षा एक क्रांतिकारी मूर्तिकार कहना अनुचित न होगा । इटली के इन मूर्तिकारों को इंग्लैण्ड, फ्रांस एवं स्पेन जैसे देश निमंत्रित कर अपने यहाँ ले जाते थे और ये मूर्तिकार वहाँ जाकर पुनर्जागरण के भाव को जगाते, फैलाते थे । पुनर्जागरण की भावना धीरे धीरे, मगर व्यापक रूप से, फैलने लगी जिससे संपूर्ण पश्चिम यूरोप का नवजागरण का चपेट में आ गया था ।

- -

1. En.Americana, Vol.23 Page 373

2. -do- Vol.23 Page 374 a

वास्तुकला :

रेनेसां कालीन शिल्पकला को पूरी तरह से मौलिक नहीं कहा जा सकता क्योंकि वहां श्रेण्यवाद की तरफ झुकाव स्पष्ट दृष्टिगोचर है । गॉथिक शैली [मध्य युगीन शैली] जिसका स्रोत ईसाई धर्म था उसे छांट दिया गया और उसके स्थान पर ग्रीक व रोम के मेहराव, गुम्बज एवं स्तम्भ जैसे नमूनों को अपनाया गया । दूसरी बात यह है कि नवजागरण कालीन शिल्पकला का स्रोत आदि हम पुरातत्व या क्लासिकी में ढूंढ़ते है तो इसका यह मतलब नहीं कि इस दिशा में आगे उसका विकास ही नहीं हुआ । नवजागरण कालीन वास्तुकला में ढांचे की रूप रेखा व अलंकरण पर ज्यादा ध्यान दिया जाता था जो क्लासिक शैली में नहीं पाया जाता था । विकास काल में इस अलंकरण शैली की धारणा इतना प्रबल हो गयी कि विकृत होकर "वैरोक" की आस्था में पहुंच गया । [वैरोक वह शैली या पद्धति है जो अत्यधिक अलंकृत हो] ।

एलबर्टी[1], गार्नेटिट्[2], ब्रुनेलेशी[3] एवं मैकेल एंजेलो[4] पुनर्जागरण के विख्यात शिल्पकार थे । नवजागरण कालीन नवीन शिल्पकला के लिए कुछ उदाहरण दे सकते है जो निम्नलिखित है :-

रोम के सेंट पीटर, लन्दन के सेंटपाल, वेनिस के सेंट मार्ट जैसे कुछ महान एवं विख्यात चर्च इस नवीन शैली के नमूने है ।

---

1. व 2. En.Americana, Vol.23 Page 374

3. -do- Page 373

4. -do- Page 374 a

फ्लोरेंस के पिट्टी महल, रोम के फार्नेस महल आदि कुछ ऐसी असाधारण शिल्प कलाएं हैं जो नवजागरण काल में नजर आती है ।

संगीत :

दूसरी कलाओं की तरह रेनेसां कालीन संगीत शास्त्रीय प्रभाव से मुक्त था । यद्यपि संगीत पर धर्म का दबाव हमेशा बना रहा किन्तु, सोलहवीं सदी तक आते आते संगीत के क्षेत्र में कई मूलभूत परिवर्तन होनेलगे । प्राचीन कालीन संगीत पद्धति में मुख्य एवं गौण स्वरों का प्रयोग तो होता था परन्तु नवजागरण काल में स्वर संगति में सुरीलापन, ताल, लय एवं समभिति अथवा प्रतिसाम्य पर विशेषरूप से ध्यान दिया गया । विभिन्न स्वरानुक्रमों को एवं विविध स्वर संगति को सम्मिलित करने का मौलिक प्रयास किया गया और इसमें सफलता भी प्राप्त हुई । वाद्य यंत्रों को भी काफी हद तक सुधारा गया । वायलिन (बेला) एवं पियानों तत्कालीन लोकप्रिय वाद्य यंत्र थे । रोमन शैली या विचार धारा के पैलेस्ट्रीना नवजागरण कालीन प्रमुख संगीतज्ञों में एक थे । इनकी "बुक आफ मासेस" (1544 ई०) आज तक लोक प्रिय है । फिलिप नेरि ने रोम में संकीर्तन गायकों का संस्थापित किया जो आगे चलकर गीतिनाट्य के विकास में बहुत सहायक हुआ । गियोवान्नि गैब्रियेल्ली एवं एड्रियान वेनिस शैली के प्रमुख संगीतज्ञ रहे । चर्च में संगीत की बढ़ती हुई लोकप्रियता को देखकर लूथर चाहते थे कि लोग सामूहिक गायन में सक्रिय रूप में भाग लें ।

नवजागरण भारतीय संदर्भ:

इस प्रकार नवजागरण कालीन साहित्य, विज्ञान, एवं कलाओं में गतानुगतिक रूढ़िवादिता, धर्मान्धता, सामन्तवाद आदि के प्रति विरोध

एवं मनुष्य का जीवन के प्रति, जीवन को सुन्दर व सरल बनाने के प्रति एक जागरूक दृष्टिकोण दिखाई देता है । रिनेसांस का शाब्दिक प्रयोग अत्यन्त विवादास्पद रहा है, भारतीय पुनर्जागरण के संदर्भ में तो और भी । "एवरी मैन्स एन्साइक्लोपीडिया" में बताया गया है कि इसका सर्वप्रथम प्रयोग फ्रांसीसी इतिहासज्ञ एवं दार्शनिक मिशेलेट ने किया था ।[1] अंग्रेजी में इस शब्द का प्रयोग सबसे पहले 1845 में हुआ बताया जाता है कि मैथ्यू आर्नल्ड ने यह प्रथा शुरू की थी ।"[2] परन्तु खोजों के आधार पर पता चलता है कि "फ्रांसीसी लेखक ई॰जे॰देलाक्लूज [1781–1863 ई॰] शायद प्रथम व्यक्ति है जिसने एक विशिष्ट युग एवं स्थान अर्थात् उत्तर मध्यकालिक उत्तरी एवं मध्य इटली में पाश्चात्य ईसाई धर्म जगत पर मृत यूनानी सभ्यता के आघात का वर्णन करने के लिए पहली बार "ला रिनेसांस" शब्द का प्रयोग किया था ।"[3]

वाल्टर पेटर ने इसे कम्प्लेक्स मूवमेंट" माना – उनके लिए "रिनेसांस क्लासिकल एन्टीक्विटी" का पुनरुत्थान था "जो एक बहुत बहुआयामी किन्तु संगठित सक्षम आन्दोलन था, जिसमें बहुआयामी रूप से अत्यन्त समृद्ध पक्ष उभरे । आनन्द और ज्ञान, तर्क और अनुभव, विचार और कल्पना, खोज और व्याख्या, स्त्रोत और प्रवाह सबकी अभिव्यक्ति व्यक्त हुई ।"[4]

- -

1॰ एवरी मैन्स एन्साइक्लोपीडिया – वाल्यूम –9 पृ॰ 284

2॰ "आर्नल्ड टायन्बी" : इतिहास एक अध्ययन, पृ॰ 275– उद्धृत॰ प्रदीप सक्सेना – अठारह सौ सत्तावन और नवजागरण –पृ॰ 93

3॰ –वही– पृ॰ 275–उद्धृत प्र॰सं॰ पृ॰ 93

4॰ "वाल्टर पेटर" : दि रिनेसांस, पृ॰ 33 व 34 –उद्धृत प्रदीप सक्सेना – अठारह सौ सत्तावन और नवजागरण –पृ॰ 94

उपर्युक्त परिभाषाओं में नवजागरण के भारतीय संदर्भ का अर्थ नहीं उभरता । भारतीय भाषाओं में विशेषकर हिंदी में रिनेसाँस के लिए कई शब्द उपलब्ध होते हैं –

जैसे – "पुनरुज्जीवन, पुनरुन्नयन, पुनर्जीवीकरण, पुनरुत्थान, नव प्रभात, पुनरोदय, लोकजागरण, पुनर्जागरण एवं नवजागरण संज्ञाएं तो प्रचलित हैं ही साथ ही अंग्रेजी में रिनेसाँस, रिजरेक्शन, रिवाइवलिज्म, अवेकनिंग इसके अलावा एनलाइटेनमेंट, स्कालैस्टिसिज्म, डेइज्म, मैटीरियालिज्म, नेचुरलिज्म[1] आदि शब्दों का भी प्रयोग होता है । भारत में राजा राम मोहन राय ने उन्नीसवी सदी के प्रारंभ में इस शब्द का प्रयोग किया था। एडमण्ड बर्क ने भारतीय संदर्भ में रिनेसाँस शब्द का सही अर्थों में प्रयोग किया ।[2]

भारतीय संदर्भ में लोग नवजागरण या पुनर्जागरण को नाना समय पर देखते रहे हैं । भारत की सुदीर्घ परम्परा में बुद्ध की जिज्ञासु प्रवृत्ति पाणिनि के नवनवोन्मेष ढंग से परिवर्तन लाने की प्रवृत्ति, पतंजलि के सूत्रीकरण, आर्यभट्ट के अन्वेषण एवं कालिदास के प्रकृति सौंदर्य से संबंधित नवीन रहस्योद्घाटन आदि के कारण, यह देश प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध रहा । पुरातन समय के गार्गी, मैत्रेयी, सावित्री, उमा, लीलावती, सीता अरुन्धती जैसी नारियों के कारण भारतीय सभ्यता सदैव उच्च आसन पर आरूढ़ रही । भारत में आधुनिक शब्द का प्रयोग आज नहीं, पुराणों में

- -

1. प्रदीप सक्सेना : अठारह सौ सत्तावन और नवजागरण – पृ. 95 व 96.

2. –वही– पृ. 93

प्रयुक्त हुआ और होता चला आ रहा है । महामुनि याज्ञवल्क्य ने राजा जनक के समक्ष यह घोषणा की कि "विज्ञानमानन्दम ब्रह्म" अर्थात जीवन का सही उद्देश्य ब्राह्माण्ड का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन या अन्वेषण करने में है ।" नारद संहिता में अठारह विद्वानों के नाम दिये गए हैं जिन्हें हम भारत के प्रारंभिक विज्ञान मान सकते हैं -

> ब्राह्माचार्यो वसिष्टोऽत्रिर्मनुः पौलस्त्यलोमशौ
> मरीचिरं गिरा व्यासो नारदः शौनको भृगुः ।
> च्यवनो यवनो गर्गः कश्यपश्च पराशरः
> अष्टादशैते गंभीराः ज्योतिः शास्त्र प्रवर्तकाः ।।

उनके नाम इस प्रकार है - §1§ ब्रह्म 2• सूर्य §3§ वसिष्ट §4§ अत्रि §5§ मनु §6§ पौलस्त्य §7§ लोमश §8§ मरीचि §9§ अंगिरा §10§ व्यास §11§ नारद §12§ शौनक §13§ भृगु §14§ च्यवन §15§ यवन §16§ गर्ग §17§ कश्यप §18§ पराशर ।

अंगिरा ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने आग का आविष्कार किया । इस तथ्य को पाश्चात्य के विज्ञान ग्रिफिथ भी मान चुके हैं । चिकित्सा के क्षेत्र में धन्वन्तरि, भारद्वाज, आत्रेय, जीवक, पतंजलि, चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट, उमास्वता, माधवाकर, वृंद, चक्रपाता, भावेमिश्र, आनन्द-रायमखि, गोलिदिश्रा एवं महेश्वरी के नाम उल्लेखनीय है ।

प्राचीन भारत के प्रमुख ज्योतिष एवं गणितज्ञ के नाम इस प्रकार है - बौधायन, गार्ग, लगाधा, मेधातिथि, आर्य भट्ट, श्रीसेना, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य ।

दार्शनिक एवं वैज्ञानिक - कणाद, कपिल एवं गौतम अक्षपद

प्राचीन कृषि वैज्ञानिक - खना, घाघ ।

जहाज निर्माण करने में भोज का नाम अविस्मरणीय है । उपर्युक्त सूची को प्रस्तुत करने का उद्देश्य है भारतीय "परिपक्व ज्ञान प्रणाली"से अवगत होना व ज्ञानियों को याद करना । अतीत में भारत के अपार ज्ञान से ग्रीक व यूरोप भी प्रभावित हो चुके है । इतिहास साक्षी है कि जब ग्रीक विद्वानों में दार्शनिक चिन्तन की धारा प्रारंभ हुई थी उससे बहुत पहले ग्रीक के राजा मिलिन्द बौद्ध दार्शनिक नागसेना के समक्ष दर्शन संबंधी ज्ञान प्राप्त करने गए थे । नागसेना से प्रभावित होकर राजा ने बौद्ध धर्म का अवलम्बन किया । इससे यह धारणा मिट जाती है कि ज्ञान का बहाव ग्रीस से भारत की ओर नहीं हुआ बल्कि भारत ही यूरोप के आकर्षण का केन्द्र बना रहा । ज्ञान का यह आदान प्रदान ग्रीक एवं भारतीयों के बीच होता रहा । यह समय सिकन्दर के आक्रमण से पहले, अर्थात 500 ई॰पू॰ का था । कुरू तब उस काम्भोज पर शासन करता था जो आज अफगानिस्तान एवं ईरान है ।

सिकन्दरिया के राजा क्लेमेन्ट ने प्रसिद्ध ग्रीक दार्शनिक एवं गणितज्ञ पैथागोरस को 'ब्राह्मण का शिष्य' कहा था । पैथागोरस सात्विक जीवन व्यतीत करते थे । व शाकाहारी खान पान में विश्वास रखते थे । पश्चिम में वे लोगों से शाकाहारी होने के हितोपदेश देते थे । उनका यह प्रमेय [थी अरैम] जो उनके नाम से मशहूर है वह भारत में उनके जन्म से दो शताब्दी पूर्व ही प्रचलित था । 'शतपथ ब्राह्मण' व बोधायन शुल्बसूत्र में कई स्थानों में इस प्रमेय का उल्लेख मिलता है । प्रत्येक ब्राह्मण के लिए

इसका जानना अत्यंत आवश्यक था, कारण इस उपकरण का उपयोग करने से पहले उसको वेदा को बनाने में काम होता था ।

प्राचीन ग्रीक लोगों का कहना था कि भारत में चिकित्सा शास्त्र अत्यंत ही विकसित अवस्था में था । तभी तो आयुर्वेद के ग्रंथों का लेटिन भाषा में अनुवाद किया गया । अनुवाद करते समय संस्कृत शब्द "फुफ्फुस मुरमुर" (अर्थात् stethoscope) को लेटिन में मुरमुर शब्द को निकाल नहीं पाये । फलतः आज भी अंग्रेजी में "मुरमुर" शब्द प्रचलित है ।

भारतीय इतिहास में चौथी सदी को बहुत ही महत्वपूर्ण माना गया है । यह मौर्य साम्राज्य की तरह न तो अधिक व्यापक था और न ही इसके प्रशासन का केन्द्रीकरण ही हुआ । मौर्य वंश के विख्यात शासक सम्राट अशोक ने 269 ईसा पूर्व से 232 ईसा पूर्व तक शासन किया । यहां इनके बारे में चर्चा न करते हुए, चौथी सदी के गुप्त वंश के बारे में संक्षेप में कुछ जानकारी हासिल कर लेते है जिन्होंने लगभग दो शताब्दियों तक शासन किया । इस काल में चीनी यात्री फाह्यान भारत वर्ष आया था । उसने गुप्त साम्राज्य से संबंधित विवरण दिया था जिसमें शिक्षा के महान केन्द्र, उदार सरकार द्वारा शिक्षा को प्रश्रय देना, अंतर्जातीय विवाह के दृष्टान्त, चिकित्सालयों का बाहुल्य, परिस्थिति या जगह की समृद्धि के अनुसार कर वसूल करने की पद्धति, वैश्य (व्यापारी या वणिक) सम्प्रदाय की महत्ता, तथा विधि एवं व्यवस्था की कारगर पद्धति आदि के बारे में उल्लेख किया गया था । ब्राह्मण और बौद्ध मत के लोग शांति पूर्वक जीवन व्यतीत करते थे । हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान का युग था । छोटी - छोटी पहाड़ियों को काटकर विस्मयकारी भित्तिचित्रों से सजाया हुआ अजंता का शिल्प कौशल आज भी

संसार की सर्वश्रेष्ठ शिल्प कलाओं में एक माना जाता है। गुप्त युग में ही कला का इतना परिपक्व रूप मिलता है। अतः कला के क्षेत्र में भारत का किसी विदेशी कला से प्रभावित होना कठिन लगता है। साहित्य और विज्ञान में भी भारत गुप्त युग में ही बहुत आगे पहुंच चुका था। इसी काल में कालिदास नामक एक महान नाटककार उत्पन्न हुए। कालिदास ने संस्कृत नाटकों को जो नवीन रूप दिया है वह संस्कृत साहित्य में ही नहीं बल्कि विश्व साहित्य में भी अतुलनीय है। शब्दों के चयन व प्रतीक योजना का मणिकंचन योग अन्यत्र दुर्लभ है। इनके अनुसार नाटकों में गायन, वादन और नृत्य तीनों का रहना आवश्यक था। इनके अतिरिक्त इसी काल में भास, शूद्रक, विशाखदत्त, भारवि, आर्यभट्ट, वराह मिहिर और ब्रह्मगुप्त आदि अनेक विद्वान हुए। इनमें भास के "स्वप्न वासवदत्ता" तथा "उरुभंग" आदि तेरह नाटक प्राप्त है। शूद्रक का "मृच्छकटिक", विशाखदत्त का "मुद्राराक्षस" और भारवि का "किरातार्जुनीय" नाटक संसार के अमर नाटकों में प्रमुख स्थान रखते हैं। आर्यभट्ट, जैसे खगोलज्ञ ने कहा था कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है। §इसके लगभग 10 शताब्दियों के बाद कॉपरनिकस आदि यूरोपीय खगोलज्ञों ने इस बात को कहा था। परन्तु आर्यभट्ट की इस बात को मान्यता नहीं मिली। दिल्ली में खुले आसमान के नीचे एक लोहे का स्तम्भ है जिसे गुप्त कालीन किसी शासक ने खड़ा किया था। परन्तु हर मौसम को सहज ही सहन करते हुए आज भी उर्ध्वमुखी बनकर खड़ा है और उसमें जंग पकड़ने का नामोनिशान भी नहीं है। यह उस युग के धातु विज्ञान में अग्रवर्ती ज्ञान का परिचायक कहा जा सकता है।

भारतीय संगीत का यह स्वर्ण युग कहा जाता है। "शकुन्तला" विश्वसंगीत का अनुपम संगीतमय नाटक है। भारतीय संगीत का इस युग में

विदेशों में खूब प्रचार हुआ । ... वालों को भारतीय संगीत से बहुत प्रेम था । इस काल में भारतीय संगीत के ग्रंथों का अरबी भाषा में अनुवाद भी हुआ था । स्पेन के किसी विद्वान ने लिखा है कि "भारतीय संगीत का "नाफ़र" नामक पुस्तक हमें प्राप्त हुई है । इसमें रागों और स्वरों का वर्णन है ।"[1] भारतीय संगीत की प्रगति दूसरे देशों में भी हो रही थी जैसे रोम, फ्रांस, इंग्लैण्ड, आयरलैण्ड, हंगरी आदि ।

"विक्रमोर्वशीय" में कालिदास ने उर्वशी की सहेलियों - चित्रलेखा और सहजन्या के द्वारा द्विपदिका, जम्भालिका, चर्चरी, भिन्नका आदि नृत्यों के विषय में लिखा है । "मालविकाग्नि मित्र" में शिव नृत्य का वर्णन है तो "मेघदूत" में उज्जयिनी के महाकाल के मन्दिर में नृत्य का संकेत किया है ।

केवल संगीत नाटक में ही नहीं अपितु गणित, ज्योतिष, स्मृतियों आदि क्षेत्रों में भी अनेक श्रेष्ठ रचनाएं हुईं ।

विश्व में भारत की पहचान केवल एक देश के नाते ही नहीं बल्कि एक सभ्यता के कारण है । इसलिए यह कहने में अत्युक्ति नहीं कि यूरोप में यदि एक रेनेसां हुआ तो प्राचीन काल से आज तक भारत के इतिहास को देखें तो ऐसा लगेगा कि भारत में न जाने कितनी बार जागरण हुए । प्रत्येक बार पहले से कुछ अधिक सुधारात्मक । रिनेसांस का पुनर्जागरण अत्यंत जटिल विषय है । यहां भी पुनर्जागरण के विविध क्षेत्र चिह्नित किये जा

- -

1. तबकात उम्म - स्पेन विद्वान काज़ी सईद अन्दलासी -पृ. 20
   भारतीय संगीत का इतिहास भगवतशरण शर्मा -पृ. 44 पर उद्धृत

सकते हैं और किये भी गये हैं, यथा - 'राजनीतिक विचारों एवं संस्थाओं वाले रिनेसांस, विधि प्रणालियों वाले रिनेसांस, दार्शनिक विचार धाराओं वाले रिनेसांस, भाषाओं एवं साहित्य संबंधी रिनेसांस, चाक्षुष कलाओं वाले रिनेसांस धार्मिक आदर्शों एवं रीतियों से संबंधित रिनेसांस'[1] आदि। दरअसल नवजागरण की बात आधुनिक काल के संदर्भ में की जाती है और मोटे तौर पर आधुनिक काल भारतीय नवजागरण 19वीं शताब्दी से माना जाता है जब देश में सामंतविरोधी एवं साम्राज्य विरोधी विचारधारा फैल रही थी। यह एक ऐसा समय था जब बौद्धिक रूप से हम अतीत को नकार रहे थे तथा भविष्य के लिए एक नवीन रूप रेखा तैयार कर रहे थे और इस तरह एक नई शुरुआत कर रहे थे। इसी ज्ञान एवं आदर्श समझे जाने वाले ढकोसलों में खोती हुई सभ्यता रूपी सम्पत्ति को मानव अनुभव के जरिये पुनर्जीवन की ओर, विकास या प्रगति की ओर ले जाया जा रहा था। यहाँ प्रश्न उठता है कि यदि इस समय को नवजागरण कहें तब भक्ति काल {जिसे गुप्त युग की तरह स्वर्ण युग माना जाता है} उसे हम क्या कहें? रामविलास शर्मा ने इन दोनों समुन्नत युगों को पृथक पृथक नाम से अभिहित किया है। भक्तिकाल को 'लोक जागरण काल'[2] और आधुनिक युग को 'नवजागरण'[3] माना है।

- -

1. सभी उपशीर्षक, पृ. 275-80, उद्धृत प्रताप सक्सेना - अठारह सौ सत्तावन और नवजागरण - पृ. 96

2. हिंदी जाति का साहित्य : लोकजागरण और आधुनिक काल - पृ. 123 - डा० रामविलास शर्मा

3. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण - रामविलास शर्मा - पृ. 12 अथवा
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिंदी नवजागरण की समस्यायें - तीसरे संस्करण की भूमिका से.

रामचन्द्र शुक्ल ने भक्तिकाल का समय वि० 1375 से लेकर वि० सं० 1700 माना है । राजनीतिक दृष्टि से यह काल विक्षुब्ध, अशांति एवं संघर्षमय था । 10वीं से 12 वीं सदी के बीच के समय को "युद्धों का युग" कहा जाता है । पर 12 वी से 14 वीं सदी के बीच भी युद्धों की कमी नहीं थी, तो फिर दोनों में फर्क कहाँ आता है ? फर्क यह है कि हिन्दू और मुसलमानों [शासित और शासक] का भेद धीरे धीरे मिटने लगा व एक दूसरे के प्रति वे उदार होने लगे । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल व गुलाब राय जैसे विद्वान भक्ति आन्दोलन को पराजित मनोवृत्ति का परिणाम मानते हैं - परन्तु दक्षिण में भक्ति का उद्रेक क्यों हुआ ? हारी हुई मनोवृत्ति तो अंग्रेजों के शासन काल में भी थी तब पुनः भक्ति आन्दोलन का आगमन होना चाहिए था । ऐसा नहीं हुआ कारण भक्ति शान्त वातावरण में पनपने वाली चीज है । अशांति या संघर्षमय वातावरण में भक्ति का जन्म यदि होता तो वीर गाथा काल का समय भक्ति के लिए अत्यन्त उपयुक्त समय था ।

इस काल के साहित्य में भारतीय संस्कृति की पूर्ण अभिव्यक्ति होने लगी । भक्त कवि ने मानव का समाज के प्रति उच्चतम धर्म को व्याख्यायित किया और ईश्वर प्राप्ति के लिए सत्कर्म को ही अपना प्रमुख धर्म माना । यह साहित्य मानो मनुष्य के विविध ताप [दैहिक, दैवी, भौतिक] को शांत करता है । एक साथ भौतिक और ऐहिक लोक को स्पर्श करने वाला यह साहित्य हारी हुई मनोवृत्ति का परिणाम कैसे हो सकता है ?

इस दृष्टि से मध्य युग में समन्वयात्मक दृष्टिकोण मिलता है । शैव शाक्त, भागवत और सापकत्व धर्मों में भक्ति का समन्वय हुआ । भक्ति

में ज्ञान कौशल्य के साथ योग को भी जोड़ा जाने लगा । राम और शिव में समन्वय भी चलता रहा । धार्मिक कट्टरता सहिष्णुता में बदलने लगी । सन्त अपने इष्टदेव को प्रियतम कहते तो सूफी उसे प्रियतमा - इस प्रकार धार्मिक सद्भाव को देखा जाने लगा । भक्ति आन्दोलन के एक प्रमुख नेता बंगाल के चैतन्य महाप्रभु के कीर्तन पर मुहल्ले के काजी ने एक बार प्रतिबंध लगा दिया था । परन्तु चैतन्य की मंडली ने विराट जन समूह का रूप धारण किया और काजी के निवास स्थान पर जा पहुंची । आतंकित काजी ने विनम्रता पूर्वक क्षमा याचना की एवं अपने अन्यायपूर्ण आदेश को वापस ले लिया । वल्लभाचार्य तथा अन्य आचार्यों के संबंध में भी इस प्रकार की घटनाएं मिलती है । भक्ति भाव से मन को शक्ति मिलती है । उचित धर्मावलम्बन से इंसान का मानसिक क्षितिज उदार होता है तभी वह रूढिवादी समाज को तोड़कर एक नये समाज का सृजन कर पाता है । मनुष्य में भ्रातृत्व की भावना जागृत होती है । भक्तों के लिए ऊंची जाति के ब्राह्मण और नीची जाति के भंगी में कोई अन्तर नहीं था । ऐसी भावना सभी मतों और संप्रदायों में प्रचलित हो गयी थी कि ईश्वर या भक्ति केवल किसी सीमित वर्ग के लिए नहीं बल्कि वह सभी के लिए स्वतंत्र है । इस प्रकार वर्ग भेद, जाति पाँति का भेद भाव मिटने लगा ।

समन्वयात्मकता केवल धर्म की परिधि में सीमित नहीं थी बल्कि मूर्ति एवं वास्तुकलाओं में भी देखी जा सकती थी । मुसलमानी इमारतों और राजपूत तथा मुगल शैली के चित्रों को देखने से हिन्दू मुसलमान कला के घुल मिल जाने से एक नवीन कला शैली की व्युत्पत्ति देखी जा सकती है । संगीत, चित्र व भवन निर्माण कलाओं में दोनों संस्कृतियों का मेल-जोल परिलक्षित होता है ।

इस प्रकार मध्य काल में भारत की सामाजिक संस्कृति फल फूल रही थी । ताजमहल और लाल किला में भारतीय तथा ईरानी वास्तु-कलाओं का सुन्दर सम्मिश्रण है । भारतीय व इरानी संगीत कलाओं का मणिकांचन योग भी देखते ही बनता है ।

अस्तु, भक्तिकाल को सांस्कृतिक नवजागरण काल माना जा सकता है क्योंकि यहां बौद्धिक विकास की अपेक्षा सांस्कृतिक विकास अधिक हुआ था - दो सभ्यताओं एवं संस्कृतियों के मिले जुले रूप का सुन्दर निदर्शन इस काल के समान दूसरे किसी भी काल में दिखाई नहीं देता ।

भक्तिकाव्य में यदि वैराग्य भाव प्रधान रहा तो श्रृंगार भाव अत्यंत क्षीण भी न रहा था । उदाहरण के लिए सूरदास के काव्य को ही ले सकते है । परन्तु भक्त कवियों के श्रृंगार भाव एवं रीतिकाल के कवियों के श्रृंगार भाव में काफी अन्तर रहा । श्रृंगार का लौकिक रूप भुलाकर उसकी आध्यात्मिक व्याख्या करने के पक्ष में शुक्ल जी नहीं थे । उनका कहना है कि "आध्यात्मिक रंग के चश्मे आजकल बहुत सस्ते हो गये हैं । उन्हें चढ़ाकर जैसे कुछ लोगों ने "गीत गोविन्द" के पदों को आध्यात्मिक संकेत बताया है, वैसे ही विद्यापति के इन पदों को भी। सूर आदि कृष्ण भक्तों के श्रृंगारी पदों की भी ऐसे लोग आध्यात्मिक व्याख्या चाहते हैं ।"[1]

रीतिकाल में अंधकार युग की अवधारणा :

भक्ति काल के बाद रीतिकाल आता है । इस काल का वातावरण

1. [इतिहास पृ. 7] ["नव जागरण और हिंदी साहित्य" -भूमिका आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से उद्धृत -पृ. 37/38

विलासिता की कुहरे से आच्छादित था । राधाकृष्ण की भक्ति शृंगारिक भावना का स्पर्श पाकर कलुषित हो चुकी थी । वैसे प्रेम की चर्चा बहुत प्राचीन काल से ही प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में प्रकाश पा रही थी । "संस्कृत में इसका सर्वप्राचीन उल्लेख आनन्दवर्धन के "ध्वन्यालोक" के एक उदाहरण में ही पाया जाता है । बाद में ग्यारहवी शताब्दी में लीलाशुक के "कृष्णकर्णामृत" की रचना हुई । ..... उसके बाद ही जयदेव कवि... इसके बाद विद्यापति, चंडीदास और सूरदास की रचनाओं.......।"[1] तब इस काल की शृंगार रचना में नई क्या था ?" इस काल की शृंगार भावना में एक प्रकार का रुग्ण मनोभाव है ।"[2] कारण है तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, परिस्थितियां । दो टूक शब्दों में कहा जा सकता है कि राजनीतिक दृष्टि से यहां निरंकुश राजतंत्र का बोलबाला था । मुगलों में विलासिता, प्रवृत्ति तो थी ही अब यह महामारी सामन्तों में फैलने लगी । सुरा एवं सुन्दरी के प्रति झुकाव शासक वर्ग के लिए कोई विशेष बात न थी ।

सामाजिक दृष्टि से देखा जाय तो "यथा राजा तथा प्रजा" का यह सिद्धांत सम्पूर्णत, लागू होता है । राजाओं की तरह छोटे से छोटे सामन्त भी अपनी हैसियत के अनुसार ऐय्याश होते थे । श्रमिक वर्ग की रुग्ण अवस्था छिपी नहीं थी । किसान को जीविका निर्वाह के साधन नहीं मिलते थे । यहां तक कि उद्योग धन्धों ﴾के प्रति शासक वर्ग की उपेक्षा के कारण﴿ को

- -

1. ﴾इतिहास पृ.71﴿ "लोक जागरण और हिंदी साहित्य" -भूमिका आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से उद्धृत -पृ. 39

2. -वही- पृ. 39

भारी नु नान हुआ । बहु विवाह, बाल विवाह जैसी कुप्रथाएं, अंधविश्वास, रूढ़िवादिता आदि सामाजिक कुरीतियां चरम अवस्था में पहुंच गयी थीं। नैतिक बन्धन इतने ढीले पड़ चुके थे कि ईश्वर का उदात्त रूप अब संकुचित अर्थों में प्रयुक्त होने लगा था । मन्दिर व मठों की पवित्रता प्राय: समाप्त हो गई थी । सामंती वातावरण में फलने फूलने वाली कला का क्षेत्र भी शोचनीय अवस्था में था । क्योंकि कला भी वासनात्मकता की चपेट में आ गई थी । संगीत में "ध्रुपद" की ईश्वर स्तुति से पूर्ण कविता अब कोमल कांत पदावलियों में ढलकर श्रृंगारपरक ख्याल गायन के रूप में परिवर्तित हो गई । संस्कृत के श्लोक के विषय नायक नायिका भेद हो गये । विशुद्ध अथवा सात्विक प्रेम अब स्त्री पुरूष की दैहिक प्रणय लीलाओं में बदल गयी । परिवर्तन केवल संगीत या भवन निर्माण कला तक ही सीमित न रहकर साहित्य एवं चित्रकला में भी उद्भासित होने लगी । अर्थात् साहित्यिक परिस्थितियां सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थितियों से पृथक न थीं । स्वान्त: सुखाय रचनाओं की जगह स्वामिन: सुखाय की भावना अधिक आने लगी । ऐसे में वासना की स्याही से भरकर रचना करना या फिर पाण्डित्य प्रदर्शन करना और अपना पेट पालना ही तथा कथित साहित्यकारों का सर्वोत्तम लक्ष्य था । परन्तु यदा कदा देश भक्ति परक तथा शुद्ध प्रेम परक रचनाएं भी दिखाई देती हैं ।

उपर्युक्त सभी परिस्थितियों को देखते हुए यदि परिचमी ढंग से इस समय को [रीतिकाल को] अन्धकार युग कहा जाय तो सम्भव है कि कुछ लोगों को असमीचीन व अनुचित नहीं लगे । प्रत्येक देश के इतिहास में एक ऐसा समय आता है जब राष्ट्र का विकास ह्रासोन्मुख होने लगता है । उसके उत्कर्ष तक उसकी पहचान किसी अंधकार में सिमट जाती है । इस प्रकार से तिरोहित होने के कई कारण है जैसे मानसिक जड़ता, बौद्धिक

निष्क्रियता, नैतिक पतन, सामाजिक अधोगति । राजनीतिक दासता का मिश्रित रूप देश के उज्ज्वल चेहरे कोविकृत कर देता है । राष्ट्र तब शुष्क एवं बंजर बन जाता है । अनेक लोगों को रीतिकाल में ये सभी लक्षण न्यूनाधिक दिखाई पड़ते हैं । माना कि रीतिकाल में श्रृंगार रस की उत्तम कोटि की कविताएं रची गई परन्तु क्या राष्ट्र के अथवा समाज के सर्वांगीण विकास के लिए साहित्य के किसी एक पहलू का विकसित होना पर्याप्त है ? इस युग में प्रतिभा एवं बुद्धि का अकाल पड़ गया एवं अज्ञानता की महामारी छा गयी जिससे आम जनता और राष्ट्र भी प्रभावित हुआ। परिणामस्वरूप वे मानते हैं कि देश के इतिहास में एक सीमित "श्रृंगार युग" का जन्म हुआ ।

उन्नीसवीं सदी का नवजागरण :

मुगल साम्राज्य के पतन के पश्चात शक्तिशाली मराठों के कदम उखड़ गए । राजाओं में आपसी कलह और निरन्तर युद्ध के कारण केन्द्रीय शासन का बागडोर किसी सत्ता विशेष के हाथ में न रहा । अंग्रेज और फ्रांसीसी भारत के सत्ता पर अधिकार स्थापित करने के लिए निरन्तर प्रयास कर रहे थे । 1757 ई. के प्लासी युद्ध तथा 1764 ई. में बक्सर युद्ध के बाद कंपनी के पैर धीरे धीरे भारत में जमने लगे । भारतीय नवजागरण अंग्रेजी शासन के दौरान कई उथल पुथल के बीच आरंभ हुआ जिसका चरमोत्कर्ष देश की स्वाधीनता प्राप्ति के में सम्पन्न हुआ । भारत के {इस 19वी सदी के} पुनर्जागरण या नवजागरण का संबंध सामान्यत: राजा राममोहन राय से जोड़ा जाता है । यहपुनर्जागरण सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक होते हुए भी राजनीतिक आन्दोलन में बदल गया था । नवजागरण का प्रभाव देश

के विभिन्न क्षेत्रों में पड़ा । भारतीय नवजागरण ने जातीयता की भावना का प्रचार किया । इसने भारत की सांस्कृतिक एकता को जागृत किया जो विविध भाषाओं के साहित्य में प्रस्फुटित होने लगी । आध्यात्मिक दृष्टि से भी पुनर्जागरण अत्यंत महत्वपूर्ण था, कारण रामकृष्ण परमहंस विवेकानन्द, अरविन्द आदि संतों के चिंतन दर्शन से केवल मात्र हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान ही नहीं बल्कि विश्व दर्शन भी उनके वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रभावित हो रहा था । विज्ञान के क्षेत्र में जगदीश चन्द्र बोस, सी•वी•रमन आदि के आविष्कारों से आधुनिक भारत की मनीषा विश्व में सराहनीय स्थान प्राप्त कर रही थी । 'साहित्य में नवजागरण' की बात कहने व सुनने में जितना आसान लग रही है वैसा थी नहीं । कारण भारत की सभी भाषाओं में नवजागरण एक समान हुआ हो, ऐसी बात नहीं । 19वीं सदी के भारतीय पुनर्जागरण की स्थिति काफी जटिल है । एक ओर अगर इसने पूरब और पश्चिम के फासले को कुछ हद तक मिटाया तो दूसरी ओर इस पुनर्जागरण से भारत ने अतीत के प्रति गौरव को पुनः महसूस भी किया । प्राचीन कालीन भारत के उच्चतर जीवन मूल्यों को सही ढंग से पहचानने की कोशिश हुई । भारतीय नवजागरण का महान उद्देश्य क्या रहा होगा ? परम्परा का पुनः शुद्धि, पुनः पुष्टि, इतनी समृद्धि कि आने वाली पीढ़ी इस पर गर्व कर सके । उन्नीसवीं सदी के मानवतावादी, दार्शनिक, अध्यापक व राजनीतिक नेताओं ने इस दिशा में इतना कुछ किया कि आधुनिक युग सदैव उनके लिए ऋणी रहेगा । 19वीं सदी के कुछ महान मस्तिष्कों ने भारतीय संस्कृति के सूक्ष्म तत्वों को पाश्चात्य वैज्ञानिक मानवतावादी संस्कृति से मिलाने का प्रयास किया और वे इस कार्य में सफल भी हुए । जैसे स्वामी विवेकानंद संस्कृति कोई दुर्गम्य वस्तु नहीं है - आदान - प्रदान से ही संस्कृति में निखार आता है । तभी तो भारतीय सभ्यता और संस्कृति

विदेशी संस्कृतियों के उच्च आदर्शो का कुछ न कुछ ग्रहण कर आज विश्व की बेहतरीन सभ्यता के रूप में जानी जाती है । बहुत से ऐसे देश है विश्व के मानचित्र में जो केवल देश के रूप में ही नहीं बल्कि सभ्यता के रूप में जाने जाते है । अर्थात् कहा जा सकता है कि भारतीय पुनर्जागरण भारत की उत्कृष्ट परम्परा के साथ पाश्चात्य आदर्शो के भी मिले जुले स्वरूप का परिणाम है ।

पुनर्जागरण के कबीलों के दो खेमे नजर आते हैं - एक में वैसे लोग है जो "ब्रिटिश प्रभाव के कारण भारतमें पुनर्जागरण मानते है तो दूसरा खेमा "इंडियन रेस्पांस" पर बल देने वालों का है । पुनर्जागरण केसमय भारत की अर्थ नीति, शिक्षा पद्धति, यातायात के साधनों आदि में काफी परिवर्तन हुए । इससे समाज नई तरह से गठित होने लगा । पुराने रूढ़िवादी संस्कार, रीति नीति आदि में बदलाव आने लगा । नये यथार्थ एवं पुराने संस्कारों में घर्षण या द्वन्द्व होने लगा । एक नवीनता की आवश्यकता महसूस की जाने लगी । एक नवीन समाज कीकल्पना की जाने लगी । इस नवीन समाज के निर्माण के पीछे क्या ब्रिटिश लोगों का हाथ था ? इस सवाल के दो प्रकार से जवाब प्राप्त होते है । कुछ लोगों का मत है कि भारत ने अपने अतीत काल में भले ही पराजय का सामना किया हो परन्तु दुश्मन को प्रभावित किए बिना कभी नहीं रहा । इसी क्रम में भारत को अंग्रेजों ने प्रभावित नहीं किया उन्होंने तो उसकी हालत को और भी जर्जर बना दिया । आर्थिक दृष्टि से उसका शोषण हुआ । हमारे देश में व्यापार और उद्योग धन्धे काफी विस्तृत था परन्तु अंग्रेजों के कारण सब चौपट हो गया और हमारा आर्थिक और सामाजिक स्थिति बिगड़ गयी । कुछ विद्वानों का मत है कि 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध और 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में ब्रिटेन की औद्योगिक क्रान्ति के कारण भारत को फायदा हुआ ।

रेल, तार, डाक व्यवस्था आदि का भारत में स्थापित होना इसी औद्योगिक क्रांति का प्रभाव है । वस्त्रोद्योग के क्षेत्र में हस्त कला के स्थान पर मशीनी उद्योग का प्रयोग भले ही अंग्रेजों के लिए लाभकारी हुआ परन्तु भारत को इससे कितना फायदा हुआ ? हस्तशिल्पियों की कारीगरी मटियामेट होने लगी । वे गरीब मजदूर बन गए । अंग्रेजों की भारी भरकम लगान वसूली से किसानों की कमर टूट गई । उन्हें दो वक्त की रोटी भी नसीब नहीं थी । औद्योगिक क्रान्ति से फायदा हुआ तो केवल अंग्रेजों को । अपने देश की प्रगति के लिए इस देश को लूट रहे थे । इंग्लैण्ड की उन्नति के लिए उन्होंने इस देश में उद्योग धन्धे स्थापित किए । पूर्व काल से ही उनके देश के विकास के लिए भारत से उन्हें वस्तुएं प्राप्त होती रही जैसे - चावल, नींबू, अखरोट, तरबूज, रेशम, आईना तथा विभिन्न धातुओं के पात्र आदि आदि । प्राचीन काल से भारत आत्मनिर्भर देश रहा । इस देश का धन किसानों और श्रमिकों के परिश्रम तथा प्रकृति की कृपा के फलस्वरूप प्राप्त होता था । खेती में किसान वर्ष भर में तीन प्रकार की फसलें प्राप्त करता था । प्रकृति भी सानुकूल होने के कारण अकाल का नाम कम था । नहरों के द्वारा सिंचाई करने की व्यवस्था तो मध्य काल में ही प्रचलित था । अतः धान, गेहूं, जौ, फल, मसाले, रेशम, शक्कर, रुई आदि भारत से बाहर दूसरे देशों में भेजा जाता था । दस्तकारी में भारत को शुरू से ख्याति प्राप्त थी, अतः विश्व के दूसरे देश यहां के माल को खरीदने के लिए आतुर रहते थे । विभिन्न धातुओं, यहां तक कि सोने-चांदी के आभूषण और बर्तन तथा हाथी दांत और रत्नों का कारोबार होता था । भोजन, वस्त्र, बर्तन भांडे, औजार आदि सभी वस्तुएं इसी देश में बनती थीं । ऐसे आत्मनिर्भर देश का किसी विदेशी की औद्योगिक क्रांति से प्रत्याशा करना हास्यास्पद लगता है । इसके विपरीत उनके उद्योग धन्धों को स्थापित करने के लिए भारत के माल को लूटा गया ।

फलस्वरूप भारत में अंग्रेजी राज में महंगाई, चावल, टैक्स और दरिद्रता ने जन्म लिया । कहते हैं, शिक्षा का प्रचार और प्रसार अंग्रेजों के कारण इस देश में हुआ । अंग्रेजी राज में ज्ञान का प्रचार प्रसार कम हुआ क्योंकि अंग्रेजों को अपने विशाल साम्राज्य को चलाने के लिए सस्ते कर्मचारी की जरूरत थी और इसी की पूर्ति के लिए शिक्षा व्यवस्था कायम की गयी थी । भारतीय उच्च संस्कृति व सभ्यता के प्रति गौरव की भावना को मिटाने के लिए ईसाई मत [जो कि "वैज्ञानिक" माना गया] की उच्चता का प्रचार किया जा रहा था । कृषक वर्ग पर मालगुजारी का बोझ लादना तथा जमींदारों के अत्याचारों को बढ़ावा देना आम बात थी । उन जमींदारों को सरकार से प्रश्रय मिलता जो उनके मतानुसार चलते थे । बेरोजगारी की समस्या भी थी ।

दूसरा मत यह है कि अंग्रेजों के प्रभाव से भारतीय समाज में एक नवीन चेतना उभर आई और जनता में जागृति हुई । लोग शिक्षित हुए अपने अधिकार को पहचाननेलगे । रेल, डाक तार आदि के विभिन्न प्रकार की सुविधाएं प्राप्त होने लगी । आन्दोलन होने लगे, विभिन्न संस्थाएं सरकार के विरुद्ध भी काम करने लगी । पश्चिमी ज्ञान के आलोक भारत की सामाजिक कुरीतियाँ मिटने लगी । समाज का सुधार होने लगा । 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में होने वाली इस घटना को कुछ विद्वान पुनर्जागरण कहते हैं । अंग्रेजों के द्वारा इस पुनर्जागरण को संभव बनाया गया । राजा राममोहन राय से "पादरी अलेक्जेण्डर ने कहा था - "मुझे ऐसा लगने लगा कि यहाँ भारत में यूरोपीय रिनेसाँस से मिलता जुलता कुछ घटित होरहा है ।"[1]

- -

1. आलोचना 79 -पृ. 1-संपादक नामवरसिंह

यूरोपीय रिनेसाँस के समान भारत में नवजागरण के इस आलोक को देखने के लिए हमें इसके विभिन्न पहलुओं जैसे इसकी राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिस्थितियाँ आदि पर विचार करना होगा ।

1. राजनीतिक परिस्थितियाँ :

अंग्रेजों का भारत पर अधिकार जमाने का प्रथम प्रयास ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राज्य की स्थापना से मानना चाहिए । 1757 ई. में नवाब सिराजुद्दौला को प्लासी के युद्ध में हराकर शनैः शनै अंग्रेजों ने बंगाल पर संपूर्ण कब्जा कर लिया और आगे बढ़ते रहे । 1764 में बक्सर युद्ध के बाद बंगाल, उड़ीसा और बिहार संपूर्णतः अंग्रेजों के अधीन हो गए । 1803 में अंग्रेजों ने मराठों को परास्त किया, 1849 ई.में सिक्खों को पराजित किया । 1856 में अवध पर भी अंग्रेजों की हुकूमत चलने लगी । इसी प्रकार लगभग संपूर्ण देश को अंग्रेजों ने अपने अधीन कर लिया । 1857 में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम, भारतीय इतिहास में मील का पत्थर साबित हुआ । भारत अब टुकड़ों में बँटा नहीं था बल्कि [क्योंकि] विभिन्न प्रांत या प्रदेश मिलकर एक हो गए तथा अपने देश के लिए लड़ने लगे थे । 1857 के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन समाप्त हुआ तथा इसके स्थान पर भारत में विक्टोरिया शासन की प्रतिष्ठा हो गई । भारत अब ब्रिटिश राज्य का उपनिवेश बन चुका था । इसके बाद इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना, बंग - भंग, मार्ले मिन्टो सुधार द्वारा साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली, संसार का प्रथम महायुद्ध, जापान द्वारा रूस की पराजय, रौलेट एक्ट, जलियाँवाला बाग हत्याकांड, खिलाफत

आन्दोलन, गांधी जी का असहयोग आन्दोलन, स्वराज्य पार्टी की स्थापना जिन्ना का कांग्रेस से पृथक होकर मुस्लिम लीग में सम्मिलित होना, कांग्रेस और सरकार के बीच अनेक परिषदों और कमीशनों और पैक्टों द्वारा की गई सन्धियां, 1936 - 37 में निर्वाचन तथा कांग्रेस और अन्य पार्टियों के मन्त्रिमण्डलों की स्थापना, द्वितीय महायुद्ध का आरंभ, 1939 में कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों का त्यागपत्र, 1940 में पाकिस्तान की मांग, क्रिप्स महोदय का भारत में आगमन, 1942 में "भारत छोड़ो" आन्दोलन, इंग्लैंड में मजदूर दल का विजयी होना, 1946 में आन्तरिक सरकार की स्थापना, मुस्लिम लीग की घृणोत्पादक नीति के फलस्वरूप कलकत्ता, नोआखाली, बिहार और पंजाब में भयंकर साम्प्रदायिक दंगे, सन् 1947, 15 अगस्त को भारत का स्वतंत्र होना आदि भारतीय राजनीति की मुख्य घटनाएं होती है ।

अंग्रेजों ने भारत का शोषण किया तो भारतवासी ने बदले में मुंह तोड़ उत्तर देने के लिए क्रांति और आन्दोलन वाले कदम उठाये, जिससे इस देश की जनता के स्वाभिमान या राष्ट्रीय जागरण का भाव घोषित होता है । देश की जनता ने हर संभव प्रयास किया कि वह अपने भारत को गुलामी के बंधन से मुक्त करें उसे नया रूप दे, नवीन जीवन दे । राजनीति में जागरण का इतनी अच्छी मिसाल विश्व में कम ही मिलती है ।

सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थिति :

हर काल में समाज सुधार के काम होते आये है । अंग्रेजी शासन के दिनों में आने पर भी भारत में सामाजिक एवं धार्मिक सुधार हुए है ।

फिर चाहे हम इसे अंग्रेजी शासन का परिणाम कहें या प्राचीन भारतीय संस्कृति की अपनी आन्तरिक परिष्कार शक्ति मानें । परन्तु यदि प्राचीन भारत की संस्कृति को आन्तरिक निरीक्षण करें, तब हमें यह भी कहना होगा कि इस युग ने एक ऐसे नयेपन की मांग की जिसमें धार्मिक रूढ़िवादिता के लिए जगह नहीं थी । और यह कार्य धार्मिक आन्दोलन के रूप में सम्पन्न हुआ । अर्थात पुराने धर्म को नये समाज के अनुसार बनाया गया। नतीजतन ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी, रामकृष्ण मिशन आदि की स्थापना हुई जो धर्म को तर्क और बुद्धि की कसौटी पर रख कर परखते थे । केवल भावना के बल पर नहीं । मध्य काल में जिस प्रकार धार्मिक, बाह्याडम्बरों व कुरीतियों के खिलाफ भक्ति आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ, ठीक उसी प्रकार आधुनिक युग में इन संस्थाओं ने युग के अनुसार मनुष्य को सामाजिक सुधारों के प्रति आकर्षित किया । अतः इन संस्थाओं का संक्षिप्त विवरण देना उचित होगा ।

<u>ब्रह्मसमाज :</u>

1828 में राजा राममोहन राय ने ब्रह्मसमाज की स्थापना की । आधुनिक युग की नींव का काम करने में राजा मोहन राय प्रथम व्यक्ति थे । हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान हेतु उपनिषदों की इन्होंने वैज्ञानिक ढंग से व्याख्या की । प्राचीन भारतीय संस्कृति विकास हेतु उन्होंने भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कृतियों के समन्वय पर बल दिया । परन्तु कुछ लोग भ्रांत धारणा के शिकार हो गए कि वे पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का अन्धानुकरण कर रहे है । उन्होंने न तो कभी पाश्चात्य संस्कृति के प्रति

सा-प्रदायिकता की भावना रखी और न ही उसे दुत्कारा । वे तो कट्टर वेदान्ती थे । औपनिषदीय सिद्धांतों के बल पर समाज की कुरीतियों का विनाश करना चाहते थे । मूर्तिपूजा, तीर्थाटन, अवतारवाद, जाति-प्रथा, पुरुषप्रधान समाज में नारी का शोषण आदि बाह्याडम्बरों व कुप्रथाओं को जड़ से उखाड़ फेंकना चाहते थे । राम मोहन राय के पश्चात उन्हीं के सिद्धांतों को आगे बढ़ाने वाले देवेन्द्रनाथ ठाकुर, केशवचंद्र सेन जैसे लोग हुए । समाज सेवा के साथ राष्ट्र भक्ति की भावना को विकसित करना ही इनका ध्येय था । केशव चन्द्र के गीतों में सर्वधर्म समन्वय की भावना अभिव्यक्त होती थी । किसी भी धर्म के बारे में सम्पूर्ण उत्साह के साथ बखान करना इनकी विशिष्टता थी, फलतः लोग इसे ईसाई मत से प्रभावित व संचालित समझने लगे । "जगदीश चन्द्र बोस, प्रफुल्लचंद्र राय, राजेन्द्रनाथ सील तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे प्रसिद्ध व्यक्ति इस समाज के सदस्य थे ।"[1]

आर्य समाज :

जिस प्रकार "ब्रह्म समाज" ने समाज में जागरण उत्पन्न किया ठीक उसी प्रकार स्वामी दयानंद सरस्वती ने बम्बई में 10अप्रैल, सन् 1875 में "आर्य समाज" की स्थापना की । स्वामी जी सच्चे वेदान्ती थे । अतः "सच्चे आर्य धर्म के अंतर्गत मूर्तिपूजा, जातिवाद, बाल विवाह और बहुदेववाद"[2]

---

1. "हिंदी साहित्य का वृहत इतिहास" -संपादक डा० विनय मोहन शर्मा, पृ० 12

2. -वही- पृ० 12

को कोई स्थान नहीं दिया । विधवा विवाह, दलितों का उद्धार करना जैसे समाज सुधारक कार्य करने में भी पीछे नहीं रहे । स्वामी जी का "सत्यार्थ प्रकाश" नामक ग्रंथ भी लोकाचार के लिए उल्लेखनीय है । उस ग्रंथ के चौदहवें उल्लास में स्वामी जी लिखते है --"जो सत्य है उसे मानना मनवाना और जो असत्य है उसे छोड़ना छुड़वाना मुझको अभीष्ट है ।[1] परन्तु इसके बावजूद आर्य समाज का मुसलमानों के प्रति "आक्रामक रूप प्रतिगामी प्रवृत्ति का सूचक है ।"[2] स्वामी जी ने भौतिक उन्नति को प्राप्त करने के लिए पाश्चात्य शिक्षा व ज्ञान, विज्ञान को आवश्यक माना ।

प्रार्थना समाज :

"ब्रह्म समाज" के प्रभाव से "प्रार्थना समाज" केशवचन्द्र सेन बंबई और पूना गये थे । उन्हीं के विचारों से प्रभावित होकर डा० आत्माराम पांडुरंग ने 1867 में बंबई में "प्रार्थना समाज" की स्थापना की । इसके मुख्य प्रणेता थे श्री गोविन्द व रानाडे । ब्रह्म समाज के समान यहाँ भी निराकारवादी ईश्वर की साधना पर बल दिया गया । परन्तु जहाँ संत ज्ञानेश्वर, संत लोकनाथ आदि के विचारधारा को अधिक सम्मान प्राप्त हो, वहाँ मूर्ति पूजा का विरोध व सगुण भक्ति उपासना पद्धति का समर्थन संभव न था । अतएव "प्रार्थना समाज" परम्परागत विचार धर्म

- -

1. "हिंदी साहित्य का वृहत इतिहास" - संपादक डा० विनय मोहन शर्मा, पृ. 13

2. "हिंदी साहित्य का इतिहास" -संपादक डा० नगेन्द्र -पृ. 451

को पालन करते हुए जाति प्रथा का विरोध, अन्तर्जातीय विवाह, स्त्री शिक्षा आदि समाज सुधारक कार्य करता था । समाज सुधार की भावना केवल शिक्षित जनों में ही नहीं बल्कि साधारण जनता के मन में भी कूट - कूट कर भरी गयी । वस्तुनिष्ठ विचार धारा, तर्क पद्धति, कुरीतियों से मुक्त नवीन सामाजिक गठन की लालसा जैसी भावनाओं से पता चलता है कि "प्रार्थना समाज" किंचित् पाश्चात्य सभ्यता के वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी प्रभावित था ।

थियोसोफिकल सोसायटी :

थियोसोफी शब्द का अर्थ है - ब्रह्मविद्या । जो 1875 में मादाम ब्लावस्की और ओल्काट ने न्यूयार्क में स्थापित किया था । भारतवर्ष में इसके संस्थापक यद्यपि 1879 में पहुँच चुके थे परन्तु 1882 में ही मद्रास के निकट अड्यार में इसकी शाखा खोल दी । 1893 में श्रीमती एनी बेसेंट भारत आयी और उनकी सक्रियता से यह संस्था लोकप्रिय होने लगी । परन्तु आश्चर्यजनक बात यह है कि यद्यपि यह विदेशी संस्था है और श्रीमती एनी बेसेंट इंग्लैण्ड की शाखा से सम्बद्ध थीं तथापि वह भारत में हिन्दू धर्म व उसकी आध्यात्मिकता से संबंधित प्रभावपूर्ण भाषण देती थीं । देश के अनेक स्थानों में इसकी शाखाएं खुली, जहाँ भारतीय अध्यात्म व संस्कृति पर विचार विमर्श होता था । इस संस्था ने श्रीमती बेसेंट के नेतृत्व में देश में कई शिक्षा संस्थाएं खोलीं जिनमें प्रमुख है बनारस का सेंट्रल हिन्दू कालेज ।

रामकृष्ण मिशन :

"पाश्चात्य आचार विचारों को, ब्रह्म समाज और आर्य समाज के

अतिरिक्त रामकृष्ण और उनके शिष्य स्वामी विवेकानंद ने भी वेदांताश्रयी भक्ति मार्ग ने चुनौती दी । यदि राम मोहन राय भारत के मस्तिष्क और दयानंद बलिष्ट बाहु थे तो रामकृष्ण उसकी आत्मा थे ।'[1]

रामकृष्ण न तो पाश्चात्य सभ्यता, संस्कृति व उनके ज्ञान विज्ञान से और न ही भारतीय वेद, उपनिषदों व पुराणों से वाकिफ थे । दक्षिणेश्वर काली के मंदिर में पुजारी थे, काली के भक्त थे । वे सभी धर्मों को एक मानते थे, मानवता या मानव धर्म में विश्वास रखते थे । प्रेम अर्थात भाई चारा को बढ़ावा देते और अहंकार को तजने का उपदेश देते थे । जाति पाति, ऊंच - नीच आदि में विश्वास नहीं रखते थे । जीवन दर्शन को वे सरल व सीधे ढंग से दृष्टांत देते हुए इस प्रकार से समझाते थे कि शिक्षित, अशिक्षित, गरीब, अमीर सभी उसे आसानी से समझते थे व उनकी इस नेक नीयत व सीधे सादे व्यक्तित्व के प्रति आकृष्ट हो जाते थे । उन्हीं के योग्य शिष्य विवेकानन्द ने रामकृष्ण परमहंस के मरणोपरान्त रामकृष्ण मिशन की स्थापना की । विवेकानन्द का मुख्य उद्देश्य था रामकृष्ण के उपदेशों का प्रचार करना साथ ही सामाजिक बुराइयों को मिटा देना । अतः जाति - पाति, छुआ - छूत, साम्प्रदायिक भेद-भाव आदि के वो सख्त खिलाफ थे । देश की गरीबी व दरिद्रता को वे मिटाना चाहते थे ।'उनके अनुसार धर्म वह है जो शारीरिक, बौद्धिक व आध्यात्मिक शक्ति दे, जो आत्मसम्मान और राष्ट्रीय गौरव प्रदान करने में सहायता करे ।'[2]

- -

1. हिंदी साहित्य का वृहत् इतिहास - संपादक डा० विनय मोहन शर्मा -पृ० 14

2. हिंदी साहित्य का इतिहास - संपादक डा० नगेन्द्र -पृ० 450

हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान :

जहाँ तक एक तरफ इन संस्थाओं के बल पर हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान हो रहा था वहाँ दूसरी तरफ मुसलमान समाज घोर निराशात्मक जीवन जी रहे थे। उनका आत्मबल क्षीण हो गया था और वे अपने धर्म को बचाने के लिए पाश्चात्य शिक्षा से दूर थे। पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान से दूर थे। फलतः इस्लामी धर्म के लोगों में नवजागरण का आलोक मध्यम नजर आता है। परन्तु कुछ उद्यमी व्यक्तियों ने देश के अगाध स्थानों में आन्दोलन करवाये। पटना, मुरादाबाद जैसे शहरों में वहाबी आन्दोलन हुआ जो 1870 तक चलता रहा। पंजाब में अहमदिया आन्दोलन हुआ। परन्तु समाज के अल्प संख्यक लोग ही इसमें शामिल थे। अधिकतर मुसलमान अंग्रेजी हुकूमत में नौकरी की तलाश करते थे। ताकि वे सुखी जीवन व्यतीत कर सकें। परन्तु कुछ ऐसी संस्थाएं थी जो इस्लाम धर्म के निरंतर अध्ययन में लगी हुई थी जिनमें प्रमुख है देवबंद का मदरसा जो उत्तर प्रदेश में है। इस प्रकार धार्मिक आन्दोलनों तथा समाज सुधारों के द्वारा बाल -विवाह, जाति - भेद, धार्मिक मत-भेद, दहेज प्रथा, जमींदारी प्रथा जैसी भीषण समस्याओं के निराकरण की दिशा में प्रयास हुए।

सांस्कृतिक परिस्थिति :

संस्कृति जीवन की पद्धति, जीवन को जीने का एक तरीका है। अतः व्यक्ति के अपने संस्कार उसके समाज की संस्कृति को भी अभिव्यक्त करते हैं। समाज की संस्कृति के उसकी राजनीति और आर्थिक स्थितियों में ही नहीं बल्कि उसकी उस परम्पराओं भी खोजा जा सकता है। आदिकाल

से ही भारतीय संस्कृति के सौन्दर्य को उभारने में सक्रिय थे हमारे दार्शनिक, कलाकार एवं कवि । वास्तव में मानव जीवन का आदर्श है - व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास [अर्थात शारीरिक, बौद्धिक, सौंदर्यात्मक तथा नैतिक विकास] ऐसे में यह जानने की उत्सुकता होती है कि इस नवजागरण के आलोक ने भारतीय संस्कृति को आधुनिकता में ढालने के लिए इसके प्रकाश को किन किन क्षेत्रों और दिशाओं में प्रकाशित किया ।

शिक्षा :

अठारहवीं शताब्दी के अन्त एवं उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में भारत का संपर्क अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली से हुआ । अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार व प्रसार ईसाई मत के प्रचार हेतु शुरू की गई थी । परन्तु भारत उससे कई कारणों से प्रभावित हुआ । भारत को पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान की जानकारी मिली । [कुछ विद्वान यह समझते है कि भारतीय परम्परा क्या कम प्रशस्त थी जो उसे पश्चिम के ज्ञान को प्राप्त करना आवश्यक था ? परन्तु दो जातियों के आपसी संपर्क से संस्कृति का आदान-प्रदान होता है और जो केवल देना जानते है लेना नहीं, वे कूपमण्डूक होते है । सौभाग्य से भारत में यह दुर्गुण नहीं रहा है] । अंग्रेज व्यापारियों से यहां के लोगों से बात करना आसान हो गया । भारतीयों के लिए अंग्रेजी प्रशासन में नौकरी प्राप्त करने का सुविधा हो गई । अंग्रेजी शिक्षा को प्राप्त करने वाले परम्परागत रूढ़िवादिता से किंचित अलग होकर आधुनिक दृष्टिकोण को अपनाने लगे । स्त्री शिक्षा का प्रसार हुआ [जो मध्यकाल में प्रायः समाप्त हो गया था] "अंग्रेजी शिक्षा में पिछड़े रहने के कारण उत्तर भारत के सांस्कृतिक विकास में भी गत्यवरोध आया, जिसे

दूर करने में समय लगा।"[1] इसके अलावा ज्ञान की ज्योति को व्यापकता प्रदान करने के लिए कई शिक्षा के केन्द्र खुले जैसे - 1780 में "कलकत्ता मदरसा" 1791 में "बनारस संस्कृत कालेज", 1801 में [कलकत्ता में] "फोर्ट विलियम कालेज" आदि । 1824 में कलकत्ता एजूकेशन प्रेस की स्थापना हुई जिससे संस्कृत और अरबी पुस्तकें छपने लगी । फोर्ट विलियम कालेज के द्वारा ही भारतीय भाषाओं में गद्य लेखन का सूत्रपात हुआ । इस कालेज के अध्यापकों का काम भी सराहनीय है, कारण उन्होंने देशी भाषा में पाठ्य पुस्तकें, कोश और व्याकरण आदि तैयार किये ।[2]

प्रेस :

भारतीय जन चेतना की अभिव्यक्ति का सबसे सुगम व सरल साधन था प्रेस जो समाज की समस्याओं के बारे में किसी वर्ग विशेष को ही नहीं बल्कि आम जनता को भी अवगत करवाता था । ब्रिटिश सत्ता के प्रति आक्रोश व अपने देश के प्रति राष्ट्रीय भावना को उजागर करने का यह एक सफल माध्यम बन पड़ा था । वैसे तो मुद्रण यंत्र संबंधी जानकारी भारत को 1550 में पोर्तुगालियों के द्वारा हुई, जो भारत में इसका प्रयोग धार्मिक पुस्तकों को छापने के लिए करते थे । 1674 में ईस्ट इंडिया कंपनी ने मुद्रण कार्य शुरू किया था तथा अठारहवीं शताब्दी में देश के प्रमुख नगरों में [जैसे कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, एग्नो में] छापाखाना स्थापित हुआ । परन्तु जन भावना व सामाजिक उलझनों का खुलासा करने वाले पहले व्यक्ति

- -

1. "हिंदी साहित्य का इतिहास" - डा० नगेन्द्र [संपादक] 445

2. -वही- पृ० 444

थे राजा राममोहन राय । उन्होंने 1821 में "संवाद कौमुदी" नामक साप्ताहिक बंगला पत्र निकाला जिसमें लगातार सती प्रथा के बारे में लिखते रहे । इससे भी पहले सिरामपुर से दो पत्र निकलते थे - §1§ समाचार दर्पण" और §2§ दिग्दर्शन । ये दोनों पत्र परम्परावादी थे । राम मोहन ने "ब्रमैनिकल मैगजीन" को प्रकाशित किया जो उपर्युक्त दोनों पत्रों का प्रत्युत्तर था । फारसी भाषा में भी उन्होंने दो पत्र निकाले - "जाम - ए - जहाँ - नुमा" और "मीरत - उल - अखबार" जिनकी प्रेरणा स्त्रोत थीं राममोहन राय की पत्रिकाएं । बम्बई से " बाम्बे समाचार" 1822 में, 1830 में "बंगदूत" पत्र कलकत्ता से, हिन्दी में "उदन्तमार्तण्ड" बाद में "प्रजामित्र", "समाचार सुधावर्षण" 1854 में कलकत्ता से निकला । इस प्रकार देश के कोने कोने में राष्ट्रीयता का भाव जागृत करने में प्रेस का बहुत बड़ा हाथ था - जिसके बल पर नेता, समाज - सुधारक, लेखक आदि प्रमुख कर्त्ताओं ने सामाजिक समस्याओं को, आम जनता के दुःखों व कष्टों को, देश को आजाद करने के लिए राष्ट्रीय भावना को जागृत किया ।

यातायात के साधन :

अठारहवीं शताब्दी की अराजकता एवं अस्त व्यस्तता के कारण सड़कों के निर्माण कार्य व मरम्मत करने के प्रति उपेक्षा की भावना को अपनाया गया था । उन्नीसवीं सदी में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का ध्यान उस तरफ आकर्षित हुआ । लेकिन फौजियों को तोप लाने वाली सड़कों की मरम्मत करना ही उनका ध्येय था, नागरिक जनता के परिवहन की हालत को सुधारने में उनका कोई दिलचस्पी नहीं था । लार्ड डलहौजी इस दिशा में

भारी प्रयत्नशील रहे । उनके अधिकारियों ने कच्ची दूरी की पक्की सड़कें बनाई । इतना ही नहीं भारत वर्ष में नगरों की अवस्थाओं के कारण यातायात के साधनों में विकास नहीं हुआ जैसे कि व के अनेक क्षेत्रों में हुआ था । इसके अलावा राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक परिवर्तनों के कारण आधुनिक युग यातायात के साधन में कुछ सुधार की मांग कर रही थी । "1843 - 44 में रेल निर्माण की प्रस्तावना भारत के सामने रखी गई थी । 1845 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने ग्रेट इण्डियन पेनिनसुलार रेल कम्पनी को कलकत्ता और बम्बई के बाद दो छोटी - छोटी रेल लाइनें बनाने का ठेका दिया गया । 1855 में कलकत्ता और रानीगंज के बीच 121 माइल का व बम्बई और मद्रास के बीच 37 माइल का रेल मार्ग बनाया गया । 1856 में मद्रास एवं अरकोट के बीच 65 माइल की रेल लाइन बनायी गयी ।"[1] इस प्रकार 1869 तक भारत में रेल मार्ग के निर्माण कार्य का प्रथम भाग समाप्त हो गया था । परन्तु डलहौजी का रेल निर्माण के इस कार्य प्रणाली को इतना जल्दी कार्यान्वित करने का प्रमुख कारण क्या रहा होगा ? क्या इस देश को सुधारना ? नहीं । बल्कि भारतीय साम्राज्य के विभिन्न स्थानों पर फौजों की शक्ति को प्रभावशाली ढंग से बढ़ाना था । उन फौजों का असर हो ऐसा तैनात रहे और रेल के माध्यम से वे त्वरित गति से आपातकालीन स्थल पर पहुंच जाये । इसके अलावा अंग्रेजों को आर्थिक लाभ भी हुआ । औद्योगिक क्रान्ति होने के कारण इंग्लैण्ड में कच्चा माल को अलग अलग स्थानों से प्राप्त करने की सुविधा व तैयार माल को बेचने के लिए भारत के विभिन्न

---

1. British Paramountcy and Indian Renaissance - I- R.C.Majumdar - Page 384

स्थानों में पहुंचाने का यह कार्य रेल का सुविधा के न समय में हो सकता था । परन्तु भारत में रेल निर्माण से आशान्वित हुआ । उसे विशाल होने के बावजूद लोगों में आपसी मेल - जोल व सद्भाव बढ़ने लगा । एक प्रांत के लोग दूसरे प्रांत के लोगों से परिचित होने लगे व उनके विचारों का आदान-प्रदान भी बढ़ने लगा । राष्ट्रीय भावना को उद्दीप्त करने का यह सुनहरा अवसर साबित हुआ । बाढ़ व अकाल जैसे प्राकृतिक संकट के समय एक स्थान से दूसरे स्थान तक खाद्य पदार्थ व अन्य आवश्यक चीजों को भेजने की सुविधा हो गई । किताबों, पत्र - पत्रिकाओं, जैसी महत्वपूर्ण चीजों को दूर - दूर तक सरलता से पहुँचाया जाता था । रेल में चढ़ने वाले व्यक्ति में आपसी भेद - भाव, जाति - पाति, छुआ-छूत की भावना आदि कम हो गई क्योंकि रेल समाज के किसी एक वर्ग के लिए नहीं बल्कि सभी उसका उपयोग कर सकते थे । धीरे धीरे जातिवाद का वो कट्टरपन कम हो रहा था । इस प्रकार रेल रूपी इस वाहन से भारत का निरन्तर आधुनिकता की ओर आगे बढ़ रहे थे ।

संगीत :

"संगीत" शब्द के अंतर्गत गायन, वादन तथा नृत्य - तीन कलाओं का समावेश होता है । "संगीत रत्नाकर" नामक ग्रंथ में लिखा है :-

> गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते ।
> नृत्यं वाद्यानुगं प्रोक्तं वाद्यं गीतानुवृत्ति च ।।

अर्थात् गायन, वादन तथा नृत्य - इन तीन कलाओं के मेल को संगीत कहते है । इनमें नृत्य वाद्य के आधीन है तथा वाद्य गायन के

अर्थान है ।"[1] अत: संगीत के बारे में संक्षेप में विवरण देना आवश्यक है ।

<u>प्राचीन काल :</u>

भारतीय संगीत इतना प्राचीन है कि इसके स्त्रोत को ढूढ निकालना मुश्किल है । प्राचीन होने के कारण भारतीय संगीत के जन्म का इतिहास पौराणिक गाथाओं में ही मिल सकता है । गाथाओं को न सुनाकर, उस गाथा में इंगित करने वाले उन प्रतीकों को जान लेना उचित होगा । संक्षेप में - मां सरस्वती के हाथों में वीणा, नारद ऋषि के हाथ में नारदीय वीणा, शंकरजी के हाथ में डमरू विष्णु भगवान के हाथ में शंख, इत्यादि इस बात के सबूत है कि सृष्टि के साथ को भारतीयों को संगीत का ज्ञान प्राप्त था ।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यदि इसका परीक्षण किया जाए तो पता चलेगा कि वैदिक कालीन सभ्यता के उच्चतर स्तर पर पहुंचने से पहले ही संगीत का जन्म हो चुका था । मनुष्य ने जब भी अपने भावों को अभिव्यक्त करना चाहा तभी उसे ध्वनि का सहारा लेना पड़ा । डा० स्टर्ट ने कहा - "भावाभिव्यक्ति की सहायता"[1] से संगीत का जन्म हुआ है ।

वैसे पूर्व पाषाण काल से ही संगीत का प्रचलन था तथा उत्तर पाषाण काल में इसकी अवस्था सुधर चुकी थी । उस काल में संगीत के द्वारा रोगों का चिकित्सा आरंभ हो चुका था ।

- -

1.'Pathogenic or Passion born method'

दि स्टोरी आफ इण्डियन म्यूजिक -ओ गोस्वामी -पृ. 2 से

"भारतीय संगीत का इतिहास"- भगवतशरण शर्मा-पृ. 3 से उद्धृत

1922 ई. में पंजाब में मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में जो खुदाइयां हुई, उनसे प्राप्त मूर्तियों की मुद्राओं को देखकर पुरातत्ववेत्ताओं तथा इतिहासकारों ने यह अनुमान लगाया कि भारत में ईसा 4500 से 5000 वर्ष पूर्व ही संगीत का जन्म हो चुका था ।

चौथी से सातवीं शताब्दी तक गुप्तकालीन युग आता है जिसे भारतीय संगीत का स्वर्ण युग माना जाता है । आठवीं से बारहवी शताब्दी तक मुसलमान संस्कृति का प्रभाव पड़ने के बावजूद भारतीय संगीत का आधिपत्य रहा ।

मध्य काल :

भक्ति आन्दोलन के समय भजनों का प्रादुर्भाव हुआ । ईश्वर के दिव्य रूप को भजनों की लड़ियों में गूंथ दिया गया था । इन भजनों के द्वारा जहां एक ओर संगीत का प्रचार हुआ वहां दूसरी ओर ईश्वरीय ज्ञान भी सामान्य लोगों में पहुंचा । इससे जनता का नैतिक चरित्र ऊपर उठने लगा और संगीत को एक नवीन शक्ति प्राप्त हो गई । लोग संगीत की साधना में लग गये । फलस्वरूप मध्य काल में मानव जीवन पर जो अनैतिकता की धूल छा गई थी, वह इस काल में हटने लगी । सूफियों, भक्तों और धर्म प्रेमियों के संगीतमय प्रवचनों द्वारा भारतीय संगीत क्रमशः उच्चतर स्थिति को प्राप्त हो रहा था । अकबर के समय लगातार शास्त्रीय प्रयोगों में दृढ़ता आ रही और धर्म को देख रहे थे । फिर भी इस युग में ईरानी और भारतीय पद्धतियों को मिलाकर संगीत की एक ऐसी पद्धति बनाई गई जिसमें दोनों विशेषताओं का समावेश हुआ । इन

काल में बड़े - बड़े धार्मिक महात्मा एवं संगीत के विद्वान उत्पन्न हुए जिसके कारण लोकजागरण के इस युग को संगीत का स्वर्ण युग माना गया। इस काल के अनेक बड़े संगीतज्ञों में स्वामी हरिदास [तानसेन के गुरु] का अग्रगण्य स्थान है। उस्ताद तानसेन भी इसी समय के है। इसी काल में महाप्रभु वल्लभाचार्य ने पुष्टि भक्ति एवं नवधा भक्ति में कीर्तन का समावेश किया। पुष्टि मार्गीय सेवा विधि के अनुसार अष्ट प्रहर की झांकी के अनुकूल ही संकीर्तन एवं पदों का गायन होता था। "अष्ट छाप के कवि सूरदास, कुम्भनदास, नन्द दास, छीत स्वामी, चतुर्भुजदास, गोविन्द दास एवं कृष्णदास कवि ही नहीं, महान संगीतज्ञ एवं कीर्तनकार थे।"[1] सूर सागर में संगीत के भेद, अंग, नाद, ग्राम, बाईस श्रुतियाँ, इक्कीस मूर्छना, उनन्चास कूट तान, सप्त स्वरों के नाम, सप्तक, औड़व, आरोही के साथ साथ ध्रुपद और धमार का उल्लेख भी पदों में मिलता है।

कृष्ण जन्म की बधाई, रास, होली, वसन्त, वर्षा, मल्हार हिन्डोलना आदि के अवसर ये कविगण अपने पदों के द्वारा प्रभु को रिझाते थे। "इनके पदों के लिए राग रागिनियों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। पदों में चर्चरी ताल, एक ताल, झपताल तथा ध्रुवताल आदि के उल्लेख भी मिलते है। जिन वाद्यों का उल्लेख इन कवियों ने स्थान स्थान पर किया है, उनमें झालर, बीन, रबाब, किन्नरी, स्वर मंडल, जल तरंग पखावज, उपंग, शहनाई, सारंगी, कठ ताल, मुँह चंग, झंझरी, मृदंग

---

1. हरिमोहन मालवीय के लेख "हिंदी भक्त साहित्य और संगीत" के आधार पर" - "भारतीय संगीत का इतिहास" - [भगवतशरण शर्मा] से उद्धृत -पृ. 73 पर

डफ, झाझ, झांझ, शृंगी, भेरी, नगाड़ा, दुंदुभी, ढोल, वेणु, पिनाक,मंजरी, दमामा मुरली इत्यादि है । इनके रास के पदों में तातार्थेई तत्थेई,तत्थेई, ततथे, थेईतत्थेई, तक्टि, तकाकिट इत्यादि नृत्य के अनेक बोल तथा पारिभाषिक शब्द भी मिलते है ।

17वीं सदी से लेकर 18वीं सदी तक संगीत केवल मन को प्रफुल्ल करने वाली वस्तु मात्र हो गयी । उसका आत्मा से संबंध हटता गया । परन्तु संगीत के द्वारा मन को लुभाने की इस प्रवृत्ति के कारण ठुमरी गायन का प्रचलन हुआ । ठुमरी में अनेक प्रकार के छोटे - छोटे स्वर समुदायों की रचना की गई जिससे वह श्रुति मधुर होने केसाथ ही मन को भी हर्षित करें ।

आधुनिक युग :

अंग्रेजों ने भारतीय संगीत की उपेक्षा की, इसलिए सभ्य समाज शास्त्रीय संगीत को निम्न कोटि का समझा गया । फलत: व्यवसायियों ने संगीत को अपने सुविधानुसार विकृत कर दिया जिससे संगीत पर पूर्ण अधिकार वेश्याओं ने कर लिया । जिनके पास संगीत का ज्ञान था उन्हें स्वार्थपरता की भावना ने घेर लिया । उनके इस वैयक्तिक स्वार्थ का ही निचोड़ है, घरानों की व्युत्पत्ति । इस तरह भारतीय संगीत घेरों में विभक्त हो गया और उसके सार्वभौम व सनातन सिद्धांतों को काफी ठेस पहुँचा । न वाहर के कलात्मक ज्ञान से वाकिफ थे और न ही अपने ज्ञान को वितरण करने में विश्वास रखते थे । प्रमुख घरानों के नाम इस प्रकार है -

§1§ तानसेन घराना §2§ ग्वालियर घराने का घराना §3§ दिल्ली घराना §4§ आगरा घराना §5§ फतेहपुर सीकरी घराना §6§ सहारनपुर घराना §7§ ग्वालियर घराना §8§ सहसवान घराना §9§ अतरौली घराना §10§ सिकन्द्राबाद §बुलन्द शहर§ घराना §11§ खुरजा घराना §12§ जयपुर घराना §13§ मथुरा घराना ।

घराने का विकास अलग अलग स्थानों में हुआ, जिससे संगीत का मौलिकतत्त्व बंटते हुए विभिन्न ढंग से संगृहीत था जिसका प्रचार - प्रसार कम मात्र में हुआ, मगर हुआ । परन्तु, इस युग में दो महापुरुषों ने संगीत का उद्धार किया व इसका सही सही ढंग से प्रचार प्रसार किया और ये दो महापुरुष हैं - स्वर्गीय पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर तथा स्वर्गीय पं० विष्णु नारायण भातखण्डे । संगीत के स्कूल चारों तरफ खुलने लगी । सर्वप्रथम 5 मई, 1901 ई० को लाहौर में पं० विष्णु दिगम्बर जी ने "गान्धर्व महाविद्यालय" नाम से एक संगीत विद्यालय स्थापित किया । 1909 में बम्बई में इसकी शाखा खुली । 1917 में "बड़ौदा म्यूजिक कालेज" तथा 1940 को दिल्ली में इसकी शाखाएँ खुल गई । 1926 ई० में एक स्कूल §आधुनिक नाम भातखण्डे यूनिवर्सिटी तथा प्रधान मैरिस म्यूजिक कालेज§ लखनऊ में दूसरा §माधव संगीत विद्यालय§ ग्वालियर में तथा तीसरा §विष्णु दिगंबर संगीत विद्यापीठ या प्रयाग संगीत समिति§ इलाहाबाद में स्थापित हो गया ।

इसी काल में पं० भातखण्डे जी और पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने अपना अपना स्वर लिपि पद्धति प्रचलित था । भारतीय नवजागरण के परिणामस्वरूप रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने प्राचीन कला गान को एक नया

लेकर कीर्तन पद्धति के आधार पर शब्दों के अर्थों के अनुसार गीत संगीत में एक अद्भुत मिठास भर दिया जिसे रवीन्द्र संगीत कहा जाने लगा । कुछ विद्वानों के अनुसार रवीन्द्र संगीत पूर्व एवं पश्चिम के मिश्रित सुर कल्पना है । ब्रिटिशों का दबदबा होने के बावजूद संगीत सम्मेलन भी होने लगे । उत्तर भारत में सर्वप्रथम 1916 ई॰ में बड़ौदा के महाराज सियाजी राव गायकवाड की संरक्षता में, द्वितीय 1918 में दिल्ली में नवाब रामपुर की देख - रेख में, तृतीय 1918 में ही बनारस में, चतुर्थ और पंचम क्रमशः 1825 ई॰ व 1926 में लखनऊ में संगीत सम्मेलन हुए ।

इस युग में संगीत संबंधी अनेक पत्र - पत्रिकाएं भी निकले । कुछ मासिक पत्रों के नाम है -- "संगीतामृत प्रवाह", "संगीत", "संगीत कला विहार", "संगीत लहरी", "मौसीकार", "रिसालए तानसेन", "संगीत माधुरी", "कलावन्त", "म्यूजिक मिरर", "संगीत कला", "गन्धर्व", "रागिनी" और "फिल्म संगीत" इत्यादि के नाम प्रमुख है ।

चित्रकला :

जिस प्रकार सरिताओं की ऊंची ऊंची लहरों से सागर की उत्ताल तरंगों से, पक्षियों के मनुहारी कलरव से, और समीर के मधुर शीतल झोंके की अंगड़ाइयों की ध्वनियों को सुनकर ही मनुष्य ने संगीत को जन्म दिया, प्राकृतिक रूप से बने हुए पत्थर के टुकड़ों को देखकर मूर्तिकला का जन्म हुआ होगा ठीक उसी प्रकार मनोहर दृश्यों एवं छायाओं को देखकर चित्रकला का भी जन्म हुआ होगा । भारतीय चित्रकला प्राचीन काल से ही अपना एक वैभवपूर्ण इतिहास रखता है । मुसलमानों के प्रभाव से केवल

संगीत, भवन निर्माण कला, मूर्ति कला या साहित्य में ही नहीं वरन् चित्रकला में भी एक अद्भुत लावण्य प्रतिभासित होने लगा था । स्वयं अकबर चित्रकला के बहुत प्रेमी थे । परन्तु औरंगजेब जैसे राजाओं के शासन काल में ललित कलाओं का ह्रास होना आरंभ हुआ । भले ही आज विश्व में ललित कला के क्षेत्र में भारत का प्रमुख स्थान हो परन्तु आधुनिक काल में भारतीय चित्रकला पाश्चात्य कला से प्रभावित होने लगी । पाश्चात्य चित्रकला के प्रभाव से तैल चित्रों का अंकन प्रारंभ हुआ परन्तु विषय धार्मिक व पौराणिक था । इस दिशा में ट्रावनकोर के राजा रवि वर्मा का नाम उल्लेखनीय है । हिंदी भाषा के "सरस्वती" नामक पत्रिका में इनके चित्रों का प्रकाशन हुआ । 1854 में कलकत्ता में आर्ट स्कूल की स्थापना हुई । इससे भारतीय चित्रकला को एक नई दिशा मिलने लगी । नयी परम्परा के कुछ उल्लेखनीय नाम इस प्रकार है - हैवेल, अवनीन्द्रनाथ ठाकुर, पर्सी ब्राउन, आनन्दकुमार स्वामी आदि प्रसिद्ध है । युगीन परिवर्तन से अनुप्राणित इस नई जीवन दृष्टि की रूपरेखा इनके चित्रांकन में झलकने लगी । अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने पश्चिम एवं पूर्व की मिश्रित शैली को जन्म दिया - जिसे "बंगाल शैली" भी कहा जाता है । "बंगाल शैली" को निखारने वाले व उसमें सौंदर्य शास्त्रीय रूप प्रदान करने वाले थे । नन्दलाल बसु, सुरेन्द्र गांगुली, असित कुमार हालदार, के.एस.मजूमदार जैमिनी राय आदि । सन् 1907 में गगनेन्द्रनाथ ठाकुर ने "इंडियन सोसाइटी आफ ओरियेंटल आर्ट्स" की स्थापना की ।"[1] इस प्रकार भारतीय चित्र शैली का एक विकसित एवं परिपक्व रूप भी इस नवजागरण की ही देन है । "चित्र शैली में भी बंगाल ने पहल की और अपनी चित्र परम्परा को

- -

1. "हिंदी साहित्य का इतिहास" [संपादक डा० नगेन्द्र] पृ. 454

नये संदर्भों में पुन: जीवित करने का प्रयत्न किया । भारतीय नवजागरण कीअभिव्यक्ति चित्रों के माध्यम से भी हुई ।"[1]

साहित्य में नवजागरण :

भारतीय साहित्य में नवजागरण की बात को संक्षेप में कहना बहुत मुश्किल है क्योंकि भारत के इस विशाल भू-भाग में जहाँ अनेक भाषाएं बोली जाती है । वहाँ किस साहित्य में पहले नवजागरण हुआ इसे कहने के लिए व्यापक विश्लेषण की आवश्यकता होगी । परन्तु नवजागरण प्राय: सभी भाषा के साहित्य में हुई यह निर्विवाद सत्य है । कुछ विद्वानों का यह मत है कि नवजागरण का प्रभाव सर्वाधिक बंगला साहित्य पर पड़ा । आचार्य राम चन्द्र शुक्ल हिंदी साहित्य में लिखते है - "संवत 1922 में वे (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र) अपने परिवार के साथ जगन्नाथ जी गये । उसी यात्रा में उनका परिचय बंग देश की नवीन साहित्यिक प्रगति से हुआ । उन्होंने बंगाल में नये ढंग के सामाजिक, देश - देशान्तर सम्बन्धी ऐतिहासिक और पौराणिक नाटक, उपन्यास आदि देखे और हिंदी में वैसी पुस्तकों के अभाव का अनुभव किया ।"[2] शायद इसी आधार पर वे हिंदी साहित्य में परिवर्तन लाना चाहते थे ।

भारतीय साहित्य के प्रमुख भाषाओं में नवजागरण सम्बन्धी जानकारी संक्षेप में दिया जाता है :-

- -

1. हिंदी साहित्य का इतिहास : (संपादक - डा0 नगेन्द्र) पृ. 454

2. -वही- पृ. 454

बंगला साहित्य :

आधुनिक युग की भाषाओं में बंगला भाषा सबसे समृद्ध भाषा मानी जाती है । उन्नीसवी शताब्दी में राजा राम मोहनराय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर जैसे समाज सुधारक एवं ईश्वर चन्द्र गुप्त, माइकेल, मधुसूदन दत्त, बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय जैसे साहित्यकारों ने बंगाल में एक नवीन युग की घोषणा की । यदि यह मान लिया जाय कि इस नवीनता के पीछे पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति का हाथ था तो इसमें कोई हैरानी की बात नहीं । कारण 1757 में बंगाल की पुरानी राजधानी मुर्शिदाबाद शहर को देखकर क्लाइव ने यह लिखा, "यह शहर लन्दन के शहर समान घनी है, घनी आबादी वाला है और बड़े क्षेत्र में फैला हुआ है । फर्क यह है कि लन्दन की तुलना में यहाँ ऐसे लोग है जिनके पास कई ज्यादा सम्पत्ति है । (विलियम डिगबी लिखित प्रौसपेरस ब्रिटिश इण्डिया, 1901 में उद्धृत पृ. 104)[1] यहीं से शुरुआत होती है भारत के उस प्रथम युद्ध की (अंग्रेजों के साथ) जिसे "प्लासी का युद्ध" कहा गया है और बंगाल से अंग्रेजों का सीधा सम्पर्क । भारत के अन्य प्रान्तों की तुलना में बंगाल के साथ अंग्रेजों का घनिष्ठ सम्पर्क रहा । अत: नव जागृति की भावना तेज रफ्तार से इस प्रदेश में प्रवाहित होने लगी । फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना साथ ही ईसाई मत का जोरदार प्रचार प्रत्युत्तर में स्वधर्म को स्थापित करने का प्रयास, शिक्षा के प्रचार हेतु विभिन्न स्कूलों का खुलना, स्वभाषा में पाठ्य पुस्तकों का छपना आदि बंगाल में साहित्यिक नवजागृति का प्रमाण था । गीतांजलि के

---

1. भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद - रामविलास शर्मा - पृ. 56

लिए रवीन्द्रनाथ ठाकुर को नोबेल पुरस्कार प्राप्त होना बंगला नवजागृति को महिमान्वित करने वाली बात थी ।

असमी व उड़िया :

असमी व उड़िया साहित्य में नवजागरण की धारा बंगाल से अलग न थी । असमिया साहित्य की राष्ट्रीय जागृति के अग्रदूत थे - आनंदराम फुकन । इनको समर्थन करने वाले कनकलाल भट्टाचार्य, हेमचन्द्र बरुआ आदि थे । इन लोगों ने देश भक्ति या देश प्रेम का प्रचार किया । अपने गीतों के साथ ही समाज को सुधारने के प्रति भी इनका झुकाव था, अतः सामाजिक समस्याओं का निवारण व्यंग्य रचनाओं के माध्यम से करते थे । इनके कुछ लेख भी काफी लोक प्रिय थे । चन्द्रकुमार अग्रवाल, लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ तथा हेमचन्द्र गोस्वामी जैसे महान साहित्यकार आज भी उनके सराहनीय कार्य के लिए प्रशंसनीय है ।

उड़िया में नवचेतना का शंख फूंकने वाले थे फकीर मोहन सेनापति, राधानाथ एवं मधुसूदन । इन्हीं के बताए हुए रास्ते पर अमल करने वाले थे गोपबंधु दास, व उनके समर्थक (इन्हें सत्यवादी दल भी कहते थे) । राष्ट्रीय व सामाजिक चेतना को फैलाने वाले गोपबंधु के समर्थक थे तथा कुछ अन्य कवि भी प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से इनसे प्रभावित थे ।

मराठी :

मराठी साहित्य में नवजागरण के स्वर बहुत व्यापक रूप से गूंज रहा था । बम्बई में समुद्र का होना अंग्रेज व्यापारियों के व्यापार के लिए

सुनहरा मार्ग था जिससे उन्हें एक अन्य बाजार मिल गया था । फलतः कलकत्ता के समान महाराष्ट्र के जनता को भी अंग्रेजों से निकट संसर्ग स्थापित करना पड़ा । अंग्रेजों के निकट सम्पर्क से बम्बई में प्रेसिडेंसी कालेज की स्थापना हुई । इस कालेज के अधिकारी एलफिंस्टन और माल्कम की उदारता के कारण नई शिक्षा नीति बम्बई में पनपने लगी । मराठी साहित्य के नवजागरण के कुछ अन्य विचारणीय बिन्दु हैं - बम्बई एजुकेशन सोसायटी, दक्षिण प्राइज कमेटी के कार्य, ईसाई मत का प्रचार, बाल शास्त्री जम्भेकर तथा कृष्णशास्त्री चिपलूणकर द्वारा राष्ट्रीय भावना को उद्घोषित करने वाली पत्र - पत्रिकाएँ, केसरी के प्रकाशन तदुपरान्त लोक मान्य तिलक, न्यायपति रानाडे तथा गोपाल कृष्ण गोखले जैसे महा-पुरुषों के योगदान से मराठी साहित्य में आधुनिकता आ गई । मराठी साहित्यकार भी बंगाली साहित्यकार के समान साहित्य को एकांगी बनने नहीं दिया । एक ओर जहाँ भवभूति, शूद्रक, कालिदास आदि की रचनाओं का सरलीकृत रूप बताया जाता वहाँ दूसरी तरफ मिल्टन, ड्राइडन स्काट, पोप, ग्रे, गोल्डस्मिथ, वर्डसवर्थ आदि के साहित्यिक कृतियों का भी अनुवाद किया । क्रांतिकारी नेता सावरकर के "पवाड़े" राष्ट्रीय जागरण का ज्वलंत उदाहरण है । केशवसुत तथा कवी का नाम भी उल्लेखनीय है ।

गुजराती :

गुजराती साहित्य में नवजागरण का समय 1825 से माना गया । नवजागरण का प्रमुख नेता थे नर्मद । राष्ट्रीय चेतना का विकास लगातार होता रहा । परन्तु उसका चरमोत्कर्ष गान्धी जी से हुआ, कारण गुजराती साहित्यकार ज्यादातर उनसे प्रभावित थे ।

पंजाबी, उर्दू और हिंदी :

उन्नीसवीं शती के मध्य में नवजागरण इन भाषाओं से निर्मित साहित्य के दरवाजे पर दस्तक दे रहा था । पंजाब के सर अतरसिंह, उर्दू के सर सैयद अहमद खाँ तथा हिंदी भाषा में एक तरफ भारतेन्दु तथा दूसरी तरफ शिव प्रसाद सितारे हिंद ने संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद किया साथ ही अंग्रेजी ज्ञान विज्ञान की पुस्तकों को भी अनूदित किया जिससे ज्ञान का एक नया दौर शुरू हो गया ।

उर्दू के आधुनिक काव्य को नया रूप प्रदान करने वाले थे हाली जिन्होंने प्राचीन रूढ़ीबद्ध तरीके को हटाकर काव्य में नवीनता का उद्घाटन किया । उनकी वाणी में क्रांति का स्वर मुखरित हो उठता था । सामाजिक व राजनीतिक बुराईयों के प्रति आवाज उठाने वालों में भी हाली का नाम अग्रगण्य है । गद्य के क्षेत्र में सर सैय्यद अहमद खाँ का नाम सर्वोपरि है -- कारण वे आधुनिक गद्य के जन्मदाता कहलाते है । 1862 में सर सैय्यद ने अंग्रेजी की अमर ग्रंथों के अनुवाद करने के लिए एक साहित्यिक व वैज्ञानिक संस्था को स्थापित किया तथा 1870 में "तहजीबुल अखलाक" नामक पत्रिका निकाली, जिसने भाषा शैली सम्बन्धी क्रांतिकारी परिवर्तन की तथा इसी पत्रिका के माध्यम से कुछ नये गद्य लेखकों का निर्माण किया व उन्हें प्रोत्साहित किया ।

हिंदी में नवजागरण काल "भारतेन्दु युग" नाम से प्रसिद्ध है । भारतेन्दु व उनके सहयोगी लेखकों ने साहित्य का पुनर्निर्माण किया । साहित्य में नवीन धारा का सूत्रपात किया तथा इसमें नव चेतना व

जन चेतना को विकसित किया । इस युग में हिंदी पद्य क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ तथा गद्य लेखन का शुभारंभ हुआ ।

एक तरफ जहाँ ईसाई मत के प्रचारकों का अपने उद्देश्य पूर्ति के लिए जबरदस्त हमला शुरू हुआ वहाँ दूसरी तरफ हिंदी, उर्दू और पंजाबी साहित्य उच्च स्वर में नवजागृति के स्वर को सुनाने में सफल हुए ।

तमिल :

दक्षिण भारत की भाषाओं में तमिल भाषा सबसे समृद्ध भाषा है । तमिल पुनर्जागरण के प्रमुख नेता थे रामलिंग स्वामीगल । इन्होंने तमिल काव्य द्वारा भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान करने का प्रयास किया । इनका दृष्टिकोण बहुत उदार था । धर्मों की एकता सम्बन्धी बात करने वाले तमिल साहित्य में शायद यह पहला व्यक्ति थे । इसके बाद कवि सुब्रह्मण्यम स्वामी का समय आता है । इनकी वाणी में विवेकानन्द का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है । सामाजिक राजनीतिक व सांस्कृतिक उत्थान के प्रति अभिलाषा हेतु पुरातन परिस्थितियों को ये बदलना चाहते थे । इनकी वाणी में राष्ट्रीय चेतना व राष्ट्र प्रेम का स्वर प्रतिध्वनित हो उठता है । चिदम्बरम पिल्लई तथा वो.वी.एस अय्यर ने उनके देश प्रेम की लहर को और भी अधिक आवेग प्रदान किया । भारतीदासन एवं उनके परवर्ती कवियों ने साम्यवादी भावना को अपने साहित्य के द्वारा उच्च आवाज में कहने की कोशिश की ।

तेलुगु :

तेलुगु भाषा में पुनर्जागरण का उद्घोष किया वीरेशलिंगम पंतुलु ने । उनका समग्र साहित्य प्रायः इस नवीन जागरण की चेतना से अनुप्रेरित है ।

गुडाड बप्पाराव से वीरेशलिंगम के पथ का अनुसरण किया तथा स्वभाव तेलुगु आन्दोलन के माध्यम से आधुनिक तेलुगु साहित्य का विकास किया। अतः आधुनिक तेलुगु साहित्य के पुरोधा माने जाते है। रायप्रोलु सुब्बा राव जैसे कवि बाद में आते है जिन्होंने कविता सौंदर्यशास्त्रीय ढंग के आधार प्रस्तुत करते है, कविता के रूमानी सौंदर्य को अभिव्यक्त करते है। आजादी के आस पास के तेलुगु कवि है श्रीरंग श्रीनिवास राव, दाशरथी आदि जिनके काव्य में सामाजिक चेतना से अनुप्राणित साम्यवादी स्वर मुखरित हो उठते है। श्री श्री ने तरुण कवियों के मार्ग को प्रशस्त किया।

कर्नाटक :

सन् 1890 में कर्नाटक में नव चेतना का उदय हुआ। विद्यावर्द्धक संघ के संस्थापक जो अधिकतर अंग्रेजी शिक्षा को प्राप्त कर चुके थे, के द्वारा इस नवचेतना का उन्मेष हुआ और भाषा की साहित्यों के समान यहाँ भी संस्कृत तथा अंग्रेजी भाषा में महत्वपूर्ण अनुवाद हुए। प्राचीन विषय वस्तु को नवीन ढंग से, नये आलोक में देखने का, परखने का सुन्दर प्रयास किया गया। देश में राष्ट्रीय भावना या राष्ट्र प्रेम को जगाने हेतु श्रीकण्ठय्या, गोविन्द पै, वेंकटेशर भट्ट ने वीर भावना को उद्दीप्त करने वाली गीतों की रचना की। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सौंदर्य चेतना से प्रभावित तत्कालीन कर्नाटक कवि पुट्टप्पा, गोकाक आदि ने उस ढंग की रोमानी सौंदर्य को जगाने वाली कविताओं की सर्जना की। तदुपरान्त कृष्णाराव, कृत तथा निरंजन जैसे साम्यवादी भावना को अभिव्यक्त करने वाले कवियों का आगमन हुआ जिन्होंने जन चेतना को अपना मुख्य उद्देश्य

मानकर उसी को अपनी कविता में स्थान देने लगा । गोपालकृष्ण अडिग ने "नव्य काव्य" तथा नरसिंह स्वामी ने "नवीन काव्य" की सर्जना कर आधुनिक मूल्यों को साहित्य में स्थापित करने का प्रयास किया ।

मलयालम :

केरल में भी 19वीं शती के मध्य तक नवजागरण की लहर प्रवाहित होने लगी थी । नयी प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता महसूस की जाने लगी थी । अन्य भाषाओं के साहित्य के समान मलयालम भाषी भी अंग्रेजी एवं संस्कृत साहित्यों के अनूदित रूप को पढ़ने लगे । केरल वर्मा, वेनमणि, रामराजवर्मा आदि मलयालम साहित्य में पुनर्जागरण लाने में समर्थ थे । वल्लतोल ने परवर्ती रचनाओं में राष्ट्रीय भावना को अभिव्यक्त किया । राष्ट्र गौरव के प्रत्येक चिह्न लेकर उन्होंने महत्वपूर्ण काव्यों की रचना की । सामाजिक एवं आर्थिक शोषण आदि के प्रति उनमें बड़ा दुःख था जिसे वे अपनी रचनाओं में प्रकट करते जिससे पाठक के लिए भी उतना आर्द्रता से पूर्ण एवं मर्मस्पर्शी विषय बन जाता था । त्रिशूर में "जीवित साहित्यम" नाम से 1926 में एक "साहित्यिक संस्था की स्थापना हुई । बाद में "पुरोगमन साहित्य" नाम से इसका पुनः नामकरण किया गया । प्रगतिशील कवियों में एन॰वी॰कृष्ण वारियर, इडश्शेरी, वायलार रामवर्मा, ओलप्पमन्न, ओ॰एन॰वी॰कुरुप्प, पी॰भास्करन, अनुस आदि उल्लेखनीय है । चंगम्पुषा व उनके समर्थक कवि व साहित्य संबंधी पुरानी दृष्टिकोण को बदलकर मानवता की भावना को संचारित किया ।

इस प्रकार पाश्चात्य सभ्यता व संपर्क से आधुनिकता का आगमन पाश्चात्य धर्म प्रचारकों व शोषकों के दबाव से राष्ट्रीय चेतना व सांस्कृतिक पुनर्निर्माण का उन्मेष, समाज में शोषण के परिणाम स्वरूप सुधारवाद का जन्म, युगीन जनता के मन में पुराने आदर्शों के विरुद्ध नवीन तर्क सीमित बुद्धि सम्मत विचारों का जन्म, आदर्शवाद को कम कर साम्यवाद का जन्म आदि उपलब्धियाँ पुनर्जागरण के कारण ही संभव हो पायी है । इस प्रकार राजा राममोहन राय से लेकर भारत की आजादी तक अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार हर क्षेत्र में भारतीय जनता ने विकास किया । भारत ने भले ही तकनीकी तौर पर अपनी तरफ से ऐसा कोई कार्य नहीं किया, फिर भी यह एक ऐसा युग था जब भारत को श्रेष्ठ कवि, कलाकार, चिंतक, दार्शनिक और वैज्ञानिक भी प्राप्त हुए । भारत की सर्जनात्मक ऊर्जा में मानों एक विस्फोट हो गया था । इतिहास ने भारत को संपूर्ण मौका दिया अपना करतब दिखाने का और भारत इसमें कामयाब हुआ भी । इसमें महात्मा गांधी का विशेष योगदान था जिसे नकारा नहीं जा सकता क्योंकि महात्मा में आध्यात्मिक और नैतिक बल इतनी प्रचुर मात्रा में था कि अंग्रेजों के समान कट्टर उपनिवेशवादी को भी उनके आगे झुकना पड़ा ।

सवाल यह उठता है कि भारतीय पुनर्जागरण और यूरोपीय नवजागरण में मूलभूत अन्तर क्या था ? यूरोपीय नवजागरण 12वीं से 18वीं सदी तक हुआ जबकि भारतीय नवजागरण तो चढ़ता उतरता कई युगों में अपनी यात्रा को पूरा करने में लगा है । गुप्त युग से मध्यकालीन भक्ति युग और पुनः उन्नीसवीं सदी में आधुनिक भारतीय नवजागरण के रूप में प्रकट हुआ । पश्चिम में जिस प्रकार इटली का योगदान महत्वपूर्ण रहा है इसी तरह

भारत में बंगाल का रहा । भारतीय नवजागरण में जिस प्रकार क्षेत्रीय नवजागरण की बात आती है ठीक उसी प्रकार यूरोपीय नवजागरण के समय वहाँ कई राष्ट्रों में एक के बाद एक में हुआ। इटली में पहले ब्रिटेन में उसके एक शताब्दी बाद फ्रांस में उससे भी अधिक देर से हुआ । जर्मनी में सबसे बाद अर्थात अठारहवी शताब्दी में हुआ था । लेकिन भारत में थोड़ी सी भिन्नता के साथ आया, वहाँ अलग अलग राष्ट्रों में हुआ था तो यहाँ पृथक - पृथक राज्यों में जो किसी एक ही राष्ट्र के अंतर्गत आते है । यहाँ केवल पुनरुत्थान की भावना ही नहीं बल्कि यूरोपीय नवजागरण की खूबियाँ भी इसमें शामिल हो गई । फलत: एक नवीनता का उन्मेष आया । इसलिए भारतीय पुनर्जागरण विश्व इतिहास में एक सम्मानीय स्थान रखता है जो भारत के लिए सचमुच गर्व का विषय है ।

अध्याय - 2

2· हिन्दी तथा बंगला के साहित्य का परस्पर संबंध

अध्याय - 2

2. हिन्दी तथा बंगला के साहित्य का परस्पर संबंध

भाषा की परम्परा, साहित्यिक परम्परा, हिंदी और बंगला साहित्य का एक दूसरे पर प्रभाव ।

भाषा की व्युत्पत्ति-आत्माभिव्यक्ति सभी प्राणियों की नैसर्गिक प्रवृत्ति है । प्रत्येक प्राणी अपने भावों को प्रकट करने के लिए साधन अपनाता है । मनुष्य जीवन में भाषा का अत्यन्त महत्व है । परन्तु यह भाषा है क्या ? "संस्कृत के भाष् [व्यक्तायां वाचि] धातु से अ और टाप् प्रत्यय लगाकर भाषा शब्द सिद्ध होता है । इसके अर्थ है बोली, वाणी, शैली, परिभाषा, सरस्वती का नामान्तर ।"[1] भाषा विचारों को प्रकट करने का सर्वश्रेष्ठ माध्यम है । मनुष्य अपने भावों एवं विचारों का अभिव्यक्त करने के लिए जिन ध्वनि-संकेतों का सहारा

---

1. "संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ" [पृ. 829] "भाषा और मनुष्य" ओम शिवराज - पृ. 1 पर उद्धृत

लेता है वही भाषा है । बहुत से पशु ऐसी ध्वनियाँ करते है जिससे भाषा का विशद शब्द-भंडार बन सके, लेकिन उनमें बुद्धि नहीं है कि वे इस क्षमता से लाभ उठायें जैसे कि मनुष्य उठाता है ।"[1] तब मनुष्य में और पशु में भेद क्या है ? क्यों दूसरे प्राणी मानव की तरह भाषा के समृद्ध भण्डार की रचना नहीं कर पाते ? कारण है "मानव का परिवेश, उसके जीवन की आवश्यकताएं तथा उसका विशेष शारीरिक गठन।"[2]

विकास सिद्धांत के आधार पर विवेचना की जाय तो मनुष्य का आदि. जीवन भी पशु के समान ही था । कारण आत्म रक्षा, आहार प्राप्ति, मैथुन, संतान रक्षा आदि की आवश्यकताएं मनुष्य और पशुओं में एकजैसी हैं । इस बात से यह तय है कि मनुष्य की आदिम भाषा भी पशु जगत में व्यवहृत ध्वनि संकेतों के समान ही रही होगी । जब प्राणी यह जान पाया होगा कि किसी विकट या विशेष परिस्थिति में उसके किसी विशेष प्रकार के ध्वनि निर्माण से उसका लक्ष्य सिद्ध हुआ या उसका कार्य सफल हुआ तो वह उस ध्वनि को बार बार आवृत्त करने लगा होगा । इस प्रकार मनुष्य ने विशेष परिस्थितियों में विशेष ध्वन्यात्मक क्रियाओं को करना सीख लिया होगा । आरंभ में यह ध्वनि क्रिया वस्तु से ही संबंधित होती थी, उसके गुण के विषय में ज्ञान नहीं होता था । वस्तु के गुणों को प्रकाशित करने वाला ध्वनि संकेत

- -

1. "वी" ई नीगस, द कम्पेरेटिव अनाटोमी ऐंड फिजियोलोजी आफ द लैरिन्क्स - पृ. 127, लंदन, 1949 - रामविलास शर्मा के भाषा और समाज - पृ. 61 से उद्धृत ।
2. "भाषा और समाज" - रामविलास शर्मा, पृ. 71

मानव मेंही देखा जाता है, पशुओं में नहीं । इस प्रकार मनुष्य ने जो कुछ भी सीखा वह वस्तुओं के साथ अस्थायी संबंधों के निर्माण से ही सीखा है । "बच्चा स्वयं निरर्थक ध्वनियां करता है और इन निरर्थक ध्वनियों में कुछ को सार्थक भी बना लेता है, सुनी हुई और अपनी स्वतः स्फूर्त ध्वनियों से वह वस्तुओं का अस्थायी संबंध कायम करता है भाषा के निर्माण की भी यही प्रक्रिया है ।"[1] परिस्थितियों के आधार पर ही ध्वनि संकेतों को विकास होता है, इन्हीं ध्वनि संकेतों से नवीन शब्दावलियों की व्युत्पत्ति होती है तथा शब्दों के भण्डार जैसे जैसे बढ़ते जाते हैं । भाषा उतनी ही समृद्ध हो जाती है । शब्द और अर्थ में जो परस्पर संबंध होता है, उसमें वस्तु या पदार्थ के साथ कर्म का स्थायी संबंध जुड़ता है । यथा, माँ शब्द कहने पर जननी का बोध अवश्य होता है परन्तु उसके गुणों का ज्ञान नहीं होता । अर्थात् शब्द और अर्थ का संबंध ध्वनि और पदार्थ का संबंध होता है । इस प्रकार "विशेष कार्यों, कार्य समूहों या वस्तुओं से कुछ निश्चित ध्वनियों के संसर्ग द्वारा भाषा निर्माण होता है ।"[2]

परन्तु मनुष्य पशुओं के दायरे से तभी बाहर निकला जब उसमें कुछ ऐसे गुणों का विकास हुआ जो पशुओं में कभी न थे और वे है - चिन्तन, संयम व ज्ञान का संगम । वह पशुओं की तुलना में अधिक ध्वनि संकेतों का उपयोग करने में सक्षम व सफल रहा कारण उसका शारीरिक

- -

1. "भाषा और समाज" - डा० राम विलास शर्मा - पृ० 70
2. -वही- पृ० 69

गठन ही कुछ इस तरह का है जिसका उसने भरपूर लाभ उठाया । यही से मानवीय भाषा समृद्ध होती गयी और वह आदिम मानव की पाशिक भाषा से पूर्ण रूप से निवृत्त्ति पा गयी । तभी तो कहते है कि भाषा मनुष्य की संस्कृति के विकास का साधन है । सभ्यता जब प्राचीन होने लगती है तब संस्कृति सूक्ष्म रूप से उभर आकर स्थूल रूप ग्रहण करने लगती है । तब सभ्यता की पहचान संस्कृति से होने लगती है । अतः भाषा को यदि मानव संस्कार के अंतर्गत लिया जाय तो भी अनुचित न होगा ।

अधिकाश विद्वान भाषा को विकासशील साबित करने के लिए तत्पर रहते है जबकि यह कटु सत्य है कि मनुष्य भाषा को सुने बिना सीख नहीं सकता । इस बात की पुष्टि हेतु राजा सैमेटिका के प्रयोग का उदाहरण दिया जा सकता है । "राजा सैमेटिक्स ने दो बच्चों को जन्म के बाद से अलग ऐसी जगह रखा था जहाँ किसी भाषा के संसर्ग में वे न आ सके । उनके पास जाने वालों को कुछ बोलने का निषेध था । बड़ा होने पर वे दोनों ही गूंगे निकले । अक्बर ने और भी सफलता से यह प्रयोग करवाया और बच्चे पूरे गूंगे निकले । इससे भाषा वैज्ञानिकों ने यह परिणाम निकाला है कि बच्चा पेट में से कोई भाषा सीखकर नहीं आता अर्थात् ईश्वर प्रदत्त कोई भी भाषा नहीं है ।"[1] यह सच है कि मनुष्य समाज सेअपने परिश्रम के द्वारा भाषा को अर्जित करता है । चाहे विकासवाद के सिद्धांत को प्रस्तुत करने वाले विद्वान - लोमार्क

- -

1. भाषा विज्ञान [डा0 भोलनाथ तिवारी] पृ. 19

डार्विन, बर्गसा हों अथवा भाषा विज्ञान के जेकब, मैक्समूलर, व्हिटनी आदि विद्वान सब ने भाषा अपने आप नहीं, बल्कि अन्य से ही सीखी थी । इस संदर्भ में डा० रामविलास शर्मा लिखते है -"यदि आप यह मानते है कि मनुष्य का सृजन किसी अध्यात्मिक शक्ति ने किया है, तो संभवत: आपको यह भी विश्वास होगा कि भाषा की रचना ईश्वर ने की है । भाषा विज्ञान के अधिकांश पंडित भाषा को ईश्वरकृत नहीं मानते । प्रकृति और समाज के अन्य तत्वों की तरह उसे भी विकासमान स्वीकार करते है ।"[1] आधुनिक विद्वान यह मानते है कि प्रत्येक भूखण्ड में पृथक - पृथक भाषाएं बनीं और विकसित हुई । जिस प्रकार मानव अपनी आदिम अवस्था से चलकर विभिन्न स्थितियों मे गुजरता हुआ आज का आधुनिक मानव बना है, ठीक उसी प्रकार भाषा में भी धीरे धीरे विकसित होती रही है । डा० मंगलदेव शास्त्री लिखते हैं - "साहित्य की दृष्टि से किसी उन्नतभाषा को लें, जिसका इतिहास मिलता हो, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भाषा की उन्नति धीरे धीरे क्रम विकास के सिद्धांत के अनुसार होती है । इस लिए सभ्य और असभ्य जातियों की भाषाओं में बड़ा अन्तर दीख पड़ता है । भाषा का सारा इतिहास इसका साक्षी है कि लेखन कला, कविता चित्र, विद्या, वास्तु विद्या आदि अन्यान्य कलाओं की तरह, जो धीरे धीरे सभ्यता के विकास होने के साथ - साथ उन्नत होती है और जिसका आविष्कार और विकास दोनों मनुष्य के अधीन है भाषा भी मनुष्य के आश्रय में अनेक परिवर्तनों में भिन्न भिन्न प्रकार की

- -

1. "भाषा और समाज" [भूमिका -पृ. 9] डा० रामविलास शर्मा

आवश्यकतावों के अनुसार नए अनुभव और ज्ञान को शब्द द्वारा प्रकट करने के लिए नए नए रूपों में गुजरती हुई उत्कृष्टता की ओर बढ़ती रही है । इस बात का कोई निषेध नहीं कर सकता कि किसी भाषा के आरंभ की अवस्था से उसकी उन्नत अवस्था में बड़ा भारी अन्तर पाया जाता है । कोई भाषा प्रारंभ से ही पूरी पूरी रीति से परिपक्व या निष्पन्न अवस्था में नहीं पहुंच जाती । शनै: शनै: विकास करती हुई ही वह कालान्तर में जटिल रचनावली, भिन्न - भिन्न पदार्थो, उनके गुणों, क्रियाओं और गूढ़ विचारों के लिए पृथक - पृथक संकेतों वाली, पदार्थो और विचारों के परस्पर संबंधों को ठीक - ठीक प्रकट करने के लिए समन्वित हो सकती है । यदि ऐसा न होता, यदि भाषाओं में ये बातें शनै: शनै: विकास का फलस्वरूप न होकर प्रत्येक प्रारंभ से ही पाई जाती, तो भाषा की उत्पत्ति के प्रश्न का समाधान करने के लिए किसी को सचेष्ट होने की ही आवश्यकता न थी । उस अवस्था में तो भाषा की उत्पत्ति किसी अचम्भे द्वारा ही सबको माननी पड़ती । अलौकिक शक्ति द्वारा ही वह मनुष्य को प्राप्त हुई, इसका विरोध करने का किसी को साहस न होता । परन्तु हम देख चुके है कि किसी भी उत्कृष्ट भाषा की उन्नति धीरे धीरे होने वाला विकास का होफल है ।"[1]

परन्तु प्रश्न यह उठता है कि क्या परिवर्तन को ही विकास माना जाय ? यदि परिवर्तन ही विकास है तो क्या वेद भाषा से आधुनिक भारतीय भाषा या बोलियों की विकास यात्रा को परिपक्व या उत्कृष्ट बताया जा सकता है ? क्योंकि मनुष्य युगानुसार भाषा

---

1. "भाषा विज्ञान" -पृ॰ 185 को "भाषा और मनुष्य" -पृ॰ 79/80 से उद्धृत किया गया है ।

में क्लिष्टता का सर्वथा त्याग करने लगा जिससे वह अपने विचारों का आदान - प्रदान अनायास ही कर सके ।

जिस प्रकार विश्व एक है परन्तु उसमें बसी सभ्यताएं अनेक है ठीक उसी प्रकार, मानव समुदाय के कार्य कलाप प्राय: सभी जगह तक हैं, परन्तु वे आपस में जिन भाषाओं से संपर्क स्थापित करते है वे अनेक है । परन्तु ध्यान देने वाली बात यह है कि संसार की अधिकतर भाषाओं में अक्षर ध्वनियों का प्रयोग होता है । [अक्षर ध्वनि से आशय है मूल ध्वनि] इसे जानने के लिए निम्नलिखित तीन भाषाओं के जरिये हम विषय की जड़ तक पहुंचने की कोशिश कर सकते है -

1. संस्कृत - अहमेकं पुस्तकं पठामि ।
2. हिंदी - मैं एक पुस्तक पढ़ता हूं ।
3. इंग्लिश - आई रीड ए बुक ।

उपर्युक्त तीन भाषाओं में अक्षर ध्वनियां प्रयुक्त हुई है ।

प्रथम वाक्य में - अह् अम् एक् अम्, प उ स् त् अ क् अ म्, प् अ ठ् आ म् इ । । द्वितीय वाक्य में - म् ऐं, ए क्, अ प् उ स् त् अ क् अ प् अ ढ् अ त् आ, ह् ऊं । तृतीय वाक्य में - आई, र ई ड्, अ ए ब् उ क् अ ।[1]

परन्तु अंग्रेजी वर्णमाला में र को आर, ड को डी, ब को बी, ल को एल, स को ऐस आदि कहते है, जो संयुक्त अक्षर ध्वनियों है । कारण अंग्रेजो मेंर, ई, ओ केवल तीन ध्वनियां है ।

- -

1. भाषा और मनुष्य - पृ. 2 - लेखक-अर्नेस्ट सिवरान

डोम शिवराज जैसे विद्वान वर्णमाला को दो प्रकार के मानते है - ॥1॥ वास्तविक वर्णमालाएं - जिनमें मूल वर्ण होते है तथा ॥2॥ कृत्रिम वर्णमालाएं - जिनमें मूल वर्णों के लिए कृत्रिम वर्ण प्रयुक्त होते है ।[1] कहा जा सकता है कि विश्व की कई भाषाओं का मूल स्त्रोत एक ही भाषा रही होगी । सन् 1856 ईस्वी में सर विलियम जोन्स नामक विद्वान ने यह स्थापना रखी कि यूनानी, लातीनी, गोथक, फारसी और संस्कृत भाषाएं किसी एक ही भाषा से विकसित हुई । तदुपरान्त तुलनात्मक भाषा विज्ञान का अध्ययन प्रारंभ हुआ और विश्व की विद्वान मंडली ने पाया कि "उत्तर भारत की सभी भाषाएं, पश्चिमी एशिया के जेन्द, फारसी, पश्तो, बलूची, उर्दू और आरबिनियन भाषाएं तथा यूरोप की इटालियन, फ्रेंच, स्पैनिश, यूनानी, केल्टिक, जर्मन, अंग्रेजी, ट्युटानिक, स्लोवोनिक, लिथुएनियन, लातीनी, अल्वे-नियन आदि भाषाएं किसी एक ही स्त्रोत से निकली है ।"[2] ...इस स्थापना को समर्थन करने वाले "श्लेगेल, रास्क, ग्रिम, फ्रेंज बाप, श्लेइर, ब्रुगमान, मेये, वाकेर, नागेल, ज्यूल ब्लाक जैसे यूरोपीय विद्वान थे । "पुराने यूरोपीय विद्वान समस्त विश्व की भाषाओं को यूरोप की तथा एशिया की भाषाओं को "हिब्रू" से उत्पन्न मानते हैं ।[3]

भाषाओं का वर्गीकरण :

किसी भी विषय या वस्तु संबंधी ज्ञान को प्राप्त करने में तब

---

1. भाषा और मनुष्य - पृ. 2 - लेखक डोम शिवराज
2. -वही- पृ. 30
3. -वही- पृ. 30

सुविधा होती है जब उनका वर्गीकरण किया जाता है । विश्व की भाषाओं का अध्ययन करने हेतु विद्वानों ने भाषाओं का वर्गीकरण किया है । मुख्य रूप से भाषाओं का वर्गीकरण निम्नलिखित आधारों पर किया गया -

1. महाद्वीप के आधार पर - जैसे यूरोपीय भाषाएं / आस्ट्रेलियायी भाषाएं आदि [जहाँ किसी एक महाद्वीप के अंतर्गत बोली जाने वाली भाषाओं का अध्ययनहो]

2. देश के आधार पर - जैसे भारतीय भाषाएं, जापानी भाषाएं आदि ।

3. काल के आधार पर - जैसे मध्यकालीन भाषाएं, आधुनिक भाषाएं आदि ।

4. धर्म के आधार पर - उदा. हिन्दू भाषाएं, मुसलमानी भाषाएं आदि ।

5. आकृति या रूप के आधार पर - जैसे योगात्मक भाषाएं, अयोगात्मक भाषाएं ।

6. परिवार के आधार पर - उदा. द्रविड़ परिवार, भारोपीय परिवार की भाषाएं आदि ।

इनमें आकृति एवं परिवार के आधार पर भाषाओं का वर्गीकरण ही अधिक महत्वपूर्ण या व्यावहारिक माना जाता है । आकृति या रूप के आधार पर यदि भाषाओं को वर्गीकृत किया जाय तो इसमें प्रमुख रूप से दो भेद उभर कर आते है, और वे है - [1] अयोगात्मक

भाषाएं तथा §2§ योगात्मक भाषाएं । योगात्मक में अश्लिष्ट, श्लिष्ट व प्रश्लिष्ट जैसे प्रमुख रूपों में विभाजन हुआ । अश्लिष्ट में पूर्वयोगात्मक रूप में पुनः विभाजन हुआ । श्लिष्ट में "बहिर्मुखी" व "अन्तर्मुखी" दो उपविभाजन हुआ तथा प्रश्लिष्ट का "पूर्ण" व "आंशिक" इस तरह पुनर्विभाजन हुआ । परन्तु वर्तमान युग में आकृतिमूलक वर्गीकरण अपना महत्व खोने लगा है कारण श्लिष्ट को प्रश्लिष्ट से अलग करना कठिन व्यापार है ।इसके अलावा यह दावा करना कठिन है कि विश्व की सभी भाषाओं का अध्ययन हो चुका है; अस्तु आज के भाषावैज्ञानिक पारिवारिक वर्गीकरण को ही अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं । कारण, आकृतिमूलक वर्गीकरण में भाषा के वर्गीकरण का आधार या तो रचना तत्व होता है या फिर सम्बन्ध तत्व । परन्तु पारिवारिक वर्गीकरण, जो कि ऐतिहासिक हो, में अर्थ तत्व एवं रचना तत्व दोनों पर ही ध्यान दिया जाता है । यहां हमारा गन्तव्य भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन नहीं वरन् भाषा की परम्परा को जानना है । परन्तु भाषा की परम्परा को जानने के लिए ही क्या पारिवारिक वर्गीकरण सहायक हो सकता है ? हमारा मूल विषय यह था कि क्या एक भाषा से कई भाषाएं विकसित हो सकती है ? हजारों कोसों का फासला होते हुए भी, सभ्यता व संस्कृति में भिन्नता व अन्तर होते हुए भी कभी कभी यह देखा जाता है कि एकाधिक भाषा के अनेक शब्दों और तत्सम्बन्धित अर्थों में बहुत साम्य होता है । यथा -

संस्कृत	लातिन	फारसी	अंग्रेजी	जर्मन
पितृ	पातेर	पिदर	फादर	फातेर
मातृ	मातेर	मादर	मदर	मुत्तेर
भ्रातृ	फातेर	बिरादर	ब्रदर	ब्रुदेर

उपर्युक्त दृष्टांत से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन भाषाओं का विकास किसी एक मूल भाषा से हुआ है । यही से पारिवारिक वर्गीकरण की आवश्यकता या भाषा के परिवारों को जान लेने की इच्छा होती है । भाषाओं का पारिवारिक वर्गीकरण शब्द भण्डार व्याकरण रचना तथा ध्वनि के आधार पर होता है । इसमें मतभेद हो सकता है । विभिन्न विद्वानों के मतानुसार भाषा परिवार की संख्या में भेद पाये जाते है । "विल्हेम फान हम्बोल्डर ... विश्व की भाषाओं के 13 परिवार मानते है । राइस एक मानते है तथा भारतीय विद्वान 10 से 18 के बीच मानते है । डा0 देवेन्द्रनाथ शर्मा के अपेक्षाकृत कम विवादग्रस्त परिवारों को निम्न 18 भेदों में रखा है -

1· भारत - यूरोपीय परिवार 2· द्रविड परिवार 3· बुरुस्की परिवार 4· यूराल अल्टाई परिवार 5· काकेशी परिवार 6· चीनी परिवार 7· अत्युत्तरी [हाइपरबोरी] परिवार 8· जापानी -कोरियाई परिवार 9· बास्क परिवार 10· सामी -हामी परिवार 11· सुदानी परिवार 12· बन्तू [बाण्टू] परिवार 13· होतेन्तोत - बुशमैनी परिवार 14· मलयद्वीपीय परिवार 15· दक्षिण एवं एशियाई परिवार 16· पापुई परिवार 17· आस्ट्रेलियाई परिवार 18· अमरीकी परिवार ।[1]

भौगोलिक स्थिति के आधार इन परिवारों को चार वर्गों में रखागया है -

- -

1· "भाषा विज्ञान" - भारत भूषण सरोज तथा डा0 कृष्णदेव शर्मा पृ· 97/98

§1§ यूरेशिया खण्ड में 1 से 10 तक के परिवार आते है । - §2§ अफ्रीका खण्ड - 10 से 13 तक परिवार इसमें आते है - दरअसल अफ्रीका एशिया दोनों महाद्वीपों में पड़ता है, अतः दोनों में गिना जाता है । §3§ प्रशान्त महासागरीय खण्ड - इसमें 16 से 17 तक के भाषा परिवार आते है । §4§ अमरीका खण्ड - इसमें अठारहा परिवारआता है ।

परन्तु हमाराविषय भारोपीय परिवार से संबंधित है । विश्व के भाषा परिवारों में भारोपीय परिवार अत्यधिक महत्वपूर्ण है माना जाता है । कारण इस परिवार की भाषाएं आज सारे विश्व में अधिकतर बोली जाती है । सभ्यता एवं संस्कृति की दृष्टि से अगुआ ही कहलाने वाली इसी भाषा परिवार की भाषाएं रही है । इस परिवार को कई नाम भी दिए जाते है - जैसे "भारत जर्मनिक, "इण्डो कैल्टिक", "आर्य परिवार", "संस्कृत परिवार, काकेशियन परिवार इत्यादि ।

ध्वनियों के आधार पर भारोपीय परिवार :

ध्वनियों के आधार पर भारोपीय परिवार को दो वर्गों में बांटा गया - "सतम्" एवं "केन्तुम" देवेन्द्रनाथ शर्मा ने इस परिवार की कुल 20 शाखाएं गिनाई जो जिन्हें वे उपर्युक्त दोनों वर्गों के अंतर्गत रखते है- "

"सतम्" 1. भारत - ईरानी §1§ भारतीय §2§ ईरानी
2. बाल्टोस्लाविक - §1§ बाल्टिक §2§ स्लाविक
3. आरमीनी 4. अल्बानी या इलीरीयन

"केन्तुम" - 1. इतालिक 2. ग्रीक या हेलेनिक 3. केल्टिक 4. जर्मनिक या ट्युटानिक 5. तोखारी 6. हित्ती ।

इन शाखाओं की पुन: उपशाखाएं तथा बोलियां हुई - समय के परिप्रेक्ष्य में ये ही विभिन्न भाषाओं के रूप में विकसित हुईं ।

भारतीय आर्य भाषाएं :

विषय की वास्तविकता को बनाए रखते हुए यहां केवल भारत ईरानी के अंतर्गत आने वाली भारतीय आर्य भाषाओं का अध्ययन आवश्यक है । अत: अब चर्चा का विषय होगा भारतीय आर्य भाषाएँ जिसका कालान्तर में तीन वर्गों में विभाजन हुआ ।

1. प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ [1500 ई.पू. से 500 ई.पू.]
2. मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएं [500 ई.पू. से 1000 ई.पू.]
3. आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ - [1000 ई. से अब तक]

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा :

प्राचीन भारतीय भाषा के अंतर्गत वैदिक और लौकिक संस्कृत भाषा आती है । सभी विद्वान इस बात को मुक्त कंठ से स्वीकार करते आये है कि विश्व के सबसे प्राचीन ग्रंथ वेद है । आज के विद्वान "ऋग्वेद" को सर्वाधिक प्राचीन मानते है तथा अन्य वेदों को ऋग्वेद" के बाद रखकर अपना अभिमत प्रकट करते है । यहां स्पष्टत: ध्यातव्य है कि जब वेद

जैसी उत्कृष्टतम ग्रंथ की रचना [संस्कृत भाषा में] हुई थी तब यह अनुमान लगाया जा सकता है कि भाषा का सम्पूर्ण विकास उसके पूर्व ही हो चुका होगा तभी तो वह वेद जैसे गरिमामय एवं प्रभावशाली साहित्य का सृजन कर सकी । इस प्रकार वैदिकसाहित्य में चारों वेद,' वेदांग,' ब्राह्मण ग्रंथ तथा उपनिषद आदि आते है । लौकिक - संस्कृत साहित्य के अंतर्गत धार्मिक तथा ऐतिहासिकतापरक काव्यों, प्रबंध काव्यों, गीति काव्यों, नाटकों, मुक्तक काव्यों, कथा साहित्य, अलंकृत गद्य काव्यों, इतिहास एवं पुराणों, समीक्षा शास्त्र, नाना वैज्ञानिक विषयों के अतिरिक्त पत्थरों और ताम्रपत्रों के साहित्य को भी समाविष्ट कर लिया गया है । परन्तु 6 शती ईसा पूर्व तक आते आते वैदिक भाषा को समझना कठिन हो गया था, क्योंकि तब तक [ब्राह्मर्षि और अन्तर्वेदिकी] लोकभाषा विकसित होकर साहित्य के क्षेत्र में परिनिष्ठत रूप लेने लगी थी । पाणिनि ने इस लोक भाषा को व्याकरण के द्वारा परिष्कृत व परिमार्जित रूप दिया । पाणिनि से पण्डित राज जगन्नाथ तक इस भाषा में सृजन कार्य चलता रहा ।

मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा :

मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा के अंतर्गत पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाएं विकसित हुई । पालि भाषा बोलचाल की उस विशेष से विकसित हुई जो वैदिक काल की विभाषाओं के उत्तरोत्तर किसी प्रदेश में प्रचलित था । पालि का मूल क्षेत्र कहाँ तथा यह किस भाषा से उत्पन्न हुई इस संबंध में भारतीय व पाश्चात्य विद्वानों में मतभेद है । बौद्ध धर्मावलम्बी भारतीय विद्वानों ने पालि को मागधी भाषा

का विकसित रूप माना। पाश्चात्य विद्वानों में कुछ विद्वान उसे उज्जयिनी की विभाषा मानते है तो कुछ कलिंग देश की भाषा कहते है । पालि भाषा के उत्स व स्त्रोत के विवाद में न पड़ते हुए संक्षेप में उसके साहित्य पर एक सरसरी नजर डालना आवश्यक है । स्थूल रूप से पालि को दो भागों में विभक्त किया गया है । एक त्रिपिटक तथा दूसरा अनुपिटक त्रिपिटक बौद्ध धर्म के सिद्धांत से संबंधित है तो अनुपिटक सिद्धान्तेतर साहित्य है । इसे अनुपालि साहित्य भी कहा जाता है । पालि में व्याकरण, अलंकार शास्त्र, छन्द शास्त्र आदि पर भी अनेक रचनायें मिलती है ।

विद्वानों ने प्राकृत उद्भव एवं विकास संस्कृत से माना । मूलत: प्राकृतों की संख्या पांच मानी जाती है । महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, अर्द्ध मागधी और पैशाची । परन्तु ये साहित्य के आधार पर है। वैयाकरणों ने प्राकृत के अंतर्गत - महाराष्ट्री, शौरसेनी मागधी, पैशाची, चूलिका, चण्डाली, ढक्की, शबरी और अपभ्रंश मानते है । भरत के नाट्यशास्त्र में प्राकृतों की संख्या सात मानी गयी है जो इस प्रकार - मागधी, अवन्तिजा, प्राच्या, शौरसेनी, अर्ध मागधी, वाह्लिका और दक्षिणात्य । धार्मिक प्राकृतों में बौद्ध ग्रंथों की भाषा पालि जैन आगमों की भाषा और मागधी [आर्य] जैन महाराष्ट्री, जैन शौरसेनी और अपभ्रंश की गणना कीगई । साहित्यिक प्राकृत भाषाएं अर्थात् महाराष्ट्री शौरसेनी, अर्द्ध मागधी, मागधी तथा पैशाची ही आगे चलकर अपभ्रंश बनी है ।

अपभ्रंश मध्यकालीन भाषा का अन्तिम रूप है । प्राकृत भाषा जब साहित्य क्षेत्र में आकर नियमों से आबद्ध होने लगी तब जनता ने उसे ग्रहण नहीं किया । परन्तु प्राकृत से व्युत्पन्न हुई कुछ लोक प्रचलित

बोलियां । इन बोलियों का विकास जन सामान्य में बराबर होता रहा । इन्हें देशी भाषा व अपभ्रंश कहा गया । प्राय: इसे दोहा, दूहा, अवभंश, अवहट्ट और अवहत्थ आदि भी कहा गया जिसका अर्थ बिगड़ी हुई, अशुद्ध असंस्कृत एवं अव्याकरण सम्मत भाषा है । इस प्रकार प्रत्येक प्राकृत से एक एक अपभ्रंश निकली । आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का जन्म अपभ्रंश साहित्य से हुई । प्राकृत साहित्य केसमान अपभ्रंश साहित्य भी अत्यन्त समृद्ध है । इसमें महाकाव्यों, खण्ड काव्यों, गीति काव्यों, लौकिक प्रेम काव्यों, धार्मिक रचनाओं रूपक साहित्य, स्फुट साहित्य तथा गद्य साहित्य की नाना विधाओं की सृष्टि हुई है । केवल इतना ही नहीं जैन धर्म के सिद्धांत एवं सिद्धान्तेतर साहित्य, बौद्ध, सिद्ध तथा नाथों के साहित्य तथा शौर्य व श्रृंगारात्मक लौकिक काव्यों का सृजनात्मक कार्य भी इसमें हुआहै । बौद्ध सिद्धों ने अपने चर्यापदों व दोहों के द्वारा अपभ्रंश साहित्य को समृद्ध किया तो नाथ पंथियों ने अपनी वाणियों से इसे नया रूप दिया । आगे साहित्य की परम्परा में इनकी चर्चा विस्तारपूर्ण ढंगकी जाएगी ।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषा :

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएं अपभ्रंशों से विकसित हुई । इन्ही से उपजी कई भाषाओं व बोलियों का अस्तित्व आज तक है । विभिन्न अपभ्रंशों से विविध भाषाओं व बोलियों का जन्म हुआ ।

शौरसेनी से पश्चिमी हिंदी, राजस्थानी, पहाड़ी, गुजराती निकली है । पश्चिमीहिंदी की बोलियां है - खड़ी बोली, ब्रज भाषा, बांगरू

कन्नोजी और बुन्देली, राजस्थानी की बोलियाँ इस प्रकार है - पश्चिम राजस्थानी [मारवाडी], उत्तरी राजस्थानी [मेवाती] दक्षिणी राजस्थानी [मालवी] है । पहाड़ी भाषा की तीन बोलियाँ है । यथा - पश्चिमी पहाड़ी [कुमाऊँनी], मध्य वर्ती पहाड़ी [गढ़वाली] तथा पूर्वी पहाड़ी की बोली नेपाल के अंतर्गत पड़ता है ।

पैशाची अपभ्रंश से लहंदा एवं पंजाबी भाषाओं की व्युत्पत्ति हुई । ब्राचड के अंतर्गत सिन्धी व महाराष्ट्री के अंतर्गत मराठी भाषाओं का उद्भव हुआ । मगधी से बिहारी [मैथिली, भोजपुरी, मगही] बंगला उड़िया तथा असमिया भाषाओं का जन्म हुआ। अर्ध मागधी से पूर्वी हिंदी का जन्म हुआ । पूर्वी हिंदीके अंतर्गत बोली जाने वाली बोलियाँ है - भोजपुरी, मगही, मैथिली । यहाँ केवल हिंदी भाषा व हिंदी की उप भाषाओं की बोलियोंके नाम गिनाये गये है । केवल हिंदी भाषा कहने से विभिन्न अपभ्रंशों से उपजी [हिंदी कीही विभिन्न] बोलियों को नजर अन्दाज करना होगा । अत: यह जानकारी अपेक्षित है कि पृथक अपभ्रंशों से किस प्रकार अलग-अलग भाषाओं व बोलियों की की व्युत्पति हुई ।

भारतीय आर्य भाषा को अलग अलग भाषा विज्ञानिकों ने पृथक-पृथक ढंग से विभाजित किया है । डा० ग्रियर्सन ने आधुनिक भारतीय आर्य भाषा को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया है ।[1] बाहरी उपशाखा मध्य उपशाखा तथा भीतरी उपशाखा ।

- -

1. सर जार्ज ग्रियर्सन : भारत का भाषा सर्वेक्षण [अनुवाद खण्ड-1, भाग-1, द्वितीय संस्करण, पृ० 235-36]

बाहरी उपशाखा §1§ पश्चिमोत्तर भाषा समुदाय §2§ दक्षिणी समुदाय तथा पूर्वी समुदाय ।

1. पश्चिमोत्तर समुदाय - लहंदा, सिन्धी ।

2. दक्षिणी समुदाय - मराठी

3. पूर्वी समुदाय - उड़िया, बंगला, असमिया, बिहारी ।

मध्य उप शाखा - पूर्वी हिंदी

भीतरी उपशाखा - पश्चिमी हिंदी, पंजाबी, गुजराती, भीली, खान्देशी एवं राजस्थानी भाषाएं ।

इसके अलावा - पहाड़ी समुदाय - नेपाली, केन्द्रीय पहाड़ी तथा पश्चिमी पहाड़ी ।

डा० चटर्जी ने ग्रियर्सन के इस वर्गीकरण में स्वल्प परिवर्तन लाकर इस दिशा में नया आलोक प्रदान किया है । डा० चटर्जी के अनुसार[1] आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के पांच भेद है - उदीच्य, प्रतीच्य, मध्य देशीय, प्राच्य तथा दक्षिणात्य । इसमें भारतीय आर्य भाषाओं को इस प्रकार क्रमागत रूप में रखा गया -

उदीच्य सिन्धी, लहंदी [पश्चिमी, पंजाबी], पंजाबी ।

प्रतीच्य गुजराती, राजस्थानी

मध्य देशीय- पश्चिमी हिंदी [बुन्देली, कन्नौजी, ब्रजभाषा, बांगरू तथा हिंदुस्तानी

- -

1. डा० सुनीति कुमार चटर्जी : दि ओरिजिन ऐण्ड डेभलप-पृ० 6 से संलग्न मानचित्र

प्राच्य   पूर्वी हिंदी, बिहारी, उड़िया बंगला तथा असमिया ।

दक्षिणात्य- मराठी ।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषा को डा० हरदेव बाहरी ने दो वर्गों में विभाजित किया है - हिंदी वर्ग तथा हिंदीतर वर्ग । हिन्दीतर वर्ग में उन्होंने निम्नलिखित भाषाओं को रखा । उत्तरी - नेपाली, पश्चिमी पंजाबी, सिन्धी, गुजराती, दक्षिणी - सिंहली, मराठी तथा पूर्वी में उड़िया, बंगला, असमिया । इसी प्रकार हिंदी वर्ग में उन्होंने मध्य पहाड़ी, राजस्थानी, पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी व बिहारी आदि । इसकी पांच विभाषाओं को सम्मिलित किया है ।[1]

भारतीय आर्य भाषाओं में हमें हिंदी भाषा व बंगला भाषा के बारे में चर्चा करनी है कि क्या ये भाषाएं एक दूसरे से प्रभावित है ? इसलिए क्या इनके साहित्य में भी समानता है ? क्या यह सत्य है कि बंगला साहित्य और हिंदी साहित्य परस्पर सदियों से प्रभावित होते रहे है आदि । हिंदी व बंगला साहित्य के परस्पर संबंध को लेकर विचार करने के लिए हिंदी व बंगला भाषा तथा साहित्य के इतिहास पर एक नजर डालना आवश्यक है । सबसे पहले हिंदी भाषा से संबंधित जानकारी हासिल कर लेते है ।

हिंदी भाषा का इतिहास :

धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार हिंदी भाषा के इतिहास को तीन कालों में विभाजित किया जाता है ।[2]

---

1. डा० लक्ष्मणप्रसाद सिन्हा: रूप विज्ञान की दृष्टि से मगही और भोजपुरी, प्रथम संस्करण, पृ. 8
2. डा० धीरेन्द्र वर्मा: हिंदी भाषा का इतिहास-पृ. 76 [1961 में प्रकाशित]

(क) प्राचीन काल (1500 ई० तक)

(ख) मध्य काल (1500 ई० से 1800 ई० तक)

(ग) आधुनिक काल (1800 ई० के बाद)

प्राचीन काल :

डा० भोलानाथ तिवारी[1] ने इस काल को आदि काल माना है क्योंकि यह हिंदी भाषा का आरंभिक काल है। हिंदी भाषा संबंधी आरंभिक विवरण हमें शिला लेखों, ताम्रपत्रों तथा प्राचीन पत्रों से प्राप्त होता है। यद्यपि इस काल में चारणकवियों द्वारा रचित कई काव्य ग्रंथों का उल्लेख मिलता है, किन्तु ये सभी ग्रंथ आज उपलब्ध नहीं है। अतः इस काल के कुछ ग्रंथों को सन्दिग्ध दृष्टि से देखा जाता है। इस काल में उपभाषाओं व बोलियों का जन्म हो चुका था, और वे विकास की मंजिल को प्राप्त करने में सचेष्ट थी। अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की तरह हिंदी का उद्भव भी अपभ्रंश से हुआ था। इसलिए आदि कालीन हिंदी भाषा में अपभ्रंश व प्राकृत भाषाओं की महक पाई जाती है। अपवाद स्वरूप इस काल में संयुक्त स्वरों का प्रचलन हो गया जो अपभ्रंश में कभी न थे और वे है -"ऐ" एवं "औ" आदि अन्त स्वरों में ह्रस्वीकरण तथा व्यंजनों में द्वित्तीकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है।

आदि काल में भाषा अयोगात्मक थी। "ऋ" ध्वनि का प्रचलन "रि" जैसा होने लगा। "ऌ" एवं "ॠ" स्वर का प्रयोग प्रायः लुप्त हो गया। एक तरफ कुछ नये व्यंजनों का विकास हुआ (जैसे-दन्त्योष्ठ्य

- -

1. डा० भोलानाथ तिवारी : भाषा विज्ञान कोश, पृ० 739

व्यंजन "व" तथा उत्क्षिप्त वर्ण – ड़, ढ़! तो दूसरी तरफ विकम्पित व्यंजन का प्रयोग कम होने लगा [जैसे "ष" ध्वनि का सही उच्चारण कम हो गया, ष के स्थान पर "श" व "स" उच्चरित होने लगा, परन्तु वर्णमाला में इसका स्थान सुरक्षित रहा ।

इस काल के साहित्य में कुछ विदेशी भाषा के (उर्दू, फारसी) शब्द जुड़ने लगे जो विदेशी आक्रमणों का परिणाम था ।

मध्य काल :

1500 ई॰ से 1800 ई॰ तक का काल हिंदी भाषा का मध्यकाल माना जाता है । इस काल की भाषा में काफी परिवर्तन दिखाई देता है । मुसलमान शासन का बोल बाला होने के कारण सामान्य जन जीवन ने अनेक अरबी, फारसी, एवं तुर्की शब्दों को अपना लिया । शिक्षित व्यक्ति विदेशी शब्दों का स्पष्ट उच्चारण करना चाहते थे । इसी से वर्णमाला में निम्नलिखित ध्वनियों को सम्मिलित कर लिया गया – क़, ख़, ग़, ज़, फ़ । अरबी फारसी भाषाओं की मान्यता का कारण दरबार में इनको सम्मान प्राप्त होना, समाज में प्रतिष्ठा का बढ़ना, सरकारी नौकरी पाने में सुविधा होना तथा आर्थिक दृष्टि से भी लाभान्वित होने की संभावना होना आदि । इतना ही नहीं शिक्षा संस्थाओं में भी यह महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही थी । बात यदि देशी भाषा [अर्थात हिंदी भाषा] की करें तो इस काल में हिन्दी के बदले ब्रजभाषा और अवधी फलफूल रही थी । ब्रज एवं अवधी को हिंदी के अन्तर्गत ही माना जाता था क्योंकि इसका उद्भव हिंदी से ही मानी जाती है । साहित्य की दृष्टि से भी मध्य काल की हिंदी

बहुत विख्यात रही । दूसरे शब्दों में मध्यकालीन हिंदी भाषा की दृष्टि से इतनी परिपक्व व विकसित हो चुकी थी कि इस काल के साहित्य को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग माना जाता है ।

आधुनिक काल :

आधुनिक काल में भी हिंदी भाषा का विकास हुआ । आधुनिक कालमें जब लार्ड वेलेस्ली गवर्नर जनरल बनकर भारत आये तब तक समूचा भारत अंग्रेजों के कब्जे में आ गया था । जिस प्रकार मुगलों के शासन काल में अरबी - फारसी भाषा को सम्मान मिला, उसी तरह अंग्रेज शासन काल में अंग्रेजी भाषा को जानना गर्व का कारण था । इस तरह भारत में अंग्रेजी भाषाका प्रचार प्रसार होने लगा चाहे वह मिशनरियों के जरिए स्कूल कालेज में हो या नौकरीउपलब्ध करवाने के क्षेत्र में हो । हिंदी भाषा के क्षेत्र में एक नयी ध्वनि का समावेश हुआ "आ" इसका मुख्य कारण था अंग्रेजी भाषा के कुछ शब्दों को हिंदी भाषा ने आत्मसात कर दिया । उच्चारण की स्पष्टता हेतु इस ध्वनि का समावेश हुआ । जैसे - स्कूल, कालेज, मास्टर, प्रोफेसर, डाक्टर, इंजीनियर, ओवरसियर, गार्ड, कलक्टर, ड्राइवर, पैसेन्जर, मेल, एक्सप्रेस, ट्रेन, मोटी, स्टील, ड्यूटी, टेलीफोन, टेलीग्राम आदि । आजादी के बाद भारतीय संविधान ने हिंदी भाषा को राष्ट्र भाषा का पद दिया ।

प्रारंभिक अवस्था में प्रशासनिक कार्यों में अंग्रेजीके विकल्प में हिंदी का प्रयोग बहुत कठिन व्यापार था । परन्तु आज ज्ञान विज्ञान की लगभग सभी शाखाओं में वैज्ञानिक औरतकनीकी शब्दावलियों का विकास हो चुका है और सरकार ने कुछ को मानकीकृत घोषित भी कर दिया

है । आज सरल हिंदी का प्रचार प्रसार अंतर्राष्ट्रीय स्तर को छू रहा है । इससे यही साबित होता है कि हिंदी भाषा समृद्ध है ।

बंगला भाषा का विकास :

बंगला आधुनिक भारतीय आर्य भाषा की अत्यन्त ही महत्वपूर्ण भाषा है । यह भाषा भारत के बंगाल प्रान्त में बोली जाती है । इस भाषा की व्युत्पत्ति मागधी अपभ्रंश से हुई है ।

बंगला शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में कई मत प्रचलित हैं । "बंग" शब्द का उल्लेख "ऐतरेय ब्राह्मण" में प्रथम हुआ । श्री विजयचन्द्र मजूमदार के साक्ष्य से डा0 सत्येन्द्र ने लिखा है कि "भारत के बोंगलोंग प्रदेश के नागवंशी के मुक - सोम ने अन्नाम में राज्य स्थापित किया था । यह बोंगलोंग ही तो बंगला है, जिससे बंगाल व्युत्पन्न हुआ है । बोंगलोंग का अर्थ होता है, बोंग जाति का देश । बंग या बंग जाति के वंशजों ने अन्नाम में ई॰पू॰ तीसरी शताब्दी तक राज्य किया था । फलत: यह स्पष्ट है कि बंग ई॰पू॰ एक हजार वर्ष के लगभग अपना अस्तित्व सिद्ध कर चुका है । बंग नामक प्रदेश था और उसमें रहने वाली बंग नाम की जाति थी ।"[1]

जिस प्रकार हिंदी भाषा के इतिहास को तीन भागों में बांटा गया ठीक उसी प्रकार बंगला भाषा के इतिहास को भी तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है । यथा - (1) आदि काल (2) मध्य काल तथा (3) आधुनिक काल ।

---

1. डा0 सत्येन्द्र : बंगला साहित्य का संक्षिप्त इतिहास - पृ॰ 1

आदि काल :

डा० सुनीति कुमार चटर्ज्या ने आदि काल की अवधि 950 से 1200 ई० तक मानी । सामान्यतः दसवी शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक इस आदि का समय निर्धारित कर दिया गया है । आदिकालीन बंगला की ध्वनि अपभ्रंश पर आधारित थी, यही नहीं यदि कहा जाय कि इस काल की भाषा में अपभ्रंश के रूप ही अधिक पाये जाते हैं तो तब भी यह अत्युक्ति नहीं लगनी चाहिए । भाषा में विविधता, स्थिरता आदि की भावना इस काल में नहीं आ पाई थी । "परन्तु अपभ्रंश काल में जिन वर्णों की पुनरावृत्ति होती है वह इस काल में सरल हो गई थी । पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वर दीर्घ एवं अनुनासिक हो गए तथा स्पर्श व्यंजन से पूर्व आने वाले अनुनासिक व्यंजन का प्रयोग समाप्त हो गया ।"[1] आदिकालीन भाषा में प्रमुख रूप से तद्भव रहा परन्तु तत्सम शब्दों का भी कमोबेश प्रचलन रहा ।

मध्य काल :

1200 ई० से 1800 ई० तक इस काल को बंगला भाषा का मध्य काल माना गया । डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने इस काल को तीन भागों में विभाजित किया है ।[2]

1. संक्रान्ति मध्य काल (1200 - 1300 ई०)
2. पूर्व मध्य काल (1300 - 1500 ई०)
3. उत्तर मध्य काल (1500 - 1800 ई०)

---

1. डा० सुनीतिकुमार चटर्जी : दि ओरिजन एंड डेवलपमेंट ऑफ बंगाली लैंग्वेज : पृ० 129 संस्करण 1970
2. -वही- पृ० 130 से 133

संक्रांति मध्य काल {1200 – 1300 ई}:

इस काल में बंगला भाषा की स्वतंत्र सत्ता सामने आयी और वह अपभ्रंश के छिछड़ेपन से मुक्त हो गई ।

संक्रान्ति मध्य काल में संज्ञा और कारकों के परसर्ग पूर्व की भाँति अनिश्चित नहीं बल्कि पूर्ण रूप से निश्चत हो चुके थे तथा काल प्रक्रिया में स्थिरता आ गई थी । जिससे अन्य व्याकरणिक कोटियों के स्थिरीकरण का मार्ग प्रशस्त हो चुका था परन्तु इसमें सम्पूर्णता 15वीं शती के बाद ही आ पाई ।

2· पूर्व मध्य काल {1300-1500 ई·} :

इस काल में बंगला भाषा का पूर्ण विकास हुआ । बंगला भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों का समावेश हुआ । तद्भव का प्रभाव कम होता गया । यह स्थिति एक प्रकार से अभिरुचि को प्रतिबिम्बित करती है । इस शब्दों में अभिरुचि भाषा में तत्सम शब्दों को प्रश्रय दे रही थी।

3· उत्तर मध्य काल {1500-1800ई·}:

मुगल शासकों के दबाव से बंगला भाषा में अरबी – फारसी के बहुत सारे शब्द आ गये । इस संबंध में डा० उदय नारायण तिवारी प्रकाश डालते हुए कहते हैं, "सोलहवीं शताब्दी के मध्य भाग में मुगल शासन में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ । अकबर के वित्त मंत्री राजा टोडरमल की आज्ञा से देशी भाषाओं का स्थान फारसी को मिला और सरकारी

- -

1· डा० उदय नारायण तिवारी – हिंदी भाषा का उद्गम : पृ· 21

हिसाब और कागज पत्र फारसी में रखे जाने लगे। इसका तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि कचहरी से संबंध रखने वाले अमला लोग, प्रत्येक प्रदेश में, फारसी से परिचित होने लगे और धीरे धीरे निम्न मध्य वर्ग के लोग फारसी के ज्ञाता हो गए....... । बंगला में इस प्रकार के शब्दों की संख्या ढाई तीन हजार के लगभग है।[1] तदुपरान्त अंग्रेजों से सम्पर्क स्थापित हुआ और इस भाषा में प्रवेश किया। पुर्तगाली व अंग्रेजी शब्दों ने। शिक्षा संस्थानों में भी अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया गया। सामाजिक प्रतिष्ठा एवं नौकरी प्राप्त करने के लिए अंग्रेजी भाषा का ज्ञान आवश्यक था। परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि साहित्य क्षेत्र में बंगला-विकास नहीं हुआ। भाषा की दृष्टि से इस काल के साहित्यकार अगर संस्कृत की ओर आकृष्ट हुए तो विषय की दृष्टि से वे लोक भूमि के भीतर प्रविष्ट हुए।

आधुनिक काल :

आधुनिक काल 1800 ई॰ के बाद प्रारंभ होता है। अंग्रेजी भाषा का प्रचार प्रसार अत्यधिक मात्रा में हुआ। यहाँ तक कि तकनीकी शब्दावलियों का स्वरूप भी अंग्रेजी भाषा में निश्चय हो चुका था। इतना होते हुए भी इस काल में बंगला की बोलियाँ स्पष्ट हुईं। शब्दों का मानकीकरण हुआ और डा॰ सुनीति कुमार चटर्जी, डा॰ सुकुमार सेन, डा॰ नलिनी मोहन सान्याल जैसे भाषा-विदों ने इस भाषा को सजाया संवारा तथा सशक्त एवं सुदृढ़ बनाया जिससे आज बंगला भाषा का स्थान भारत में तो श्रेष्ठ है ही, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी यह सुविख्यात हो गयी।

---

1. डा॰ उदय नारायण तिवारी - हिंदी भाषा का उद्गम पृ॰ 21

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद संविधान ने क्षेत्रीय भाषाओं को भी उचित स्थान दिया और आज मिशनरी संस्थाओं व कुछ संस्थाओं को छोड़कर समूचे बंगाल की शिक्षा संस्थाओं में शिक्षा का माध्यम बंगाली को बनाया गया। अब एक नजर हिंदी व बंगला के साहित्य पर यहाँ केवल दोनों भाषाओं के साहित्य की परम्परा का उल्लेख मात्र किया जाएगा। इन दोनों के साहित्य संबंधी विस्तृत चर्चा अगले अध्यायों में की जाएगी।

हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास :

सर्वप्रथम हिंदी साहित्य के इतिहास का सिंहावलोकन। अध्ययन की सुविधा के लिए इतिहासकारों ने इतिहास को कई कालों वर्गों, उपवर्गों आदि में बाँटा है। पहली बार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इतिहास अपेक्षाकृत वैज्ञानिक ढंग से कालों में विभाजित किया। यद्यपि आगे चलकर और भी कई विद्वानों ने अपने अपने शोध प्रयासों के द्वारा हिंदी साहित्य के काल विभाजन में योगदान दिया, परन्तु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी का विभाजन ही मान्य है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इतिहास को स्थूल रूप से चार भागों में विभाजित किया -

1. आदिकाल (वीर गाथा काल सं० 1050-1375)
2. पूर्व मध्य काल (भक्ति काल सं० 1375-1700)
3. उत्तर मध्य काल (रीति काल सं० 1700-1900)
4. आधुनिक काल (गद्य काल सं० 1900 से अब तक)

आदिकाल :

हिंदी साहित्य का आदि काल विशेष रूप से वीरों तथा नायकों की युद्ध तथा प्रेम परक गाथाओं का युग था । राजनीतिक दृष्टि से यह लगातार युद्धों के दबाव में रहा । विदेशी आक्रमणकारियों ने जनता को त्रस्त कर रखा था । सामाजिक दृष्टि से भी इस काल की दुर्दशा छिपी न थी । धार्मिक दृष्टि से रूढ़िवादिता और मिथ्याडंबर से ग्रस्त था । इस काल में एक तरफ जैन, नाथों और सिद्धों के धार्मिक साहित्य का निर्माण हुआ तो दूसरी तरफ चारण कवियों (राजस्थान के निवासी) द्वारा चरित काव्यों का निर्माण भी । अधिकतर शृंगार वीर एवं शांत रसों से ओत प्रोत काव्यों का सृजन होता था । वीर रस के साथ शृंगार रस का अद्भुत पुट इस काल की रचनाओं की विशेषता है । परन्तु इस काल में अनेक उपलब्ध होने वाली रचनाओं को संदेह की दृष्टि से देखा जाता है । कारण यह है कि एक तो इनमें से अधिकतर कृतियाँ या तो उपलब्ध नहीं हैं, और जो ग्रंथ मिलते हैं उनमें मौलिकता लुप्त प्राय हो गई है । क्योंकि लम्बे समय के दरम्यान कई बार इन रचनाओं को परिष्कृत व परिवर्तित भी किया गया है । इन रचनाओं में तत्कालीन ऐतिहासिक प्रसंगों को मेरा बढ़ा चढ़ा कर भी लिखा गया है । फलतः उनमें तथ्यगत सच्चाई का अभाव होने लगा था । चारण कवियों ने रीतिकालीन कवियों की तरह अपने आश्रयदाता का मुक्त कंठ से गुण गान किया चाहे वह शासक राजद्रोही ही क्यों न हो (जैसे जयचन्द प्रकाश या 'जयमयंक जस चंद्रिका) । आदिकाल की प्रमुख रचनाएं है - विद्यापति की पदावली, कीर्ति लता, कीर्ति पताका ।

दलपति विजय का खुमान रासो
नरपति नाल्ह का बीसलदेव रासो
जगनिक का परमाल रासो (आल्हा खण्ड)
चन्दबरदायी कृत पृथ्वीराज रासो
व्याकरण, संदेश रासक भरतेश्वर बाहुबली रास आदि ।

अपभ्रंश साहित्य में जिन कथात्मक प्रतीकों को प्रयुक्त किया गया था उन का उपयोग पृथ्वीराज रासो एवं नामवर सिंह का कहना है - "भावधारा के विषय में अपभ्रंश से हिंदी का जहाँ केवल ऐतिहासिक संबंध है वहाँ काव्य रूपों और छन्दों के क्षेत्र में उस पर अपभ्रंश की गहरी छाप है । रूप विधान विषय - वस्तु की अपेक्षा धीरे धीरे बदलता है और इस विषय में रूढ़ियों का पालन अधिक दिखाई पड़ता है । यही कारण है कि हिंदी के अपभ्रंश की काव्य सम्बन्धी अनेक परिपाटियों को ज्यों का त्यों और कुछ को थोड़ा सुधार कर स्वीकार कर लिया । इस तरह हिंदी ने अपभ्रंश की जीवन्त परम्परा का भाषा और साहित्य दोनों क्षेत्रों में ऐतिहासिक विकास किया ।"[1] आदिकाल का साहित्य अपभ्रंश साहित्य से इतना प्रभावित हुआ कि कभी कभी आदिकालीन हिंदी साहित्य को उससे पृथक करना असंभव लगने लगता है । इस संदर्भ में हजारीप्रसाद द्विवेदी जी का मत ध्यातव्य है --"...हिंदी को अपभ्रंश साहित्य से अभिन्न समझा जाता है तो इसे बहुत अनुचित नहीं कहा जा सकता है ।"[2] डा० गणपति चन्द्र गुप्त जी ने लिखा है कि "वस्तुत: इस

- -

1. हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग - डा० नामवरसिंह -पृ. 289 (प्रकाशक - लोक भारती प्रकाशन 15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1) मूल्य-40/- एम-491.3 एन/7329 प्र.सं.1952
2. हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ - शिवकुमार शर्मा -पृ. 48

युग में हिंदी की प्रामाणिक रचनाएं न मिलने के कारण मुसलमानों का आक्रमण, देश की अशान्ति या किसी शासक विशेष की अरुचि नहीं है। यदि ऐसा होता तो इस युग में रचित अपभ्रंश की शताधिक रचनाएं उपलब्ध न होती। यह युग साहित्य की दृष्टि से अपभ्रंश का युग है किन्तु हम इसे बलात हिंदी का आदिकाल या वीरगाथा काल सिद्ध करना चाहते हैं। फलस्वरूप कभी हम अपभ्रंश की रचनाओं को उधार लेते हैं, कभी अस्तित्वहीन या परवर्ती रचनाओं का आश्रय ग्रहण करते हैं और कभी साहित्य नष्ट हो जाने की मनगढ़ंत कहानियां कहकर आँसू बहाते हैं।"[1] कुल मिलाकर आदिकालीन हिंदी साहित्य अपने सुदूर भविष्य के लिए प्रेरणा का स्रोत बना और इसने आगामी हिंदी साहित्य की विविध मुखी परम्पराओं के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

भक्ति काल - (पूर्व मध्य काल) (विक्रम सं0 1375-1600 तक):

इस अवधि को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य का पूर्व मध्य काल या भक्ति काल के नाम से अभिहित किया है। परन्तु इस काल में भक्ति की धारा के साथ काव्य की अनेक धाराएं बह निकली जिन्हें नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता। यथा - मैथिली गीति परम्परा, ऐतिहासिक रासोकाव्य परम्परा, चरित काव्य परम्परा, ऐतिहासिक मुक्तक परम्परा, शास्त्रीय मुक्तक परंपरा, रोमांटिक कथा काव्य परम्परा तथा स्वच्छन्द प्रेम काव्य परम्परा। इसलिए कई विद्वान इसे भक्ति काल की अपेक्षा पूर्व मध्य काल कहना उचित मानते हैं। कुछ विद्वानों ने हिंदी साहित्य के भक्ति युग को पराजित मन का प्रतिफल

- -

1. हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियां - शिवकुमार शर्मा - पृ. 48

माना है तो कुछ दिग्गजों ने इसे साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं सामाजिक उत्कर्ष का परिणाम माना। यह काल हिंदी साहित्य के स्वर्ण युग के नाम से विख्यात है। अतः इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि भक्ति काल की लोकप्रियता के कारण क्या है ?

"भक्ति काव्य की लोकप्रियता का एक बड़ा कारण प्रसन्न ईश्वर तत्व है और इसलिए है कि वह सदिच्छा, शुभेच्छा, तर्कातीत आस्था और आशावादिता का केन्द्र है। तर्क संगत ठोस यथार्थ की जटिलताओं से वहाँ मुक्ति की उम्मीद है।"[1] यह ईश्वर चाहे सगुण रूप में हो या निर्गुण (भक्त कवि के इच्छित संसार को रूप देने का साधन अवश्य था, जो) इस जटिलतापूर्ण संसार का वैकल्पिक बनकर उभर आया था। भक्तिकालीन "ईश्वर" में "जन जीवन की संवेदनाएं और आकांक्षाएं अभिव्यक्ति वही थी। अतः ईश्वरीय अस्तित्व ने एक शब्द प्लेटोनिया का जिसमें "विजन" (VISION)था, रूप अवश्य ले लिया था। इसकारण से भक्ति काव्य का ईश्वरीय प्रतिरूप हमें देश काल निरपेक्ष और वायवीय लग सकता है पर वस्तुतः है नहीं।"[2]

भक्ति साहित्य दो प्रमुख धाराओं में बहने लगा था। एक सगुण भक्ति धारा जिसकी राम भक्ति व कृष्ण भक्ति नामक दो उप शाखाएं थीं। दूसरी थी - निर्गुण भक्ति धारा जिसके भी दो भेद किये गये - (1) ज्ञानाश्रयी शाखा तथा (2) प्रेमाश्रयी शाखा।

- -

1. "साहित्यिक समझ विवेक तथा प्रतिबद्धता" -डा० सुभाष कुमार, पृ. 12
2. -वही- पृ. 12

विदेशी शासन व्यवस्था तथा अन्य आंतरिक कारणों से हिन्दुओं का सामाजिक ढाँचा कट्टरपंथ का शिकार होने लगा । कभी धर्म के नाम पर तो कभीजाति के नाम पर आपस में भेद भाव, सामाजिक, कुरीतियाँ, अन्ध विश्वास आदि बढ़ने लगे थे । ऐसे में ज्ञानाश्रयी शाखा के कबीर जैसे लोग कभी उपदेश केसहारे तो कभी डाँट डपट का । समाज का उद्धार करने के लिए तत्पर हो उठे । निर्गुण का अनुसरण करने वालों में अन्य प्रमुख हैं रैदास, नानक देव, दादू दयाल, सुन्दर दास, मलूक दास आदि । कबीर सामाजिक धार्मिक आलोचक ही नहीं थे उन्होंने साखी, सबद में प्रेम और भक्ति की महत्ता का बहुत गुणगान किया है । किन्तु आचार्य शुक्ल ने वर्गीकरण की सुविधा से जायसी आदि कवियों की प्रेमाश्रयी शाखा के अन्तर्गत रखा । प्रेमाश्रयी कवि मुसलमान होते हुए भी हिन्दुओं की लौकिक प्रेम कथाओं का सहारा लेकर अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति करने लगे । यह हिन्दू मुसलमान के बीच भावात्मक तथा सांस्कृतिक निकटता लाने का एक तरीका भी था । प्रेमाश्रयी कवियों में सर्वप्रथम जायसी का नाम लिया जाता है । इन कवियों को सूफी भी समझा जाता है जिसमें कुतुबन, मंझन, जायसी, उसमान कासिम शाह, मुहम्मद आदि प्रमुख हैं । इन कवियों की प्रमुख कृतियों में मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत, मंझन की मधु मालती, उसमान कृत चित्रावली, कवि शेख नबी कृत "ज्ञान दीप" आदि विशेष रूप से उल्लेख है ।

सूफी परम्परा के दो आरंभिक काव्य आदि काल ।जो चौदहवीं शती के उत्तरार्द्ध से लेकर पन्द्रहवीं शती के अंत तक आता है। में मुल्ला दाऊद कृत "चंदायन" तथा कुतुबन कृत "मृगावती" भी उपलब्ध होते है ।

ज्ञान मार्गी शाखा के संत कवियों की प्रमुख रचनाओं में निम्नलिखित नाम लिए जा सकते है -

कबीर की "बीजक", रैदास की गुरु ग्रंथ साहब तथा अन्य कई संग्रहों में इनकी पद रचनाएं बिखरे हुए मिलती हैं। कहा जाता है कि राजस्थान मे इनकी हस्तलिखित रचनाएं अभी तक मौजूद है। "रैदास की बानी" नामक इनकी रचनाओं का एक संग्रह वेलवेडियर प्रेस प्रयाग से प्रकाशित हो चुका है।

सुन्दरदास ने कुल मिलाकर 42 ग्रंथों की रचना की जो "सुंदर ग्रंथावली" नाम से संकलित है।

मलूक दास - 1. ज्ञान बोध 2. रतन खा 3. भक्त बच्छावली 4. भक्त विरुदावली 5. पुरुष विलास 6. दस रत्न ग्रन्थ 8. अवध बानी 9. रामावतार आदि।

नानक देव - गुरु नानक देव के पदों को "गुरु ग्रंथ साहब" में संकलित किया गया।

दादू दयाल - "हरडे वाणी" तथा "अंग वधू" नाम से उनकी वाणी को संग्रहीत किया गया।

भक्ति काल की सम्पूर्ण भक्ति शाखा का साहित्य परम भक्ति का साहित्य है। इसमें भक्त मन की सुचितापूर्ण अभिव्यक्ति व एक सीधे सादे सरल जीवन की झांकी है। भक्ति साहित्य में यदि सम्पूर्ण भक्ति साहित्य या वैष्णव कवियों के साहित्य को छांट दिया जाय तब गर्व करने लायक जितना बचेगा वह हिंदी साहित्य के भक्ति युग को स्वर्ण युग कहलाने

के लिए निश्चित रूप से काफी न होगा । यह साहित्य काव्य के भाव पक्ष व कला पक्ष की दृष्टि से तत्कालीन भारत की सभ्यता व संस्कृति की दृष्टि से, संगीत व कलात्मकता की दृष्टि से चरमोत्कर्ष का युग रहा । इसमें भगवान के लोकमंगल रूप के साथ ही साथ लोकरंजक रूप का भी समावेश हुआ जिससे भक्ति रस में परिपूर्णता आ गयी । प्रभु के इस लोकरक्षक व लोकरंजक रूप को लेकर ही साकार रूप में ईश्वर की उपासना करना सगुण भक्ति कहलाता है ।

सगुण भक्ति काव्य को पुनः दो शाखाओं में बांटा गया - [1] राम भक्ति शाखा तथा [2] कृष्ण भक्ति शाखा । राम भक्ति शाखा के प्रमुख कवि हुए गोस्वामी तुलसीदास जिन्होंने तत्कालीन रुग्ण समाज के सामने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के शील, शक्ति व सौंदर्य से समन्वित एक आदर्श को समाज के सामने प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया । उन्होंने पुरातन जीर्ण शीर्ण समाज के रुढ़ि को बदलने का भरपूर प्रयास किया और वे सफल भी रहे । तुलसीदास के व्यक्तित्व को उचित ढंग से आँकने के लिए हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के इस विचार को देखना चाहिए - "तुलसीदास का महत्व बताने के लिए अनेक विद्वानों ने अनेक प्रकार की तुलनात्मक उक्तियों का सहारा लिया है । नाभादास ने इन्हें कलिकाल का वाल्मीकि कहा था, स्मिथ ने उन्हें मुगल काल का सबसे बड़ा व्यक्ति माना था, ग्रियर्सन ने इन्हें बुद्धदेव के बाद सबसे बड़ा लोकनायक कहा था और यह तो बहुत लोगों ने बहुत बार कहा है कि उनकी रामायण भारत की बाइबिल है । इन सारी उक्तियों का तात्पर्य यही है कि तुलसीदास असाधारण शक्तिशाली कवि, लोकनायक

और महात्मा थे।"[1] संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित होते हुए काव्य में उन्होंने लोक भाषा का प्रयोग किया। तुलसी से पहले किसी ने भी इस प्रकार कालोचित परिमार्जित भाषा का प्रयोग नहीं किया था। तुलसी के नाम पर तीन दर्जन पुस्तकें प्राप्त हुई है परन्तु उनमें बारह ग्रंथों को ही प्रामाणिक माना गया। तुलसी का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है - "रामचरितमानस", इसके अलावा "दोहावली", "कवितावली, "कृष्ण गीतावली", "विनय पत्रिका", "रामलला नहछू", "वैराग्य संदीपनी", "पार्वती मंगल", "जानकी मंगल", रामाज्ञा प्रश्न" आदि। भगवान श्रीराम के विनीत भक्त तुलसीदास के संबंध में जितना कहा जाए उतना ही कम है।

भगवान कृष्ण को ही अपना सर्वस्व मानकर उनकी भक्ति में लीन होकर, भक्तिपूर्ण भाव काव्य की सर्जना करने वाले कृष्ण भक्ति शाखा के कवि कहलाये। वैदिक और संस्कृत साहित्य में कृष्ण के तीन रूप मिलते है (1) ऋषि एवं धर्मोपदेशक (2) नीति विशारद क्षत्रिय राजा तथा (3) बाल और किशोर में लौकिक व अलौकिक रूप में लीलाओं को दिखाने वाले अवतारी पुरुष। प्रथम रूप का विकास गीता में, दूसरे का महाभारत में तथा तीसरे का पुराणों में हुआ। संस्कृत काव्यों में कृष्ण भक्ति का विकास प्राचीन काल से ही है। लगभग प्रथम शताब्दी में ही अश्वघोष ने अपनी "बुद्ध चरित में कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया। इसके बाद भी कई कवि हुए। हिंदी में कृष्ण भक्ति का प्रारंभ कुछ लोगों ने विद्यापति से माना है। परन्तु विद्यापति राधा-कृष्ण के प्रेम वर्णन में ही रमे थे, कृष्ण भक्ति में नहीं। हिंदी साहित्य में कृष्ण भक्ति का प्रचार व प्रसार पुष्टि मार्ग के अंतर्गत अष्ट छाप के कवियों ने की। अष्टछाप में सबसे प्रसिद्ध कवि थे सूरदास। सूरदास के

अलावा इसमें थे - कुम्भन दास, परमानन्द दास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविन्द स्वामी, चतुर्भुज दास और नन्द दास । कृष्ण भक्ति के प्रचार व प्रसार में वृद्धि करने वाले राधावल्लभी सम्प्रदाय तथा गौड़ीय सम्प्रदाय के कवि भी थे ।

कृष्ण भक्ति साहित्य आनन्द और उल्लास का महोत्सव है । इसमें रंग भरने वालों में सर्वप्रथम है सूरदास । महाकवि सूरदास भक्ति, काव्य और संगीत का त्रिवेणी - संगम थे । सूरदास ने, कहा जाता है, श्रीमद्भागवत के आधार पर कृष्ण भक्ति संबंधी सवा लाख पदों की रचना की । सूरदास की भक्ति सख्य भक्ति थी । बाल कृष्ण की लीलाओं का वर्णन इस खूबी से किया कि वात्सल्य का ऐसा अनुपम साहित्य अन्यत्र दुर्लभ है । 'सूरसागर' प्रमुख रचना है ।ब्रजभाषा की कोमलकांत पदावलियों की अनूठी अभिव्यक्ति को लिए सूर भक्ति साहित्य के ही नहीं बल्कि हिंदी साहित्य के सूर्य कहलाये । सूर ने कृष्ण की किशोर अवस्था का रास लीलाओं आदि का वर्णन किया । श्रृंगार के दोनों पक्षों के वे सिद्धहस्त कवि थे परन्तु विप्रलंभ श्रृंगार में उन्हें विशेष सफलता मिली । भ्रमर गीत प्रसंग वियोग श्रृंगार का सुन्दर उदाहरण है ।

मीराबाई व रसखान जैसे कृष्ण भक्तों का योगदान भी भक्ति कालीन साहित्य के सौंदर्य की वृद्धि में अप्रतिम रूप में सहायक बने है । मीरा के पदों में भक्त हृदय के निर्मल व सात्विक प्रेम का आभास मिलता है, कहते है उनकी भक्ति कृष्ण के विरह से जनित अश्रु से सिक्त है । इन्हीं अश्रुओं के जल से सींच सींच कर श्रीकृष्ण रूपी प्रेम की बेली को बढ़ाती है जिसके पुष्पों से सारा भारत महक उठा है । तुलसी

ने दास्य भक्ति से ईश्वर के सान्निध्य को प्राप्त किया । सूर रास लीलाओं के बहाने गोपी बनकर कृष्ण के सान्निध्य को पा गये तो मीरा स्वयं राधा ही हो गयी । निम्नलिखित रचनाओं को मीरा के नाम से जोड़ा जाता है - नरसीजी का माहरा, गीत गोविन्द की टीका, मीरानी गरबी, मीरा के पद, राग सोरठा के पद, राग गोविन्द आदि । रसखान भी श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे । रसखान के पदों में इतना माधुर्य था कि जिसे सुनकर श्रोताओं ने उन्हें रस के खान के समान कहा । अतः इनका नाम रसखान हुआ । कृष्ण प्रेम उनके जीवन का और काव्य का मूल आदर्श व आधार था । इनकी दो छोटी - छोटी पुस्तकें मिलती है - प्रेम वाटिका तथा सुजान रसखान ।

रहीम का नाम भी कृष्ण भक्त कवियों में लिया जाता है । परन्तु वे नीति व लोक व्यवहार सम्बन्धी दोहों व पदों की भी रचना करते थे ।

इस युग में ब्रजभाषा में गद्य रचना भी हुई । अन्ततोगत्वा यह कहा जा सकता है कि इस युग की प्रतिभाओं ने काव्य की दिशा में जो योगदान दिया, जो कीर्तिमान इन्होंने स्थापित किया, व न अतीत में कभी हुआ था और न ही उसके परवर्ती काल में उसका समतुल्य रहा ।

रीति काल :

हिन्दी साहित्य में रीतिकाल का अपने ढंग का एक अनूठा साहित्य है । यह जीवन को जीने की कला, उत्कुलता, प्रफुल्लता व आनन्द की भावना से ओत-प्रोत है । दूसरे शब्दों में भक्ति काल में जहाँ पारलौकिकता

है वहां रीतिकाल में भौतिकता को अधिक प्रधानता दी गयी । यद्यपि यह दरबारी साहित्य है तथा स्वान्तः सुखाय काव्यों की रचना कम हुई फिर भी इसमें माधुर्य है, रस है, आकर्षण है जो पाठकों को अतिशीघ्र ही अपनी ओर खींच लेता है । काव्य रचना की दृष्टि से यह एक नयापन था, ऐसा नयापन जो जीवन के प्रति अनुराग करना सिखाये । आश्रयदाताओं को : खुश करने के लिए इस काल के कवि शृंगारी व घोर शृंगारी कविताओं की रचना भी करते थे । शृंगार रस के दोनों पक्षों को लेकर इस युग में रचनाएं विपुल मात्रा में हुईं, अतः इस : काल को शृंगार काल भी कहा गया । रीतिकालीन शृंगार के कारणों पर विचार करने से पता चलता है कि मुगलों (अकबर से औरंगजेब तक) के शासन काल में जो शांति व समृद्धि थी उसके कारण विलास व आमोद-प्रमोद का वातावरण बना । धीरे धीरे अश्लीलता व रसिकता का मनोभाव व्यापक होता गया । अतः रीतिकालीन कवि दरबारी वातावरण में राजाओं को खुश रखने के लिए शृंगारी कविताओं की रचना करते थे ।

रीतिकालीन कवियों में सबसे लोकप्रिय कवि है बिहारी । बिहारी शृंगारी कवि थे - शृंगार के संयोग पक्ष के वे सफल कवि थे । बिहारी ने केवल 713 दोहों की रचना की जिन्हें बिहारी सतसई में संकलित किया गया । केवल 713 दोहों से वे रीतिकाल के सुप्रसिद्ध कवि बन गये । इन दोहों में मानों उन्होंने गागर में सागर भरा है । सतसई के प्रभाव के बारे में यह उक्ति प्रसिद्ध है :-

"सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर ।
देखन में छोटे लगे, घाव करे गंभीर ।।"

रीतिकाल में आचार्यत्व और कवित्व के प्रमाण स्वरूप ग्रंथ लिखने की एक परिपाटी सी चली थी । केशवदास, चिंतामणि, मतिराम, भूषण, देव, भिखारी दास, कुलपति मिश्र, सेनापति, पद्माकर और कवियों ने काव्य लक्षण भी प्रस्तुत किए । केशव की "रामचंद्रिका", "कविप्रिया" और "रसिक प्रिया" कृतियाँ महत्वपूर्ण हैं । शिवराज भूषण, शिवा बावनी, छत्रसाल दशक इनकी प्रसिद्ध रचनाएं हैं । मतिराम, सेनापति, देव रीतिबद्ध कवियों में बहुत विख्यात हुए । देव ने कुल 72 ग्रंथ लिखे थे । पद्माकर रीति काव्य के अंतिम महत्वपूर्ण कवि थे । पद्माभरण उनकी विख्यात कृति है ।

रीति मुक्त कवियों में घनानन्द, बोधा, ठाकुर, आलम, शेख, वृन्द महत्वपूर्ण हैं । इन कवियों ने नीति, प्रेम, भक्ति विषयों से संबंधित रचनाएं प्रस्तुत की । घनानंद कवित्त, इश्कनामा और विरह वारीश (बोधा) ठाकुर - ठसक, वृन्द सतसई आदि उल्लेखनीय कृतियां हैं । इनके अलावा गिरिधर कविराय, लाल तथा सूदन नामक कवि हुए जो इसी रीति मुक्त धारा के अंतर्गत आते हैं ।

आधुनिक काल के पूर्व हिंदी साहित्य का यह अति संक्षिप्त और छोटा परिदृश्य है ।

<u>आधुनिक काल :</u>

आचार्य शुक्ल ने आधुनिक काल का आरंभ सं० 1900 से माना । आधुनिक काल को गद्य काल भी कहा गया, कारण गद्य का समुचित विकास इस काल से शुरू हुआ । दूसरे शब्दों में आधुनिक काल विशेष रूप से गद्य साहित्य के विकास का काल था । अतः इसे गद्य काल माना

गया । भाषा के रूप में खड़ी बोली का गद्य एवं पद्य दोनों शैलियों में विकास हुआ । पाश्चात्य प्रभाव के कारण इनमें अभिनव शैलियों का प्रणयन हुआ अर्थात साहित्य की प्रत्येक विधा का विकास हुआ । भाव, भाषा, शैली, छन्द आदि सभी दृष्टियों से आधुनिक युग में नवीनता का उन्मेष हुआ । इस युग में राजनीति, समाज, धर्म, संस्कृति हर दृष्टि में परिवर्तन हुआ जिसका श्रेय युगीन साहित्यकारों व समाज सुधारकों को है । इस काल में अनेक महान विभूतियों ने साहित्य को समृद्ध किया जिनमें भारतेन्दु, महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचन्द, मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी आदि अनेक नाम प्रमुख हैं ।

बंगला साहित्य के इतिहास की एक झलक :

बंगला व हिंदी भाषाओं की साहित्यिक परम्परा संबंधी साझेदारी की जानकारी के लिए इन दोनों भाषाओं के साहित्यिक इतिहास को संक्षेप में देखना अपेक्षित है ।

बंगला साहित्य के इतिहास को भी युगों में बाँटकर देखने के प्रयास हुए है । इस साहित्य के विकास को देखते हुए इसके मोटे तौर पर तीन भाग होंगे - आरंभिक काल, विकास काल, तथा आधुनिक काल । श्री हंस कुमारी तिवारी ने उसे पांच भागों में बाँटा है — "आदिकाल, आरंभिक विकास काल, विकास काल, आधुनिक काल और अत्याधुनिक काल । आदिकाल - नवीं से बारहवीं तक, आरंभिक विकास काल - तेरहवीं से पन्द्रहवीं सदी यानी चैतन्य पूर्व काल विकास काल - सोलहवी से अठारहवीं सदी - चैतन्योत्तर काल, आधुनिक काल: आधी

ग्यारहवीं सदी से रवीन्द्रनाथ तक, अत्याधुनिक काल : वर्तमान रवीन्द्रोत्तर काल ।[1]

प्रारंभिक अवस्था :

बंगाल की भूमि अति प्राचीन काल से ही कई सामाजिक, धार्मिक आन्दोलनों का चश्मदीद गवाह रह चुकी है । एक समय तो ऐसा था जब बौद्ध एवं जैन धर्म ने समूचे बंगाल को अपने साँचे में ढाल लिया और तब ब्राह्मणवादी कट्टरता कुछ मंद हो चली थी । बंगाल में कई महान बौद्ध व जैन धर्म सुधारकों का जन्म हुआ था । यथा अतीश दीपांकर, शील, भद्र आदि जो बौद्ध धर्म जगत में काफी प्रसिद्ध है । नालंदा मठ के प्रसिद्ध पुजारी संत रक्षित जो गौड़ देश के रहने वाले थे तिब्बत पधारे थे । बौद्ध धर्म का प्रचार करने । उत्साही बंगाली जो बौद्ध धर्मावलंबी थे, ईसा के प्रारंभिक सदियों में चीन, कोरिया व जापान गये थे । बौद्ध धर्म की इस मशाल को लेकर ताकि वहाँ का जन जीवन इस उदार पंथी धर्म से आलोकित हो सके । इसके सबूत हैं । जापानी पुजारियों के वे धार्मिक ग्रंथ जो छठी सदी में बंगाल में प्रचलित लिपि में लिखा गया है ।[2]

---

1. बंगला और उसका साहित्य: श्री हंसकुमार तिवारी-पृ. 37 [श्री सरस्वती भण्डार, दिल्ली की ओर से राजकमल प्रकाशन -प्र.सं.]

2. In the Horiuyi temple of Japan, the manuscript of a Buddhistic work entitled Usnisa Vijay Dharini, has lately been found. The priests of the temple worship the manuscript, a fac-simile of which is now in the possession of the Oxford University. It is written in a character, which we consider to be identical with that prevalent in Bengal in the 6th century. Vide Anecdota Oxiniensis Vol.III - 'History of Bengal Language and literature' - Dinesh Chandra Sen - Page-2

जावा के "बोरो बुदोर" मंदिर का शिल्प कार्य भी बंगाली शिल्पियों ने किया। कलिंग व गुजरात के लोगों के साथ मिलकर किया। [कलिंग व गुजरात से इस द्वीप का आदिम सभ्यता का गहरा संबंध है] । इस मंदिर में उन जहाजों के स्वरूप को तराशा गया जिस तरह के जहाज बंगाल के लोग अक्सर बनाते थे तथा जिस तरह के जहाज पर बैठकर बंगाली बौद्ध धर्मावलम्बी चीन, जापान, जावा, सुमात्रा, सिलोन आदि की यात्रा करते थे। बौद्ध मत का प्रचार करने। इस संबंध में यह किंवदन्ती भी ध्यातव्य है कि किस तरह राजा सिंह बाहु का पुत्र युवराज विजय सिम्हा अपने सात सौ अनुयायियों को लेकर सिलोन गए तथा 543 ईसा पूर्व महावंश एवं अन्यान्य बौद्ध ग्रंथों में उल्लिखित विषय का प्रचार किया। मध्य नवीं शताब्दी में धीमान एवं उनके पुत्र विटपालों ने तथा उत्तरी बंगाल के वरेन्द्र नामक स्थान के निवासियों ने चित्र कला, स्थापत्य कला आदि कलाओं में नवीनता लाने का प्रयास किया, जिसकी स्पष्ट छाप नेपाल की कलाकृतियों में देखी गयी और वहीं से चीन तथा अन्य बौद्ध मतावलम्बी देशों में प्रचलित होने लगी। तभी हरप्रसाद शास्त्री जी कहते हैं कि उन्हें "बौद्ध गान ओ दोहा" सम्बन्धी जानकारी नेपाल में सन् 1907 में हुई। "हर प्रसाद शास्त्री का मत है कि आठवीं से तेरहवीं सदी के बीच पाये जाने वाले पद व गान बंगाली भाषा के ही हैं।"[1] इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि बांग्ला साहित्य

---

1. खीष्टीय 8, 9, 10, 11, 12 सते एइ समस्त चर्यागीति लेखा हयाछिल बला याय। आमार विश्वास, यदि एइ भाषा मिश्रियाछेन, तारा बंगला ओ तत्संलग्नवर्ती देशेर लोक, अनेके जे बांगाली छिलेन, ताहार प्रमाण ओ यथेष्ट पाओया याइते। तबेओ अनेकेर भाषाय एकटु व्याकरणेर प्रभेद आछे, तथापि समस्तई बांगला बलिया बोध हय [बौ०दो०पृ०6८ उद्धृत सत्येन्द्र - पृ० 5

के आरंभ काल में दो रचनाएं प्रमुख रूप से उपलब्ध हुई है । वे है -
"चर्याचर्य विनिश्चय" तथा "बौद्ध गान ओ दोहा" । "चर्याचर्यविनिश्चय" पर सिद्धाचार्यों का प्रभाव निश्चित रूप से दिखाई देता है । डा० सत्येन्द्र के अनुसार चौरासी सिद्धों का अधिकतर साहित्य आज उपलब्ध है । इन सिद्धों में भारत के विभिन्न भागों के व्यक्ति थे । अतः इन गानों और दोहों में आठवीं से तेरहवीं शती के मध्य की विविध जनपदीय भाषाओं के रूप विद्यमान मिलते हैं । इस दृष्टि से भले ही इस सम्बन्ध में विवाद बना रहे कि कौन सा सिद्ध किस भाषा का है, अथवा एक ही सिद्ध को भले ही विविध भाषा - भाषी, अपनी अपनी ओर खींचते रहें, पर इसमें संदेह नहीं कि इन सभी में उन भाषाओं के कुछ न कुछ तत्व अवश्य विद्यमान हैं, जिन (भाषाओं) का उन्हें बताया जाता है ।"[1]

यदि बंगाल में जैन प्रभाव के बारे में बात करें तब यह आश्चर्य होगा कि जैन धर्म के चौबीस तीर्थंकरों में तेइसों को बंगाल में मोक्ष प्राप्त हुई । अविभाजित बंगाल (बिहार - उड़ीसा) के हजारीबाग जिले में सामेट शेखर या पार्श्वनाथ पर्वत में जैन धर्म का कार्यक्रम चलता था । जैन तीर्थंकरों में महावीर सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, उन्होंने पश्चिम बंगाल के राढ़ क्षेत्र में अपने जीवन के अठारह वर्ष जैन धर्म का प्रचार करते हुए व्यतीत किया ।

इस प्रकार बंगला साहित्य की प्रारंभिक अवस्था में बौद्ध धर्मावलंबी आचार्यों का (प्राकृत से) बंगला भाषा को साहित्यिक रूप देने का प्रयास सफल रहा । कालान्तर में बौद्ध धर्म का ह्रास हुआ और फिर वैष्णव धर्म उभरा ।

- -

1. डा० सत्येन्द्र : बंगला साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० 11

बौद्ध प्रभावित साहित्य की परम्परा का उल्लेख नाथ तथा अन्य लोक संप्रदायों में भी मिलता है। नाथ संप्रदाय, मनसा संप्रदाय, चंडी संप्रदाय - ये धर्म संप्रदाय तथा लोक देवी देवता के संप्रदाय है जिनसे संबद्ध प्रचुर साहित्य रचा गया है।

धर्म मंगल काव्य :

मयूर भट्ट को धर्म मंगल काव्य का प्रथम कवि माना जाता है। मयूर भट्ट के उपरांत रुपराय का उल्लेख मिलता है। इन दोनों के पश्चात प्राचीन कवि खेलाराय है।

मनसा मंगल काव्य परम्परा :

मनसा मंगल काल के प्रथम रचयिता हरिदत्त माने जाते हैं। इनके उपरांत नारायण देव का नाम उल्लेखनीय है। तदुपरान्त विजयगुप्त।

चंडी मंगल :

चंडी मंगल के प्रथम कवि तो श्री सती का माना जाता है और इसका प्रथम कवि होने का श्रेय माणिकदत्त को दिया जाता है। माणिकदत्त के उपरांत माधव (यह श्रीकृष्ण मंगल काव्य के रचयिता से भिन्न) मुकुंदराम चंडी मंगल परम्परा के अपने युग के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते है। द्विज हरिराम ने भी लिखा, परन्तु इस परम्परा के दूसरे सर्वश्रेष्ठ कवि है भारत चन्द्र। इनके उपरान्त 1. लाला जयनारायण सेन, 2. भवानी शंकर 3. जनार्दन।

उपर्युक्त संप्रदायों के अलावा मानिक मंगल, शीतला मंगल, शारदा मंगल, राम मंगल आदि देवी देवताओं पर भी रचनाएं हुई । इस प्रकार बौद्ध धर्म के ह्रास होने के बाद, बंगला भाषा तथा साहित्य में इस तरह के नवीन रूप अभिव्यक्त होने लगी । साथ ही बंगाल में सहजिया संप्रदाय का प्रचलन हुआ । "बौद्ध सिद्धों और नाथों के दार्शनिक 'सहज' को तंत्र के द्वारा उपलब्ध करने के लिए पंच मकारों की नयी व्याख्या और तत्संबंधी अनुष्ठानों के साथ 'सहज' के योग ने ही इसे सहजिया नाम दिया ।"[1] पर नवीन वैष्णव जागरण काल में चौदहवीं शताब्दी में चण्डीदास का उदय हुआ । इस प्रकार सोलहवीं शती से पूर्व के बंगला लौकिक काव्य को दो भागों में बांटा जा सकता है । "पहला आदियुग जिसमें बौद्ध वातावरण के ह्रास काल की सिद्धयुगीन सी वे रचनाएं मिलती है, जिनका संबंध सिद्धों और नाथों से है । दूसरा युग ग्यारहवीं से पन्द्रहवीं शती का 'गौड़ युग' कहा जा सकता है । यह गौड़ युग भाषा और साहित्य के स्वरूप की दृष्टि से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है । पहला 11वीं से 13वीं शती तक का युग जिसमें भाषा अपनी माता अपभ्रंश के क्रोड़ से उभरती हुई दिखायी पड़ती है, और साहित्य में लोक मानस में व्याप्त लोक देवी देवताओं के माहात्म्यों की अभिव्यक्ति विशेष मिलती है । दूसरा भाग 14वीं - 15वीं शती का माना जा सकता है । इसमें भाषा संस्कृत तत्समों के योग से एक सशक्त रूप ग्रहण करने लगी है, जिसे साधु भाषा कह सकते है और साहित्य में हिन्दुत्व के 'पुनरुत्थान' के प्राण पुराण - महाकाव्यों की आत्मा प्रकाशित होती दिखाई पड़ती है ।"[2]

---

1. डा० सत्येन्द्र बंगला साहित्य का संक्षिप्त इतिहास - पृ० 69
2. -वही- पृ० 78-79

पन्द्रहवीं से आरंभिक सोलहवीं शती तक का बंगला साहित्य - पन्द्रहवीं शताब्दी के अंत से पहले रामभक्ति की प्रतिष्ठा बंगाल में हो चुकी थी । बंगाल में राम कथा के प्राचीनतम ज्ञात कवि पण्डित कृत्तिवास नामक कुलीन ब्राह्मण थे । चैतन्य के प्रभाव से राम भक्त भी कृष्ण भक्ति को स्वीकार करने लगे । फलतः अठारहवीं शताब्दी के अन्त में राम भक्ति बंगाल की दक्षिण पूर्वी सीमा में परिसीमित हो गई परन्तु राम की लोक प्रियता क्षीण नहीं हुई ।

कृष्णाख्यान काव्यों के लेखक कई हुए परन्तु सर्वाधिक महत्वपूर्ण है "बड़ु" चण्डीदास । इनकी पाण्डुलिपि में शीर्षक न मिलने पर संपादक ने इसका नामकरण किया "श्रीकृष्ण कीर्तन" ।

पन्द्रहवीं शताब्दी में उत्तरी भारत में भक्ति आन्दोलन का आरंभ हुआ । इस भक्ति की धारा को प्रवाहित करने का श्रेय दो आचार्यों - रामानन्द और माधवेन्द्र पुरी को है ।

रामानन्द जी की भक्ति का प्रसार क्षेत्र बनारस था । उनका सिद्धांत अद्वैत - निर्गुण था जिसका प्रचार उन्होंने किया । ब्राह्मण समाज की रूढ़ि ग्रस्त जाति प्रथा का वे संपूर्ण समर्थन नहीं करते थे । रामानंद से भक्ति की एक सुदीर्घ परम्परा का विकास हुआ जिसमें समाज के निचले स्तर के लोगों को भी उन्होंने अपना शिष्य बनाया ।

माधवेन्द्र मथुरा में वैष्णव केन्द्र के संस्थापक थे । उनके प्रसिद्ध शिष्य थे - ईश्वरपुरी - जो चैतन्य के गुरु थे । चैतन्य उत्साही व तेजस्वी युवक थे, जो आजीवन भक्त बने । उन्होंने कृष्ण भक्ति का प्रचार किया । माधवेन्द्र के भागवत पुराण का बंगला रूपांतर मालाधर वसु ने किया ।

चैतन्य ने बंगाल और उड़ीसा के लोगों को ही नहीं बल्कि भारत के विशाल भू भाग के अधिकतर प्रान्तों को प्रभावित किया। इस प्रकार उन्होंने एक सार्वजनिक मंच का गठन किया जो मुक्त धार्मिक विचारों और आध्यात्मिक भावनाओं का मंच था, जिसने बौद्धिक क्रिया कलाप को प्रोत्साहन दिया और जीवन में नई रुचि, नई साहित्यिक एवं कलात्मक प्रेरणा पैदा की। यह सार्वजनिक मंच ऊँच और नीच, अमीर और गरीब, हिन्दू और मुसलमान, सबके लिए खुला था।"[1] चैतन्य व उनके शिष्यों ने जातिवाद का बहिष्कार किया। चैतन्य महाप्रभु स्वयं जयदेव, विद्यापति, चण्डीदास आदि के गीतों को पसन्द करते थे। "परमानन्द सेन ने चैतन्य के जीवन पर एक नाटक (चैतन्य - चन्द्रोदय) और एक महाकाव्य (चैतन्य चरितामृत) की रचना की (जो 1538 और 1542 में संपन्न हुए)

वृन्दावन दास - 'चैतन्य मंगल' को 'चैतन्य भागवत' के नाम से प्रसिद्ध है। बंगला मे रचित चैतन्य का प्रथम जीवन चरित माना जाता है।

कृष्णदास कविराज का 'चैतन्य चरितामृत' भी इस दिशा में बहुत प्रसिद्ध है।

बंगाल की अधिकांश वैष्णव पदावली बंगला में नहीं अपितु ब्रजबुलि में लिखी गयी है। वैष्णव पद के विख्यात होने का प्रमुख कारण उनकी

- -

1. 'बंगला साहित्य का इतिहास' -सुकुमार सेन - पृ० 95

गाया जाता है । संगीत की इस शैली को कीर्तन कहा गया जिसमें इन पदों को गाया जाता था ।

सत्रहवीं शताब्दी का साहित्य :

"सत्रहवीं" शताब्दी के साहित्य की सबसे अधिक दर्शनीय विशेषता है वैष्णव गीतों का लगभग यांत्रिक उत्पादन, पुनरुत्पादन और आख्यान [मंगल] - काव्यों की नीरस पुनरावृत्ति, जो किसी प्रकार की नवीनता और ताजगी से लगभग विरहित थी । नई प्रवृत्तियों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण था पद्यों में रोमानी और अधार्मिक कथाओं का आविर्भाव, जो गायन के बजाय वाचन के लिए लिखी जाती थी.। इनके मूल आधार हिंदी और फारसी के काव्य थे, और इस काव्य शैली का पोषण सुदूर दक्षिण पूर्वी बंगाल के केवल मुसलमान लेखकों द्वारा किया गया । ..... परन्तु इन प्रवृत्तियों का साहित्य . से विशेष सम्बन्ध नहीं ।"[1]

आधुनिक युग :

अठारहवीं शताब्दी के आरंभ में ही गद्य शैली एक प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्ति के रूप में विकसित हो रही थी, यद्यपि प्रगति धीमी गति से हो रही थी । अठारहवीं शताब्दी के सातवें दशाब्द में बंगाल पर ब्रिटिश राज्य की स्थापना से वहाँ की जनता के आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन में इस शताब्दी के अन्दर अन्दर भारी परिवर्तन

---

1. बंगला साहित्य का इतिहास - डा० सुकुमार सेन - पृ. 127

दृष्टिगोचर हुआ । "छापेखाने की शुरुआत से समसामयिक साहित्यिक धाराओं की दिशा में शीघ्र परिवर्तन निश्चित हो गया । बंगाली टाइप के नमूने तैयार करने और ढालने तथा उस किताब को छापने का श्रेय जिसमें पहली बार बंगला टाइप का प्रयोग हुआ "चार्ल्स विल्किन्स" [बाद में सर चार्ल्स] को है । वह संस्कृत का अच्छा विद्वान था, जिसने "भगवद् गीता" का अनुवाद किया था और "द एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल [1784] की स्थापना में सर विलियम जोन्स की मदद की थी । बंगाल टाइप का पहला प्रयोग नेथेनियल ब्रेसे हलहेद के बंगला व्याकरण [अंग्रेजी] युग के परिवर्तन और नवीनता के कारणों में एक पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति का प्रभाव भी था किन्तु मुख्य रूप से प्रभावित करने वाले प्रमुख तत्व थे -

1. अंग्रेजी शिक्षा का आरंभ । अंग्रेजी शासन में स्थान पाने के लिए अंग्रेजी ज्ञान की अनिवार्यता ।

2. ईसाई धर्म के प्रचारकों का प्रयत्न

3. प्रेस का आरंभ

4. पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन ।"[2]

इन तत्वों का प्रकाशन पद्य के बदले गद्य में हुआ और साहित्यिक गद्य का विकास हुआ । गद्य के विकास होने के साथ - साथ साहित्य की अन्यान्य विधाओं का भी जन्म हुआ जैसे - नाटक, उपन्यास कहानी,

- -

1. "बंगला साहित्य का इतिहास" - डा० सुकुमार सेन - पृ० 166
2. बंगला साहित्य का संक्षिप्त इतिहास - डा० सत्येन्द्र - पृ० 156/157

निबंध, जीवनी, यात्रा वर्णन आदि । इसका यह अर्थ नहीं कि काव्य लेखन समाप्त हो गया था । काव्य का भी समुचित विकास हुआ जिसका चरमोत्कर्ष रवीन्द्रनाथ में देखने को मिला ।

हिंदी - बंगला (भाषा और साहित्य) का परस्पर संबंध :

एक भाषा का प्रभाव जब दूसरी भाषा पर पड़ता है तो उसके पीछे भौगोलिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक व ऐतिहासिक कारण होते हैं । भारत की एकता, उसकी दार्शनिकता काल और परिस्थितियों को झेलती हुई अनादिकाल से पनपती - फैलती रही है और आज वह विशाल वृक्ष के समान दृढ़ता के साथ खड़ा है, जिसकी जड़ें अतीत की गहराइयों में इतिहास बनकर फैली हुई हैं । हिंदी और बंगला एक दूसरे के करीब हैं । "वस्तुतः भौगोलिक दृष्टि से हिंदी प्रदेश और बंग प्रदेश में जो गंगा हिंदी क्षेत्र को सींचती है, वही बंग क्षेत्र को भी सींचती है । जो हिमालय हिंदी क्षेत्र की जलवायु को अनुशासित करता है वह बंगला क्षेत्र की जलवायु का भी नियंत्रण करता है ।..... मुस्लिम काल (मध्य काल) में आज के बंगाली ब्राह्मणों के पूर्वज कान्यकुब्ज से आये थे । चैतन्य काल में बहुत से बंगाली मथुरा वृन्दावन में रहने लगे थे । मिथिला एवं बंगाल का आदान प्रदान तो बहुत पुराना है । . . . . . वैष्णव धर्म का प्रभाव दोनों प्रदेशों में समान रूप से रहा है । ऐतिहासिक क्रम से भी दोनों ही प्रदेशों पर हिन्दू, बौद्ध, इस्लाम, ईसाइयत एवं पश्चिमी संस्कृति और सभ्यता का गंभीर प्रभाव है ।"[1]

---

1. बंगला (भाषा और साहित्य) पर हिंदी (भाषा और साहित्य) का प्रभाव - डा० इन्द्रनाथ, पृ० 35

"भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी दोनों का उद्गम एवं विकास का क्रम सामान्य क्रम से हुआ है। भाषा की दृष्टि से दोनों ही भाषाएं पूर्ववर्ती भाषाओं से विकसित हुई है। संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश [तथा तत्कालीन जन भाषाओं] का साहित्यिक एवं भाषा मूलक प्रभाव दोनों ही भाषाओं पर है। ये सभी इन दोनों की पूर्वज है और इनकी संपत्ति दोनों की अपनी संपत्ति है।"[1]

हिंदी से बंगला का संबंध बहुत पुराना है। मिथिला से बंगाल को भाषा का दान, लिपि, संस्कृति आदि की शिक्षा मिली है। इस के लिए हम विद्यापति का उदाहरण दे सकते हैं। विद्यापति की कोमल कांत पदावलियों पर मुग्ध होकर अनेकों ने इनका अनुकरण किया। इससे मैथिली और बंगला से मिश्रित एक मिली जुली भाषा का निर्माण हुआ जिसे "ब्रजबुलि" कहा गया। अतः दोनों के भाषा साहित्य का सूत्र एक था व दोनों की परम्पराएं लगभग समान ताल में चल रही थी। ब्रजबुलि साहित्य से पहले भी हिंदी भाषा का प्रचार व प्रसार था। भले ही साहित्यिक रूप में यह परिलक्षित न होता हो। कारण साधु समाज पर्यटन शील समाज था। साधु संतों ने मध्य युग के व्यापारियों के साथ देश भर में घूम कर हिंदी भाषा [इसे सधुक्कड़ी भाषा कहना ही उचित होगा] का प्रचार किया। इससे हिंदी का प्रभाव दूसरे साहित्यों पर, यत्किंचित मात्रा में ही सही पड़ा था। "मैथिली एवं बंगला के मिश्रण से अवहट्ठ पर आधारित एक नयी साहित्यिक भाषा का जन्म हुआ। जिसे ब्रजबुलि कहते है।"[2] ब्रजबुलि साहित्य का महत्व

- -

1. बंगला [भाषा और साहित्य] पर हिंदी [भाषा और साहित्य] का प्रभाव - डा० ब्रह्मानंद - पृ० 36/36
2. बंगला पर हिंदी का प्रभाव - डा० ब्रह्मानंद - पृ० 37

इतना अधिक इसलिए है क्योंकि बंगाल का सारा वैष्णव साहित्य ब्रजबुलि में ही क्यों लिखा गया या बंगाल के वैष्णव साहित्य पर हिंदी का प्रभाव क्यों है - इस प्रश्न पर विचार करने से पता चलता है कि मध्य युग के प्रमुख भक्ति आन्दोलन का केन्द्र वाराणसी एवं मथुरा [और बाद में वृन्दावन हो गया] था जो हिंदी का क्षेत्र था। इससे हिंदी व बंगला क्षेत्र की घनिष्ठता बढ़ गयी। परिणामस्वरूप ब्रजबुलि साहित्य सामने आया। इतना ही नहीं, बंगाल के भक्त व प्रणेता जो इस भक्ति आन्दोलन को चलाते थे। उनका हिंदी क्षेत्र के भक्त कवियों की ललित पदावलियों का गुण गान करना व उनमें लीन होना भी एक तरह से ब्रजबुलि साहित्य को सहारा दे रहा था। वैष्णव आन्दोलन इतना प्रभावशाली था कि बंगाल में यह वेग तीन सदियों की लम्बी दूरी पार कर गया। सोलहवीं से लेकर अठारहवीं सदी तक बंगला साहित्य पर वैष्णवता की छाप ज्यों की त्यों रही। वैसे तो वैष्णव आन्दोलन समूचे भारत वर्ष में व्याप्त था, फिर भी हर प्रांत की अपनी प्रादेशिक विशिष्टता थी जिससे इसका रूप वैविध्य-पूर्ण होकर और भी निखर उठा। परन्तु आन्दोलन के प्रभाव का माध्यम हिंदी थी। चैतन्य देव के कारण बंगाल के साथ वृन्दावन मथुरा का संबंध और भी सुदृढ़ हो गया। अब बंगाल में इस भक्ति की अभिव्यक्ति का माध्यम बंगला के साथ - साथ ब्रजभाषा भी थी। यहीं से ब्रजभाषा की महत्ता [चैतन्य के भक्ति स्रोत में प्रवाहित होने वाले पदकर्ताओं के गीतिकाव्यों में] बढ़ने लगी डा0 दिनेशचन्द्र सेन लिखते हैं - "एइ युगेर साहित्ये हिंदी उच्चारणे विशेष रूपे दृष्ट। एखन ते एइ ब्रजबोलि भाषार राजत्व, वैष्णव धर्मेर प्रभाव जाहे तखन ओ वृन्दावनी

[ब्रजभाषा] भाषार राजत्व । वृन्दावन एकमात्र तीर्थ बलिया गण्य, किन्तु उत्तर और शिक्षित समाज इहाके धरात्ले, व्यार मध्ये चारि आना   इंगरेजी शिक्षाय्या विधा देखाइया या कि उक्त सेई रूप वैष्णव गणेर बांगला तथा चारि आना वृन्दावनी मिश्रणे सिद्ध हइत ।∴ चैतन्य चरितामृत नरोत्तम विलास प्रभृति पुस्तकें दृष्ट हइवे, ये सकले कथावार्तार उल्लेख, सेइ खानेइ वृन्दावनी भाषार समधिक छड़ा-छड़ि हइयाछे ।"[1] कभी कभी ऐसा होता है कि किसी कवि विशेष को बंगाल के लोग अपना कवि मानते हैं तो हिंदी भाषी लोग उन पर अपना अधिकार जमाते हैं । और इस पर विधिवत बहस भी चलती है । यह जानना आवश्यक है कि ऐसा क्यों होता है ? बृजलानंद जी इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार देते हैं --"हिंदी का प्रभाव केवल शब्द मात्र नहीं था [.] वह बहुमुखी था । [1] वैष्णव पदावलियों में हिंदी के शब्द आये हैं । [2] वैष्णव पदावलियों में हिंदी का वाक्य विन्यास [3] इसमें बहुत से मैथिल [-] ब्रजभाषा के पद के पद मिल गये हैं । [4] इससे ब्रजबुलि नाम की एक नयी साहित्यिक भाषा का जन्म हुआ। है । [5] भक्त माल के अनुवाद के रूप में ग्रंथ के ग्रंथों का अवतारण । . . . . समान मूलक ही नहीं, सहजात होने के कारण भी बंगला हिंदी में बहुत समय तक, अभेद रहा ।"[2] अतः यहाँ हिंदी का प्रभाव बंगला पर स्पष्ट देखा जा सकता है । समूचे भारत वर्ष में वैष्णव कविता [व भक्ति कालीन कविता] लगभग हर भाषा की काव्य सर्जना के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण कदम था । भक्ति काव्य की तन्मयता, रसात्मकता

- -

1. बंगला पर हिंदी का प्रभाव - डा० बृजलानंद -पृ० 69 से उद्धृत
2. -वही- पृ० 71 - 72 - 73

व भावों की गहनता अन्यन्न है । बंगला काव्य भी इससे अछूता न था । इस भक्ति काव्य के पीछे केवल आध्यात्मिकता की भावना ही मायने रखती हो - ऐसी बात न थी । सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि क्षेत्रों को भी इस काव्य से बेहद प्रभावित किया । रामायण व महाभारत जैसे महाकाव्यों और पुराणों को अपना गृहीत विषय बनाकर कवियों का समाज के सामने उच्च आदर्शों की स्थापना की । यह निश्चय ही सामाजिक उत्थान का कार्य था । इस क्षेत्र में उत्तर भारत के कवियों का प्रयास अतीव सराहनीय है । हिंदी क्षेत्र में जो काम रामानंद, कबीर व नानक आदि ने किया बंगाल में वैष्णव गीति कवियों ने अपनी गीति के द्वारा किया । हिंदी क्षेत्र से इतना प्रभाव होने पर भी बंगला भाषा का वैष्णव साहित्य अपना एक निजस्व स्थान रखता है । इसका निदर्शन हुमायूं कबीर ने शब्दों में किया है --"बंगला काव्य के विकास और उसके रूपान्तर का जैसा इतिहास है, वैसे इतिहास की झलक, भारत के उत्तर और पश्चिम प्रदेशों में नहीं मिलती । . . . . सफल कविता की दृष्टि के लिए भाषा के जिस उत्कर्ष और आजादी की जरूरत है, वह बंगाल के समान अन्यत्र सुलभ न रही ।"[1]

अंग्रेजी साहित्य में जिस प्रकार अंधकार युग की कल्पना की गई उसी प्रकार बंगला साहित्य में भी वैष्णव साहित्य के बाद एक शताब्दी तक उत्कृष्ट रचनाओं के अभाव के कारण इस अवधि को अंधकार युग माना गया । [यह नवाबी युग था | अतः फारसी का प्रभाव था]

- -

1. बंगला काव्य की भूमिका" - हुमायूं कबीर - पृ. 3।

इस जमाने में भी "दूसरी देशी भाषाओं की तुलना में बंगला का काव्य विकास सर्वोत्तम था। भारत की किसी दूसरी भाषा में शायद काव्य साधना को इतनी सफलता न मिली थी। . . . उस समय के बंगला काव्य का उत्कर्ष गुण और परिमाण का रहा स्वभाव का नहीं।"[1]

बंगाल में अठारहवीं शती तक तो वैष्णव साहित्य का ही दबदबा था। परन्तु अठारहवीं सदी में राजा कृष्णचन्द्र के समय में, "कविता की बड़ी उन्नति हुई और आज तक कविता का उद्देश्य जहाँ बहुत कुछ धार्मिक था, अब राजा तथा उसके सामन्तों को खुश करने का साधन बन गयी। इस मोड़ की बात को भी दिनेशचन्द्र सेन ने बड़े मार्मिक शब्दों में बताया है। उनका कहना है --"अब कवियों के लिए राजमहल के द्वार खुल गये, इसलिए अब वे इस बात की परवाह नहीं करते थे कि स्वर्ग के द्वार उनके लिए बन्द हो गये। "दूसरे शब्दों में अब उस कविता की सृष्टि हुई, जिसे हम दरबारी कह सकते है।"[2]

उपर्युक्त लक्षण हिंदी साहित्य के रीतिकाल से मिलती जुलती है। अर्थात् बंगाल व हिंदी प्रदेश के साहित्यिक प्रवाह समान समान वेग से प्रवाहित हो रहे थे। इसलिए बंगाल में यदि वैष्णव युग के उपरांत अंधकार युग की कल्पना की गई तो हिंदी साहित्य में भी भक्ति काल के उपरांत ऐसी ही दशा रीतिकाल में दिखाई देती है, यद्यपि कलात्मकता की दृष्टि से रीतिकालीन काव्य अत्यन्त उत्कृष्ट और समृद्ध है।

- -

1. "बंगला काव्य की भूमिका- हुमायून कबीर - पृ० 36

2. बंगला साहित्य दर्शन - मन्मथनाथ गुप्त - पृ० 50

हिंदी साहित्य के रीतिकाल को भी कुछ लोग अंधकार युग कहते है क्योंकि भक्तिकाल के समान प्रभावशाली ग्रंथों की रचना नहीं हुई । परन्तु रीतिकाल के श्रृंगारपरक ग्रंथों की तुलना क्या हम अन्य किसी युग के काव्य से कर सकते हैं ? देव - बिहारी,: केशव,: घनानंद,: भूषण, मतिराम,: पद्माकर जैसे कवियों की रचनाएं कहीं से भी कम नहीं लगती । इसलिए बंगाल के वैष्णवोत्तर [चैतन्योत्तर] काल या हिंदी साहित्य के रीतिकाल के बारे में डा0 ब्रह्मानन्द का कथन दृष्टव्य है - "भारत में मुस्लिम आक्रमण तथा मुसलमानी राज्य विस्तार ने भारतीय साहित्य को एक नया मोड़ प्रदान किया है । बंगला और हिंदी साहित्य की धाराएँ, प्रवृत्तियाँ भी इससे प्रभावित हुई है । बंगला से पहले मुसलमानी राज्य हिंदी प्रदेश में स्थापित हुआ था । अतः हिंदी के माध्यम से बंगला पर भी इसका प्रभाव पड़ा ।"[1] बंगाल के सिलहट, चट्गाव, ढाका आदि क्षेत्र तथा लोअर बर्मा के रोसांग,: अराकान आदि क्षेत्रों तक हिंदी के सूफी काव्यों से प्रभावित कराये जाते हैं । बंगला साहित्य के इतिहास में एक नये युग एक नई प्रवृत्ति का उद्भव हुआ । डा0 सत्येन्द्रघोषाल, "दौलतकाजी कृत सती मयना और लोट चन्द्रानी" की भूमिका, पृ. । में लिखते है —"इन मुसलमान कवियों को केवल धार्मिक काव्य रचना की धारा परिवर्तन करने से ही, शान्ति नहीं हुई, किन्तु फारसी और प्राचीन हिंदी से आगत अज्ञातपूर्व अभिनव आख्यान समूह के द्वारा बंगला साहित्य में उन्होंने

- -

1.: बंगला पर हिंदी का प्रभाव - डा0 ब्रह्मा - पृ.: 210

2.: बंगला पर हिंदी का प्रभाव - डा0 ब्रह्मानंद -पृ. 211 से उद्धृत

एक नये युग की सृष्टि की है ।"[1] इस सम्बन्ध में डा० ब्रह्मानंद और भी अधिक जानकारी देते है - "इस्लामि बंगला साहित्यकारों में सर्वप्रथम साधन विरचित हिंदी काव्य "मैनासत" था जिसका अवलम्बन लेकर सूफी साधक दौलतकाजी ने आराकान राज सभा में सत्रहवीं शताब्दी [1622 - 1638] में श्री सुधर्मा [थिरि थुन्धम्मा] के राजत्व काल में अपनी "सती मयना और लोट चन्द्राणी" काव्य की सृष्टि की थी । ...किंचित हिन्दी मूलक प्रेमाख्यानों का उत्स गौड़ दरबार [पश्चिमी बंगाल] हुसैन शाह के राजत्व काल में होता है । अवधी काव्य परम्परा ही इसका मूल है । डा० सेन भी इस मत से सहमत है, वे लिखते है, "किन्तु पश्चिमी बंगाल [गौड़ दरबार] से उत्तरीपूर्वी बंगाल के प्रदेशों सिलहट और चटगांव के अंचलों से स्थानीय मुसलमान जागीरदारों के दरबार में स्थानांतरित हुई वहीं से आराकान, रोसांग के राजाओं और मंत्रियों की सभा में इन हिंदी मूलक कहानियों का प्रवेश हुआ ।"[2] सतरहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आराकान के इस राजसभा में ही प्रसिद्ध कवि हुए । "दौलतकाजी तथा सैयद आलाओल जिन्होंने हिंदी फारसी काव्यों का अवलम्बन, ग्रहण, अनुवाद एवं अनुवाद से बंगला साहित्य जगत के नवयुग का सूर्योदय किया ।"[3]

- -

1. बंगला पर हिंदी का प्रभाव - डा०ब्रह्मानंद - पृ० 211 से उद्धृत
2. बांगला साहित्येर इतिहास प्र०सं० पृ० 564 - डा० सुकुमार - बंगला पर हिंदी का प्रभाव - डा० ब्रह्मानंद, पृ० 212
3. -वही- पृ० 213

सैयद आला ओल व दौलत काजी जैसे कवि के ऊपर प्रेमाख्यान के हिंदी कवियों का काफी असर पड़ा । डा० सुकुमार सेन के शब्दों में, "आला ओलेर प्रथम एवं श्रेष्ठ रचना "पद्मावती पांचाली" काव्य जायसीर [पद्मावत, पद्मावती] कालेर क्वचित स्वाधीन, क्वचित मूलानुगत अनुवाद ।"[1]

आधुनिक बंगाल का युग 1800 से माना जा सकता है । आधुनिक बंगाल में, राजनीति, साहित्य, धर्म प्राय: सभी क्षेत्रों में एक से एक महती प्रतिभाओं का आविर्भाव हुआ । कुछ विद्वान इसे पश्चिम की देन मानते है, जहां डा० हुमायूं कबीर ने तो यहां तक कह डाला कि "यूरोपीय प्रभाव के फलस्वरूप उन्नीसवीं सदी के बीचों बीच बंगला काव्य में ये नयी धारा शुरू हुई, उसको दूसरी भारतीय भाषाओं का काल का अन्तर गुण और परिमाण का ही नहीं, बल्कि बहुत बार उन्हें समगोत्रीय समझ सकना भी कठिन है ।" अंग्रेजों के संपर्क में आने से कहा जाता है कि बंगाल में एक अवसरवादी वर्ग का निर्माण हुआ । डा० चटर्जी ने इसे "इन्टरमीडियेट हलिंग रेस" कहा है जहां बंगाल निवासी शासक और शासित के बीच एक मध्यस्थ जाति के रूप में आगे आये । डा० हुमायूं कबीर "बंगला काव्य की भूमिका" [पृ० 41] में लिखते है, "चिरस्थायी बन्दोबस्त की वजह से ही बंगाल का हिन्दू मध्य वित्त वर्ग इतनी तेजी से बना और उसी द्रुत परिवर्तन के फलस्वरूप ही बंगाल के आधुनिक साहित्य का ऐसा आश्चर्यजनक विकास हुआ ।"

- -

1. "बंगला साहित्येतर इतिहास, पृ. 574- उद्धृत बंगला पर हिंदी का प्रभाव - डा० बृजलाल -पृ. 220
2. बंगला साहित्य का संक्षिप्त इतिहास-डा० सत्येन्द्र
3. बंगला काव्य की भूमिका"-हुमायूं कबीर-पृ० 36

अर्थ विज्ञान की दृष्टि से हिंदी एवं बंगला शब्दों का तुलनात्मक अध्ययन-डा० राधाकृष्ण सहाय-पृ. 52 से उद्धृत [हिन्दू जाति संस्कृति और साहित्य, पृ० 3]

बंगला साहित्य के आधुनिक युग का आविर्भाव व विकास

बंगला साहित्य व अन्य भाषाओं के साहित्य की तुलना में शायद पहले आधुनिक हुआ। कारण वहां छापेखाने की शुरुआत देश में सबसे पहले हुई। बंगाली टाइप में पहली छपी पुस्तकों में से थी नेथेनियल ब्रेसे हलहेद का बंगला व्याकरण।[1] इस व्याकरण को हुगली के एक छापाखाने में 1778 ईस्वी में छापा गया।[2] इसके साथ ही "बंगला टाइप में छपने वाली पहली बंगाली पुस्तकें उन विधि संहिताओं की गद्यानुवाद थी जिन्हें ईस्ट इण्डिया कंपनी ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा के प्रशासन के लिए अपनाया था।"[3] यह अक्सर कहा जाता रहा है कि बंगाल के निवासी व बंगाली साहित्य यूरोपीय सभ्यता से बेहद प्रभावित थे। इसमें यदि सच्चाई हो भी तो इस बात पर ध्यान देना आवश्यक हो जाता है कि अंग्रेज और यूरोपीय भी बंगला भाषा व बंगला भाषी से संपर्क रखने के लिए मजबूर थे। द्रष्टव्य है कि बंगला भाषा संबंधी हलहेद के विचार जिनको उन्होंने अपने व्याकरण की प्रस्तावना में व्यक्त किया है।

"यह हर जाति और व्यवसाय के हिन्दुओं के मध्य व्यक्तिगत और पत्राचार संप्रेषण का एक मात्र माध्यम है। उनके सारे व्यापार का अनुवाद

- -

1. डा० सुकुमार सेन - बंगला साहित्य का संक्षिप्त इतिहास - पृ० 166

2.

3. डा० सुकुमार सेन - बंगला साहित्य का संक्षिप्त इतिहास - पृ० 166

इसी में होता है और हिसाब किताब भी इसी में रखा जाता है । संक्षेप में यदि सरकार के संचालन में न्याय के वितरण में राजस्व के एकत्र करने में और व्यापार के विनिमय में, तीव्रता, पक्षपात हीनता और तत्परता की अपेक्षा है तो यह केवल उस बोली पर समुचित ध्यान देने से सिद्ध किया जा सकता है जो उस समाज में प्रयुक्त होती है, विशेषकर इसलिए क्योंकि यह बोली अपनी सरलता अपने समास गुण और नियमित संरचना के कारण फारसी के अलंकृत और अलंकृत वाक्यों की अपेक्षा व्यक्तिगत और सार्वजनिक दोनों प्रकार के कार्यों के लिए अधिक उपयुक्त है ।"[1]

इसी से अंग्रेजों ने बंगला भाषा को सीखकर उसमें प्रवीणता हासिल की । "तभी 1785 में जोनाथन डंकन ने "रेगुलेशन्स फॉर द एडमिनिस्ट्रेशन आफ जस्टिस इन द कोर्टस आफ दिवानी अदालत' का बंगलामें अनुवाद किया । 1793 में "कोर्नवालिस कोड का हेनरी पिट्स फोर्स्टर" ने बंगला में अनुवाद किया ।"[2] बाद में भी बंगला भाषा के विद्वान कई यूरोपीय हुए जिनमें शीर्ष स्थान "चार्ल्स विल्किन्स", "हलहेड", ग्रेग्स चामने हाटेन आदि का है । परन्तु बंगला साहित्यिक गद्य के विकास में सफल योगदान था । डा० केरे का अधिकांश विद्वान श्री रामपुर [या सिरामपुर] मिशन से संबंध रखते थे । 1800 में में सेरामपुर में डा० केरी, विलियम वार्ड तथा जोशुआ मार्शमैन द्वारा बैप्टिस्ट की स्थापना बंगाल निवासियों के लिए एक महत्वपूर्ण घटना

- -

1. डा० सुकुमार सेन : बंगला साहित्य का संक्षिप्त इतिहास -पृ० 167

2. दिनेश चन्द्र सेन : हिस्ट्री आफ बेंगाली लैंग्वेज एन्ड लिट्रेचर - पृ० 849

थी । बंगला मे नए टेस्टामेंट का प्रकाशन 1801 में तथा इसीर सन्त सेंट मैथ्यू के गोस्पल का अनुवाद 1800 में ही संपन्न हुआ । बंगला में बाइबिल का अनुवाद 1808 में पूरा हुआ ।[1] वैष्णव पदावलियों पर मोहित होने वाले बंगाल निवासी केवल इसके पठन पाठन से ही क्रिस्ट धर्म के प्रशंसक हो गए । यहबात काफी आश्चर्यजनक लगती है । डा0 दिनेश चन्द्र सेन ने "हिस्ट्री आफ बंगाली लैंग्वेज एण्ड लिट्रेचर में लिखा कि बंगाली अभिभूत हुए थे । केवल अंग्रेजों के धर्म ग्रंथों से नहीं अपितु डा0 केरी तथा उनके साथियों द्वारा त्याग, आत्म समर्पण की भावना, हर बुराई का जवाब भलाई से देना, सदाचार की शिक्षा {जो उन्हें अपने धर्म से सीखनेको मिली थी } आदि पर वे मोहित थे । केरी भले ही धर्म प्रचारक हों परन्तु अत्याचार के बदले में प्यार देने का उत्तम विचार केरी जैसे प्रारंभिक मिशनरियों में देखकर बंगाल के कई विद्वान आकर्षित हुए । उस उदात्त विचार धारा वाले धर्म की ओर जो सभ्य समाज को और भी अधिक गुमराह होने की शिक्षा दे रही थी । इनमें महत्वपूर्ण है - के॰एन॰बेनर्जी, लाल ,' बिहारी दे,' माइकेल, मधुसूदन दत्त, गोविन्द चन्द्र दत्त, आदि । परन्तु यह सच है कि कुछ समय के लिए बंगाल के निवासी पाश्चात्य सभ्यता व धर्म से चकाचौंध हो गए तथा अपने धर्म व संस्कृति को पिछड़ा मानने लगे थे ।

बात जब धर्म की निकली हो तो चर्चा को आगे बढ़ाते हुए यह कह सकते है कि आधुनिक युग में धर्म की रक्षा करने के लिए भारत देश में बंगाल सबसे आगे था । मिशनरियों द्वारा ईसाई धर्म के प्रचार से

- -

1.' डा0 सुकुमार सेन - बंगला साहित्य का संक्षिप्त इतिहास-पृ॰ 167

बंगाली युवक प्रेरित हुए । बंगाली समाज की बुनियाद को जड़ से हिला देने में यूरोप मिशनरी लगभग कामयाब हो गए होते परन्तु राममोहन राय ने साहित्य, समाज व धर्म सभी क्षेत्रों में समन्वय लाने का प्रयास किया । यह बात और है कि राम मोहन के अनुयायियों ने पाश्चात्य आदर्शों को अधिक अहमियत दी जिससे राम मोहन राय को भी उस इल्जाम का शिकार होना पड़ा । आधुनिक युग में धार्मिक पुनर्जागरण की बात होने पर श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद तथा महर्षि अरविन्द जैसे नामों को भूलना नहीं चाहिए जिन्होंने सर्व धर्म समन्वय की भावना को प्रश्रय दिया ।

साहित्यिक दृष्टि से भी बंगाल ने देश भर को प्रभावित किया । परन्तु कई बार यह कहकर उसे उचित दर्जा नहीं दिया गया कि बंगला साहित्य केवल मात्र अंग्रेजों व अंग्रेजी साहित्य से प्रभावित है । इस संबंध में मोहित लाल मजूमदार का यह कथन उद्धृत करना उचित होगा.....

"नये युग का बंगला साहित्य केवल अंग्रेजी साहित्य की क्षीण प्रतिध्वनि था, यह कहना गलत होगा । मान लिया जाय कि अंग्रेज भारत वर्ष में नहीं आते तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि बंगला में घुमा फिराकर विद्यापति और चंडी दास की ही सृष्टि होती । यदि यह मान लिया जाय कि बंगला के इन कवियों में प्रतिभा थी तो मानना ही पड़ेगा कि ये कलाकार युग मन के तकाजे के अनुसार साहित्य को नये सिरे से तोड़कर गढ़न करते ।"[1]

- -

1. 'बंगला के आधुनिक कवि' -मन्मथनाथ गुप्त से उद्धृत -पृ. 9

जब दो भाषाओं व साहित्य की तुलना की जाती है तब एक साहित्य को दूसरे साहित्य से किंचित श्रेष्ठ बताना स्वाभाविक है। पर यह नहीं भूलना चाहिए कि प्रत्येक भाषा और साहित्य का निजी गुण, स्वतंत्र व्यक्तित्व होता है। अब बंगला व हिंदी साहित्य के आधुनिक युग के कवियों के प्रति एक नजर डालना उचित होगा जिससे तत्कालीन साहित्यिक गतिविधियाँ स्पष्ट हो सके। आधुनिक बंगला काव्य के प्रारंभिक युग ईश्वरगुप्त, माइकेल, मधुसूदन दत्त, बिहारी लाल, हेमचन्द्र, नवीनचन्द्र, देवेन्द्रनाथ, शिवनाथ शास्त्री, अक्षय कुमार बड़ाल आदि रचनाकारों का अवदान पाते है। तत्पश्चात् रवीन्द्रनाथ ठाकुर का आविर्भाव होता है, जिन्होंने बंगला साहित्य को विश्व विख्यात कर दिया। रवीन्द्र युग में अनेक सिद्धहस्त रचनाकार थे, जैसे द्विजेन्द्रलाल राय, नन्दलाल, सत्येन्द्रनाथ दत्त, चम्पा, इन्दिरा देवी, प्रियम्वदा देवी, यतीन्द्र मोहन बागची, कालिदास राय, निरुपमा देवी, यतीन्द्रनाथ सेन गुप्त, काजी नजरूल इस्लाम, राधाचरण चक्रवर्ती, सुधाकान्त राय चौधरी, सुरेन्द्र नाथ मैत्र आदि प्रमुख है। रवीन्द्रोत्तर काल में मोहित लाल मजूमदार, बनफूल (इनका असली नाम है बलाइ चन्द मुखोपाध्याय) रजनीकान्त दास, रवीन्द्रनाथ मैत्र, प्रेमेन्द्र मित्र, सावित्री प्रसन्न चट्टोपाध्याय, अचिन्त्य कुमार सेन गुप्त आनन्दशंकर राय, अजित कुमार दत्त, बुद्ध देव बोस, हुमायून कबीर, आशु भट्टाचार्य, मही उद्दीन आदि समर्थ रचनाकार हुए।

भारतेन्दु युग :

हिंदी साहित्य में आधुनिक युग का आरंभ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से माना जाता है।

डा० रामविलास शर्मा भारतेन्दु युग का साहित्यिक मूल्यांकन करते हुए लिखते है, "प्रथम उत्थान नव युग का आरंभ मात्र था । इसलिए हमें इस समय की कविता में उस कलात्मकता के दर्शन नहीं होते जो कालांतर में सतत परिश्रम से प्रकट हुई । काव्य विषयों के सर्वथा नवीन होने के कारण इनकी काव्यपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए समय की आवश्यकता थी ।"[1] परन्तु विषय की नवीनता और भावों की अभिव्यक्ति अनुभूति की गहनता पर आधारित होती है, इसमें बाधक तत्व और कुछ तो नजर नहीं आता । सर्जनात्मक प्रतिभा यदि हो तो किसी भी युग में विषय का चयन करने की समस्या व्युत्पन्न नहीं होती । मिसाल के तौर पर गालिब, दाग हाली, अकबर इलाहाबादी, माइकेल मधुसूदन दत्त, हेमचंद्र तथा रवीन्द्र ठाकुर आदि प्रतिभाओं का कलात्मकता का विकास प्रायः भारतेन्दु के समय में ही हुआ था । सच तो यह है कि भारतेन्दु तथा उनके समकालीन लेखक हिंदी भाषा व हिन्दू जाति के उद्धार के लिए कमर कस कर प्रयास कर रहे थे । अतः वे देशप्रेमी, पत्रकार व प्रचारक कहना सकते है कवि या साहित्यकार कम ।

भारतेन्दु युग में बंगला साहित्य का प्रभाव हिंदी साहित्य पर साफ दिखाई देता है - स्वयं भारतेन्दु ने बंगला भाषा व साहित्य को आदर्श मानकर "नाटक" नामक प्रबंध में निर्देश दिया -

"अपनी सम्पत्तिशालिनी ज्ञानवृद्धा बड़ी बहन की भाषा के अक्षय रत्न भण्डागार की सहायता से हिंदी भाषा बड़ी उन्नति करे ।"[2]

---

1. हिंदी साहित्य - युग और प्रवृत्तियाँ -डा० शिवकुमार शर्मा, पृ.433 से उद्धृत
2. "आधुनिक हिंदी काव्य साहित्य का विकास प्रबन्ध"-सदन मोहन प्रसाद, पृ.67

इसलिए भारतेन्दु व उनके अनुयायियों ने बंगला साहित्य के ग्रंथों का हिंदी में अनुवाद किया जिनसे हिंदी साहित्य में नवीन विषयों का समावेश हुआ । भारतेन्दु पर बंगला कविताओं के प्रभाव का उदाहरण -

1. भारतेन्दु जी का नाटक "भारत जननी" - किशनचन्द्र बंदोपाध्याय के बंगला नाटक "भारत माता" का दूसरा रूप है ।[1]

2. द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर के "मलिनमुख चन्द्रमा भारत तोमारि" का ब्रजभाषा में रूपान्तरण किया । भारतेन्दु ने "मलिनमुख भारत माता तेरो" आदि [संगीत के क्षेत्र में][2]

3. बंगला का "देखो गो भारत माता तोमारि" ब्रजभाषा के नाटक रूप में "लखा किन भारतवासिन को गति"[3]

4. कहा जाता है कि भारतेन्दु का साहित्य बंगाल के हेमचन्द्र के साहित्य से प्रभावित है ।[4]

भारतेन्दु . युग में मुख्यत: पद्य क्षेत्र में ब्रजभाषा और गद्य क्षेत्र में खड़ी बोली का प्रयोग हुआ । इस काल के कवियों ने छन्दों के क्षेत्र में नवीनता लाने का प्रयास किया - कवित्त, सवैया दोहा, छप्पय आदि के स्थान पर कजली, विरहा, रेखता, मलार, लावनी, ठुमरी, होली, खेमटा, कहरवा, चैती, साखी और गजल का प्रयोग हुआ । गीत के क्षेत्र में बंगला पर हिंदी का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है । हिन्दू कवियों में राम-निधि गुप्त या निधु बाबू ने सर्वप्रथम प्रेम गीतों की रचना की । उ०

- -

1. "आधुनिक हिंदी काव्य साहित्य पर बंगला प्रभाव" -डॉ० [illegible] - पृ. 67

2. 3. 4. -वही- पृ. 67/68

डा0 सुकुमार सेन का मत है,...."निधू बाबू ऊपर गये थे, वहाँ हिन्दुस्थानी संगीत अच्छी तरह से सीखकर हिंदी गीतों के आधार पर बंगला में टप्पा अर्थात संक्षिप्ताकार गीतों की रचना करते रहे।"[1] हिन्दी (हिन्दुत्व) शास्त्रीय (उच्च) संगीत का असर राममोहन राय पर भी द्रष्टव्य है। "हिंदी उच्च संगीतेर अनुसरणे ब्रह्मसंगीतेर सूत्रपात करेन महात्मा राममोहन राय।"[2]

द्विवेदी युग:- हिंदी साहित्य के आधुनिक युग का द्वितीय चरण द्विवेदी युग कहलाता है। विगत युग के युग प्रवर्तन का काम यदि भारतेन्दु ने किया तो इस युग के नेतृत्व का भार सम्पूर्णरूपेण महावीर प्रसाद द्विवेदी पर था। द्विवेदी युग में भाषा की अस्थिरता दूर हुई, भाषा को संस्कार प्राप्त हुआ। भाषा क्षेत्र के इस आन्दोलन में उनका साथ देने वाले थे। कामताप्रसाद गुरु, गौरीशंकर मिश्र, चंद्रधर शर्मा गुलेरी आदि। द्विवेदी जी साहित्यिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण साबित हुए क्योंकि उन्होंने एक ओर अनेक मौलिक तथा अनूदित रचनाएँ प्रस्तुत की और दूसरी ओर "सरस्वती" पत्रिका के द्वारा नये कवि और लेखक पैदा किये। इलाहाबाद के इण्डियन प्रेस से 1899-1903 के बीच दो सुविख्यात पत्रिकाओं का आगमन हुआ। एक सरस्वती दूसरा प्रवासी। प्रवासी को श्रेष्ठता प्रदान करने में रामानन्द चट्टोपाध्याय का योगदान अविस्मरणीय रहेगा। जिन्होंने इतर भाषियों

---

1. "बंगला साहित्येर इतिहास" पु०सं० पृ० 974 - बंगला पर हिंदी का प्रभाव - डा0 ब्रह्मानंद, पृ० 248/249 से उद्धृत

2. "रवीन्द्र संगीत" -शान्तिदेव घोष, पृ० 40 विश्व भारती ग्रंथालय कलकत्ता - बंगला पर हिंदी का प्रभाव - डा0 ब्रह्मानंद - पृ० 275 से उद्धृत

के सम्मुख एक आदर्श को प्रस्तुत किया । परवर्ती कालमें रामानन्द जी ने "विशाल भारत" एवं "मार्डर्न रिव्यू" नामक पत्रिका का संपादन किया जिसमें बंगला साहित्य की श्रेष्ठता को स्थापित करने का प्रयास किया । "द्विवेदी जी "प्रवासी", "मार्डन रिव्यू" जैसी पत्रिकाओं के आदर्श पर "सरस्वती" को प्रतिष्ठित किया ।"[1] महावीर प्रसाद द्विवेदी अनेक भाषाओं के पण्डित थे । अतः साहित्य [हिंदी] में नूतन रूप का संचार करने के लिए उन्होंने संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला व मराठी साहित्य का सहारा लिया । डा० कृष्णलाल के शब्दों में, "हिंदी ने अपनी जातीय विशेषताओं के अनुरूप अंग्रेजी साहित्य की स्पष्ट भाव व्यंजना, बंगला की सरलता और मधुरता, मराठी की गंभीरता और और उर्दू का प्रवाह ग्रहण किया ।"[2] इसके अलावा द्विवेदी युग में माइकेल मधुसूदन दत्त का प्रभाव केवल हिंदी साहित्य पर ही नहीं समूचे भारतीय साहित्य पर विशेषकर उड़िया, असमी और हिंदी साहित्य पर पड़ा । हेमचन्द्र बन्दोपाध्याय तथा नवीनचन्द्र सेन की देश प्रेम की कविताएं प्रकर्ष पर थी, जिससे कई भाषा के साहित्यकार प्रेरणा ग्रहण कर रहे थे । "आधुनिक युग में साधारणतया बंगला साहित्य विशेषतया, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर का प्रभाव आधुनिक भारत की समस्त भाषाओं के साहित्य पर पड़ा ।"[3] हिंदी के कुछ विद्वानों को द्विवेदी युग की राष्ट्रीयता में संकीर्णता नजर आती है । इस संबंध में डा० शिवदान सिंह चौहान लिखते है —"आश्चर्य की बात तो यह है कि उन्नीसवीं शताब्दी में ही नहीं बीसवीं शताब्दी के पहले दो दशकों तक अर्थात छायावादी काव्यधारा के फूटने से पहले तक के हिंदी कवि [महावीर प्रसाद

- -

1. "हिंदी की पत्र - पत्रिकाएं" -विजय वर्मा - पृ० 23
2. हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियां - डा० शिवकुमार शर्मा, पृ० 422-423 से उद्धृत
3. बंगला पर हिंदी का प्रभाव - डा० ब्रह्मानंद-पृ० 270

द्विवेदी, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध और मैथिलीशरण गुप्त। इस संकीर्ण घेरे का अतिक्रमण करने का साहस नहीं कर पाए । जातिगत, सम्प्रदायगत और भाषागत स्वार्थों से ऊपर उठकर वे अपनी वाणी में राष्ट्रीय एकता का वह उदात्त स्वर नहीं फूंक पाए जिसने रवीन्द्रनाथ ठाकुर और इकबाल [पाकिस्तान की मांग से पहले के इकबाल] के कंठ से निकलकर सारे देश में नया स्पन्दन भर दिया था ।"[1]

बंगला साहित्यकारों पर भी हिंदी का प्रभाव पड़ा है । विशेषकर गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर पर । "गुरुदेव पर यह हिंदी प्रभाव अनेक स्रोतों से पड़ा है । प्रमुखतया यह हिंदी प्रभाव त्रिमुखी है ।"[2] त्रिमुखी से आशय है - हिंदी साहित्य, ब्रजबुली तथा हिंदी संगीत, गुरुदेव पर उत्तर भारत के शास्त्रीय संगीत का काफी असर पड़ा । स्वयं गुरुदेव कहते हैं --"मैं बचपन से ही खूब हिन्दुस्तानी गान सुनता आया हूँ । इससे अधिक क्या कहूँ ? इसका महत्व और माधुर्य पूर्ण हृदय से स्वीकार करता हूँ । सुन्दर हिन्दुस्तानी गान मुझे गंभीर भाव से मुग्ध करता है ।......।"[3] ब्रजबुली ने गुरुदेव को इतना मोहित किया कि उन्होंने "भानुसिंह ठाकुरेर पदावली" ब्रजबुली में ही लिखी । "गुरुदेव ने सूरदास पर भी कविता लिखी है । तुलसीदास की रामायण और विनय पत्रिका की ओर भी उनका आकर्षण रहा है । तुलसीदास जी पर भी कविता लिखी है [स्वामीलाभ, कथा ओ काहिनी] । भक्तमाल से भी एक दो कथानक लिये है । राजस्थानी साहित्य के प्रति उनका प्रेम रहा है ।"[4] [1. सूरदासेर प्रार्थना]

- -

1. हिंदी साहित्य: युग और प्रवृत्तियां -डा० शिवकुमार शर्मा, पृ. 420/421
2. "बंगला पर हिंदी का प्रभाव" -डा० ब्रह्मानंद -पृ. 275
3. "रवीन्द्र संगीत" -शान्तिदेव घोष, पृ. 39-बंगला पर हिंदी का प्रभाव" डा० ब्रह्मानंद, पृ. 277 से उद्धृत
4. बंगला पर हिंदी का प्रभाव - डा० ब्रह्मानंद - पृ. 316

छायावाद युग :

आधुनिक हिंदी साहित्य के तृतीय युग को छायावाद युग के नाम से अभिहित किया गया है । छायावाद साहित्यिक दृष्टि से सर्वांगीण विकास का काल रहा जो हृदय की मुक्तावस्था को अभिव्यक्त करने में भक्तिकाल की बराबरी करने का सामर्थ्य रखता है तथा कौशिकता एवं कलात्मकता में रीतिकाल को पीछे छोड़ कर आगे बढ़ जाता है । आधुनिक हिंदी साहित्य का भारतेन्दु काल में यदि बीजवपन हुआ, द्विवेदी काल में यदि पल्लवन हुआ तो छायावाद या स्वच्छन्दतावादी युग में इसका सम्पूर्ण विकास हुआ कई लोग हिंदी छायावादी कविता को पाश्चात्य या बंगला काव्य की अनुकृति मानते है । यह वही दौर था जब रवीन्द्रनाथ को गीतांजली के लिए नोबेल पुरस्कार मिला था । फिर क्या था, सारे भारत का साहित्य रवीन्द्रनाथ से प्रभावित होने लगा । कविगण गुरुदेव की शैली का अनुकरण करने लगे । गुरुदेव के काव्य की प्रतिच्छाया हिंदी कवि गोष्ठी की रचनाओं पर भी पड़ी ।(तभी यह छायावाद कहलायी, यह कुछ विद्वानों का मत है) आधुनिक हिंदी तथा बंगला साहित्य के आलोचकों ने "स्वच्छन्दतावाद" का विवेचन अंग्रेजी रोमान्टिसिज्म के हिंदी प्रतिशब्द के रूप में किया है ।"[1] रोमांटिसिज्म की तीनों प्रमुख प्रवृत्तियाँ - आध्यात्मिक स्तर का प्रकृति प्रेम, मानवतावाद एवं काव्य की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति प्रणाली) को ही बंगला व हिंदी साहित्य ने अपना लिया था । "रोमान्टिसिज्म का यह प्रभाव कुछ तो प्रत्यक्ष था और कुछ रवीन्द्रनाथ ठाकुर के माध्यम से आया ।"[2]

---

1. "आधुनिक हिंदी साहित्ये बांग्लार स्थान" -आधुनिक हिंदी काव्य साहित्ये बांग्लार प्रभाव -पृ. 78/79
2. आधुनिक हिंदी तथा बंगला काव्यशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन" - इन्द्रनाथ चौधरी -पृ. 468

प्रारंभिक अवस्था में रोमांटिक या स्वच्छन्दतावादी को परिभाषित करने में अनेक भ्रांतियों का शिकार होना पड़ा । परन्तु बाद में यह कहा गया कि जो कवि क्लासिकल या अभिजातवादी नहीं है वही स्वच्छन्दतावादी है । दूसरे शब्दों में "1789 ई॰ में ब्लेक की कविता "सांग आफ इनोसेन्स" से लेकर जिस ढंग की कविता लिखी जाने लगी और जो धारा कीट्स तथा शेली की मृत्यु पर समाप्त हो गयी उसी धारा को स्वच्छन्दतावादी कहते हैं ।[1] "रोमांटिसिज्म" के प्रमुख आधार दो है - संवेदनशील आवेग (Sharpened Sensibilities) तथा तीव्र कल्पना (Heightened imaginative feeling) तथा तीन विशेषतायें है - रहस्य की गूढानुभूति (the subtle sense of mystery) प्रकृति के साथ तादात्म्य के आधार पर श्रद्धा, विस्मय तथा सौंदर्य की अनुभूति के प्रसार से उत्पन्न तीव्र बौद्धिक जिज्ञासा (an exuberant intellectual curiosity gives an increased sense of awe wonder and beauty) तथा सहजात सरल जीवन का तत्व (an instinct for the elemental simplicities of life) 1

आधुनिक हिंदी और बंगला साहित्य की स्वच्छन्दतावादी कविता में भी रोमान्टिसिज्म के आधारभूत तत्व संवेदनशील आवेग व उद्दाम कल्पना तो विद्यमान है ही साथ ही उसकी तीन विशेषतायें भी समाहित हो गयी है । फिर भी भारत की स्वच्छन्दतावादी कवितायें पूरी तरह मौलिक लगती है, उनमें शैलीगत अनुकरण करने पर भी कहीं से कृत्रिमता नहीं आई क्योंकि भारतीय परिवेश में, भारत के जीवन दर्शन का वहाँ उपयुक्त चित्रण

- -

1. "रोमांटिसिज्म" हिंदी साहित्य कोश में रामचन्द्र प्रसाद, पृ॰ 676

2. 'A History of English Literature - A.Crompton Rickett 40291 - 293.

हुआ है । "रवीन्द्रनाथ की बहुत सी कविताएं स्वच्छन्दतावादी कविता कही जाती है और उन कविताओं में इस वाद के सारे तत्वों की अभिव्यंजना के साथ ही विराट तत्व की भी अभिव्यंजना दिखाई पड़ती है। कवि मानों बार बार हमें यह कह रहा है कि आगे बढ़ते चलो - इस जीवन से परे एक ऐसा जीवन है जहाँ केवल मधु ही मधु है - उसे ही पाने के लिए आगे बढ़ो । यह आनन्दवाद भारत के स्वच्छन्दवादी कवियों की विशेष निधि है । जिसका आस्वाद पाश्चात्य स्वच्छन्दतावादी कवियों की कविता में नहीं प्राप्त होता है ।"[1]

रवीन्द्रनाथ के काव्य का प्रभाव हिंदी के छायावादी कवियों पर पड़ा । इसमें कोई सन्देह नहीं है । केवल भाव या विषय का ही नहीं बल्कि, छन्दों के भी अनुकरण हुए । जैसे खेया, नाविक, रजनीगंधा पूर्णिमा, अस्ताचल आदि । रवीन्द्रनाथ के अनुगामी हिंदी के कवियों ने कुछ छन्दों को भी अपने साहित्य में स्थान दिया । जैसे -

<u>मिश्रवृत्त : बलाका या स्वर छन्द :</u>

रवीन्द्रनाथ ने बलाका काव्य ग्रंथ में जिस छन्द का प्रयोग किया उसे बलाका छन्द कहा गया । बंगला के अलावा उड़िया व हिंदी जैसी भाषाओं में भी इस छन्द ने प्रतिष्ठा पाई व काफी मौके प्रिय हुई । हिंदी में निराला तथा अन्य कवियों ने इस छन्द का प्रयोग किया ।

- -

1. आधुनिक हिंदी तथा बंगला काव्य शिल्प का तुलनात्मक अध्ययन - इन्द्रनाथ चौधुरी - पृ० 478

मिलहीन छन्द :

"मिलहीन" अथवा अतुकान्त छन्द को "गद्य छन्द" भी कह सकते है । वाल्ट व्हीट्मेन ने सर्वप्रथम "लीव्स आफ ग्रास" में इसका प्रयोग किया था । बंगला में इस छन्द के प्रवर्तक राजकृष्ण थे तथा इसका प्रचलन करने का श्रेय रवीन्द्रनाथ को है । इस गद्य कविता में सिद्धहस्त रवीन्द्रनाथ ने गीतांजली की रचना की । इस दिशा में हिंदी में निराला ने महत्वपूर्ण कार्य किया ।

स्वच्छन्दतावाद के श्रेष्ठ कवि जयशंकर प्रसाद पर रवीन्द्रनाथ का प्रभाव स्पष्ट है । भाषा के क्षेत्र में रवीन्द्र जी की कोमल कान्त पदावली को अपनानेमें प्रसाद ने जरा भी आनाकानी न की । विषय वस्तु की दृष्टि से भगवान एवं भक्त के "मैं" "तुम" सम्बोधन से रची गई प्रेम कविता के पीछे सूफी दर्शन होते हुए भी मूलत: छायावादी कवि रवीन्द्र से प्रभावित थे । फिर भी प्रसाद की मौलिकता में रवीन्द्र का प्रभाव कहीं भी बाधक नहीं । विशेष कर "झरना", "आंसू", "लहर" जैसी कविताओं में प्रसाद की अपनी मौलिकता है । केवल एक आध स्थान पर वे रवीन्द्र के द्वारा व्यवहृत शब्दावली से प्रभावित दिखाई देते है जैसे -

प्रसाद का - "आज इस यौवन के माधवी कुंज में कोकिल बोल रहा"

रवीन्द्रनाथ के इन पदावलियों से मिलती जुलती है -

"मम यौवन निकुंजे गाहे पाखी, सखी जागे ।"[1]

"लहर" काव्य ग्रंथ में प्रसाद जी कहते हैं - "बीती विभावरी जाग री" और रवीन्द्रनाथ कहते हैं - "आहा जागि पोहालो विभावरी" -यद्यपि

---

1. आधुनिक हिंदी साहित्य बांगला स्थान - पृ. 83

विषय वस्तु पृथक है, परन्तु बंगला की ध्वनि से यह हिंदी कविता प्रभावित लगती है ।

"लहर" काव्य ग्रंथ में "प्रलय की छाया" कविता में प्रसाद जी की यह कविता भाव एवं भाषा की दृष्टि से रवीन्द्रनाथ से प्रभावित लगती है -

प्रसाद - "पागल हुई मैं अपनी ही गन्ध से
कस्तूरी मृग जैसी ।"

रवीन्द्र - "पागल हइया बोने बोने फिरि आपन गन्धे मम
कस्तुरी मृग सम "[2]

सुमित्रानंदन पंत :

सुमित्रानंदन पंत स्वयं गुरुदेव के अनन्य भक्त थे । नगेन्द्र जी ने सुमित्रानन्दन पंत संबंधी आलोचना के प्रसंग में कहा था कि पंत जी ने अपने विद्यार्थी जीवन में वाराणसी में बंगला सीखकर रवीन्द्रनाथ के "बलाका", "गीतांजली" जैसे काव्यों का पाठ किया तथा रवीन्द्रनाथ के "अन्तर मम विकसित कर" कविता के आधार पर "मम जीवन के प्रमुदित प्रांगण" कविता की रचना की ।

वैसे पन्त पर अंतर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय स्तर के कई कवियों का प्रभाव पड़ा है । "पल्लव" काव्य ग्रंथके रचना काल में अपना मानसिक अवस्था का विश्लेषण करते हुए कवि स्वयं कहते हैं -

"पल्लव काल में मैं उन्नीसवी सदी के अंग्रेजी कवियों - मुख्यत: शैली, वर्ड्सवर्थ, कीट्स और टेनिसन से विशेष रूप से प्रभावित रहा हूँ, क्योंकि इन

---

1. आधुनिक हिंदी साहित्ये बांगलार स्थान - पृ. 8.

कवियों ने मुझे मशीन युग का सौंदर्य बोध और मध्य वर्गीय संस्कृति का जीवन स्वप्न दिया है। रवि बाबू ने भी भारत की आत्मा को पश्चिम की मशीन युग की सौंदर्य कल्पना ही में परिधानित किया है। पूर्व और पश्चिम का मेल उनके युग का स्लोगान भी रहा है। इस प्रकार मैं रवीन्द्र की प्रतिभा के गहरे प्रभाव को भी कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करता हूँ।"[1]

रवीन्द्रनाथ के संबंध में पन्त जी का कहना है - "कवीन्द्र रवीन्द्र अपनी रचनाओं में सामन्त युग के समस्त कला वैभव का नवीन रूप से उपयोग कर सके हैं। उन से परिपूर्ण, कलात्मक संगीतमय, भाव प्रवण और दार्शनिक कवि एवं साहित्य स्रष्टा शताब्दियों तक दूसरा कोई हो सकता है इसके लिए ऐतिहासिक कारण भी नहीं है।[2]

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला :

आधुनिक हिंदी साहित्य के नये कवियों में निराला का स्थान अद्वितीय रहा है। निराला पर बंगला देश, भाषा व साहित्य का प्रभाव प्रत्यक्ष है। उन्हीं के शब्दों में, "मैं कलकत्ता और बंगाल में उम्र के बत्तीस साल तक रह चुका हूँ और कलकत्ता में आधुनिक भावना के किसी आकार से अपरिचित रहने की किसी के लिए वजह न होगा। अगर वह अपने काम से ही काम न रखकर परिचय भी करना चाहता है। पूर्व बचपन के औरों की तरह मैं भी निष्काम था, इसलिए सब प्रकार के सौन्दर्यों को देखने और उनसे परिचित होने के सिवा मेरे अन्दर दूसरी कोई प्रेरणा - ही न

- -

1. आधुनिक हिंदी साहित्य का विकास पथ - पृ. 83 से उद्धृत
2. आधुनिक कवि : भूमिका : पृ. 74

उठती थी। क्रमशः ये संस्कार बन गये...अन्त में ये मेरे अपने संस्कार बन गये। ये मेरे साहित्य में प्रतिफलित हुए।"[1] निराला जी ने चूँकि बंगला संस्कृति को भी ग्रहण किया था अतः उन्होंने अपने साहित्य में विवेकानन्द और परमहंस को भी स्मरण किया है। यथा - "नये पत्ते" ग्रंथ में "युगावतार परमहंस श्री रामकृष्णदेव के प्रति" कविता में उन्होंने परमहंस की वंदना की। विवेकानन्द जी का उल्लेख किया। अपनी कविता "कैलास में शरत" में उन्हें "सन्यासी श्रेष्ठ विवेकानन्द जी" कहा। विवेकानन्द जी विरचित अंग्रेजी कविता "चौथी जुलाई के प्रति" तथा "काली माता" का निराला जी ने हिंदी में अनुवाद किया।

रवीन्द्रनाथ का प्रत्यक्ष - अप्रत्यक्ष प्रभाव निराला जी के साहित्य में है। निराला काव्य में रवीन्द्र काल की प्रतिक्रिया भी है जैसे छत्रोत्सव, रानी और कानी आदि कविताओं में। अतः उसका सही सही मूल्यांकन करने के लिए तटस्थता और निरपेक्षता अपेक्षित है।

निराला जी की कविता किस कदर रवीन्द्रजी की कविता से मेल खाती है, इसे कुछ उदाहरणों से देखा जा सकता है -

निराला जी "एक स्वप्न तम का नयनों में
छिपा रही मृदु-दृग सपनों में।"

रवीन्द्र जी एकटि स्वप्न मुग्ध सजल नयने
एकटि पद्म हृदय वृन्त शयने।"[2]

- -

1. आधुनि० हिंदी साहित्ये बांग्लार स्थान - पृ० 95 से उद्धृत
2. -वही- पृ० 98

निराला जी — फिर उनके मानस सिंहासन पर
अपने चारु चरणद्वय रख कर" - गीतिका 74

रवीन्द्रनाथ — विकसित विश्ववासनार
अरविन्द माझखाने पाद पद्म रेखे तोमार
अति लघु भार ।"[1]

रवीन्द्र से प्रभावित निराला जी की गद्य कविता -

"आज ठण्डक अधिक है ।
बाहर ओले पड़ चुके है ।
एक हफ्ते पहले पाला पड़ा था
अरहर कुल की कुल मर चुकी थी ।"[2]

गद्य कविता का आभास युक्त अनुत्यानुप्रास विहीन स्पन्दनयुक्त छंद बंगला में रवीन्द्रनाथ ने जिस तरह प्रयोग किया । उसी तरह हिंदी में निराला ने भी प्रयुक्त किया है ।

बंगला में -

रवीन्द्रनाथ — "ऐरावती/नदी तीरे/विनोदेर/ग्राम
तारि देओ/येर मेये/
अभागार/माये तार/विवाहेर/दिन छिल/ठीक ।"

हिंदी में -

निराला जी — दूर तक/हरियाली/ज्वार की/अरहर की/
सन मूंग/उड़द और

- -

1. आधुनिक हिंदी साहित्ये बांग्लार स्थान - पृ. 98
2. -वही- पृ. 104

धानों के/हरे खेत/
दूर के पहाड़ों/और धानी/नीलिमा ।"[1]

आधुनिक हिंदी साहित्य का यह तृतीय युग था । इसे आधुनिक साहित्यिक दृष्टि से यौवन काल कहा जा सकता है । इस युग में साहित्य की प्रत्येक विधा विकसित हुई चाहे वह काव्य में छायावादी वृहत्त्रयी (पंत-प्रसाद - निराला) के रूप में हो, कथा साहित्य में प्रेमचन्द के द्वारा या आलोचना व निबंध के क्षेत्र में आचार्य शुक्ल के द्वारा हो ।

छायावादोत्तर युग :

"हिंदी में छायावादी काव्य के विरोध में और बंगला में रवीन्द्र के काव्यादर्श के विरोध में जो नवीन ढंग की कवितायें, इस शताब्दी के तृतीय तथा चतुर्थ दशक में लिखी गयी । उन कविताओं को ही प्रगतिवाद का नाम दिया गया है । काव्य में प्रगति का सामान्य अर्थ है जीवन को गतिमय बनाने वाला काव्य परन्तु हिंदी और बंगला काव्य की इस आधुनिकवाद का प्रगति का और ही अर्थ है । इस वाद का आधार है मार्क्सवाद । इस संबंध में हिंदी और बंगला के आलोचक एक मत है कि प्रगति के नाम पर तृतीय तथा चतुर्थ दशक में जो कवितायें लिखी जाने लगी थी । उनका आधार मार्क्स का सिद्धांत था जिसे द्वंद्वात्मक भौतिकवाद कहते है ।"[2] प्रगतिवादी साहित्य चूँकि मार्क्सवाद से प्रभावित है, अतः इसमें दलित एवं पीड़ित वर्ग के प्रति सहानुभूति एवं उनकी दीन-हीन दशा के यथार्थवादी चित्रण को अधिक मान्यता दी गई है । दूसरे शब्दों में सामन्तशाही का विरोध, शोषक के खिलाफ आवाज उठाना, उत्थान

---

1. आधुनिक हिंदी साहित्य बागमार रतन - पृ. 104
2. आधुनिक हिंदी तथा बंगला काव्यशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन - इन्द्रनाथ चौधुरी - पृ. 486

का वास्तविक रूप में चित्रण, लोकार्थिक समस्याओं को अपनी रचनाओं में स्थान देना, नारी को युगों युगों के बन्धन से मुक्त करवाने का सफल प्रयास करना, मानवतावाद आदि विचारों को अलंकार विहीन मुक्त छंद में सरल व व्यंग्यात्मक ढंग से अभिव्यक्त करना ही प्रगतिवादी काव्य का ध्येय था । "बंगला के रविभूषण ने भी यही बात कही है कि प्रगतिवादी शिल्पी या साहित्यकगण मोटेतौर पर मार्क्स पंथी शिल्पी या लेखक हैं । रवीन्द्रनाथ के शिल्प दर्शन के साथ इन प्रगतिवादी लेखकों के दर्शन का पार्थक्य वस्तुत: परस्पर विरोधी जीवन दर्शन का पार्थक्य है । रवीन्द्रनाथ का शिल्प दर्शन उनके जीवन दर्शन पर प्रतिष्ठित है और प्रगतिवादी शिल्प दर्शन मार्क्स दर्शन पर प्रतिष्ठित है ।"[1]

हिंदी व बंगला के प्रगतिवादी काव्य साहित्य में क्रमत: तीन विषयों का प्राधान्य है - आदर्शमूलक मानवतावाद, सामाजिक यथार्थवाद तथा साम्यवाद । इन तीन व विषयों को देखकर स्मरण हो आता है उनके पिछले युग व उनके युग प्रवर्तकों का । आदर्शमूलक मानवतावाद व सामाजिक यथार्थवाद की अभिव्यक्ति प्रेमचन्द तथा रवीन्द्रनाथ के कथा साहित्य में स्पष्ट दृष्टव्य है, वहाँ साम्यवाद भी है परन्तु सम्पूर्ण भारतीय परिवेश में परन्तु प्रगतिवाद में अंतर्राष्ट्रीयता की भावना अधिक है । सामाजिक परिवेश

- -

1. आधुनिक हिंदी तथा बंगला साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन -
   "ताई प्रगतिवादी शिल्पी एवं साहित्यिकगण स्थूलेन मोटामुटि भावे मार्क्स पंथी शिल्पी एवं लेखकगण रवीन्द्रनाथेर शिल्प दर्शनेर सहित एइ प्रगतिवादी शिल्पी ओ लेखक गणेर शिल्प दर्शनेर जे पार्थक्य, ताहाके तारा दृष्टि परस्पर विरोधी जीवनदर्शनेर मौलिक पार्थक्य रवीन्द्रनाथेर शिल्प दर्शन योहेतु प्रतिष्ठित ताहार जीवन दर्शनेर उपरे, प्रगतिवादी शिल्प दर्शन तेमनइ प्रतिष्ठित मार्क्सदर्शनेर उपरे." "शिल्प लिपि", पृ. 93 इन्द्रनाथ चौधरी - पृ. 487 से उद्धृत

व परिस्थिति भारतीय ही रही है। संयोग से "भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ" के प्रथम दो अधिवेशनों के सभापति प्रेमचन्द तथा रवीन्द्रनाथ रहे। भारत में प्रगतिवाद का प्राथमिक उद्देश्य आदर्शोन्मुख यथार्थवाद तथा मानवतावाद का ही प्रचार था। यद्यपि प्रगतिवाद का यह प्राथमिक रूप था परन्तु बाद में इन्हीं प्रगतिवादी लेखकों ने पन्त व रवीन्द्र के आदर्शोन्मुख विचारधारा के स्थान पर विशुद्ध मार्क्सवादी विचार को ही वस्तु विषय बनाया।

"इस शताब्दी के चतुर्थ दशक से हिंदी में जो कविताएं लिखी जाने लगी है उन्हें विद्वानों ने प्रयोगवादी कहा है और चतुर्थ दशक से लिखी जाने वाली बंगला कविताओं को "आधुनिक कविता" कहा गया है।"[2]

नई कविता :

"नई कविता के हिंदी तथा बंगला कवि मुख्यतः पाश्चात्य कवियों से प्रभावित हैं तथा उपकरणों के रूप में इन्होंने आधुनिक जीवन के संत्रास, क्लांति तथा वितृष्णा को अपनाया है।"[3] शब्दों के प्रति पक्षपात करते हुए आज के इस क्लिष्ट जीवन के कारण जो मानसिक जटिलताएं समुत्पन्न होती है उसी को काव्य के रूप में अर्थात्मक रूप देना ही इस युग के कवियों का नयापन था। "विश्व युद्ध, साम्यवाद, फासिज्म आदि राजनीति की अनेक विचार धाराओं का समागम, रेडियो द्वारा जगत की घटनाओं का प्रत्येक स्थान पर प्रकाशन, समाचार पत्रों का प्रचार आदि। इसने हमारे जीवन को जटिल रूप प्रदान किया है। विश्व   के अन्त

- -

1. आधुनिक हिंदी तथा बंगला काव्यशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन - इन्द्रनाथ चौधुरी - पृ. 488
2. -वही- पृ. 497
3. -वही- पृ. 498

साहित्य के अनुरूप आधुनिक हिंदी और बंगला के काव्यों पर भी जीवन की इस जटिलता का प्रभाव पड़ा है ।

नई कविता के कवियों की भाषा व शैली में भी काफी अन्तर आया - कारण अंग्रेजी बिम्बवादी व फ्रांस के संकेतवादियों का भी प्रभाव था । "...... एक ओर ये कवि आत्मपरक चित्रकला तथा अतिबुद्धिवादी कवि जैसे इलियट, स्पेंडर, आडेन, पाउंड तथा हुर्नर से प्रभावित हुए हैं वहां दूसरी ओर स्टिवेल आदि कवियों की स्वप्न पद्धति तथा यौन प्रतीकों से भी प्रभावित हुए हैं ।"[1]

"नई कविता के आलोचकों में उल्लेखनीय हैं नगेन्द्र, नन्द दुलारे वाजपेयी, लक्ष्मीकांत वर्मा, अज्ञेय, रवीन्द्रनाथ मोहितलाल मजूमदार, नीलनीकान्त गुप्त आदि । यहां भी दो वर्ग है - पहला नई कविता के पक्ष में और दूसरा उसके विपक्ष में । विरोधी आलोचकों में नगेन्द्र, वाजपेयी, शशिभूषण दास गुप्त आदि विद्वानों ने काव्य के चिरन्तन तत्वों के आधार पर नयी कविता की विशेषताओं का और अज्ञेय आदि विद्वानों के मतामतों का खंडन किया है ।"[2]

समय की दृष्टि से वैज्ञानिक पद्धति में काव्य रचना का सूत्रपात यद्यपि बंगाल के में पहले हुआ परन्तु प्रयोगवादी आलोचना का इतना अधिक प्रचार व प्रसार हुआ कि हिंदी आलोचना की श्री वृद्धि में और कुछ नहीं तो उसकी

- -

1· आधुनिक हिंदी तथा बंगला काव्यशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन - इन्द्रनाथ चौधुरी - पृ· 504

2· -वही- पृ· 507

... परिधि का विस्तार अवश्य हुआ है । बंगला काव्यशास्त्र में प्रयोगवादी आलोचना की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक आलोचना पर अधिक जोर दिया गया । इस दृष्टि से बंगला काव्यशास्त्र में भावमयता अधिक है (जो काव्य का सबसे प्रमुख गुण है), तो हिंदी में वैज्ञानिकता ।

निष्कर्ष :

हिंदी व बंगला दोनों भाषाओं के साहित्य का अति संक्षेप में मूल्यांकन करने के पश्चात वाल्ट व्हिटमैन की भाषा-संबंधी वह परिभाषा स्मरण हो आती है जहां वे कहते हैं --"भाषा विद्वानों द्वारा रचित कोशकारों द्वारा निर्मित सूक्ष्म रचना नहीं है, अपितु मानवों की कई पीढ़ियों के कार्यों, आवश्यकताओं, सम्बन्धों, स्नेह बंधनों, रुचियों से स्वतः उत्पन्न रचना है और इसका आधार बड़ा विस्तृत तथा निम्न है, धरती के निकट है ।"[1]

---

1. "हिंदी शिक्षण" -श्रीमती पुष्पावती हुम्मल और श्यामजी गोकुल वर्मा - पृ. 2

अध्याय - 3

3. पुनर्जागरण का बंगला और हिंदी साहित्य पर प्रभाव

अध्याय - 3

3.1 पुनर्जागरण का बंगला और हिंदी साहित्य पर प्रभाव

प्रस्तावना :

इस धरती के विशाल भू-भाग में असंख्य मानव रहते हैं। चाहे उनका कोई भी वंश, कबीला, रंग-रूप, संप्रदाय, जाति, राष्ट्र आदि क्यों न हो, जीव विज्ञान की दृष्टि से सभी एक से स्तनपायी हैं। अत: मानव जाति में एकता की भावना का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। मानव अपनी भावनाओं को वाणी द्वारा मूर्त रूप दे सकता है। सोचने वाला मस्तिष्क तथा प्रेम व दया भाव रखने वाला हृदय भी सभी मानवों में होता है। कुदरत ने अन्य प्राणियों से भिन्न सहानुभूति व तर्क की कलाएं मानव को वरदान के रूप में दी हैं जिससे वह दूसरे जीवों से एक पहचान कायम कर सका है। संसार के मानवों को इन अनेक परिधियों में फिर

पाते हैं। वे परिधियाँ हैं - परिवार और सम्बन्धियों की परिधि, राज्य तथा राष्ट्र की परिधि तथा विश्व परिधि। ये परिधियाँ मानव चेतना को प्रभावित करती हैं। परिवार व्यवस्था में मानव को प्रेम व कर्त्तव्य की प्राथमिक शिक्षा मिलती है। वह स्वार्थी भी बन सकता है। परिवार तथा सगे संबंधियों के साथ ही मनुष्य अपने आस - पड़ोस, ग्राम, कस्बे या नगर के लोगों से भी स्नेह व सौहार्द का संबंध स्थापित करता है। भौगोलिक दूरी और दुर्गमता के कारण सभ्यता और संस्कृतियों का अलग - अलग विकास हुआ और भाषाओं, जातीय भावनाओं, रीति - रिवाजों, कायदे कानूनों आदि का भी।

भारत में भाषा की विविधता के संबंध में प्रसिद्ध भाषा शास्त्री डा0 सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने बताया था कि, "1937 तक भारत एवं बर्मा [जो राजनीति के क्षेत्र में एक था] की सभी भाषा व बोलियों को अत्यन्त सतर्क भाव से भी यदि वर्गीकृत किया जाय जैसे कि लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया में दिया गया है, तो उनकी संख्या होगी 179 भाषाएँ एवं 544 बोलियाँ।"[1] यह संख्या सचमुच आश्चर्यचकित कर देने वाली है। परन्तु बात जब केवल महत्वपूर्ण साहित्यिक भाषाओं की हो तब भी भारत में कम से कम दो दर्जन ऐसी भाषाएँ प्रस्तुत हैं। पूरबी, उत्तरी, पश्चिमी और मध्य भारत की अधिकांश भाषाओं

- -

1." The meticulous and all inclusi e classifi tion f languages and diale ts curre t in I ia and ur a (which until 1937, w e politically a part of I ia as iven . the Linguistic survey of India, encus a total num r of 179 languages and 544 dialects". - The ition Fare ounty and India ena.e ance-!., ... P e 160.

के लिए संस्कृत भाषा ही स्रोत भाषा थी । अरबी - फारसी और अंग्रेजी का प्रभाव आधुनिक युग की सभी भारतीय भाषाओं पर देखा जा सकता है ।

आमतौर पर माना जाता है कि भारत में यूरोपीय मस्तिष्क से संपर्क की शुरूआत सर्वप्रथम बंगाल से हुई तथा उन्नीसवीं सदी के मध्य तक पहुंचते - पहुंचते बंगला साहित्य में नवीनता के लक्षण दिखाई देने लगा । साहित्य की विभिन्न विधाओं का विकास होने लगा । भारत की अन्य भाषाओं के साहित्य का भी रूप रंग इस समय बदलने लगा । अनुवाद के माध्यम से भारत के विश्व स्तर के साहित्यादि से विश्व के दूसरे देशों का साहित्य संपृक्त होने लगा । हम कह सकते है कि बीसवीं सदी का समय राष्ट्र की परिधि से निकलकर विश्व की परिधि की ओर चलने का है । यूरोपीय साहित्य के संपर्क में बंगला के मधुसूदन दत्त जैसे कवि आये थे । मगर अपनी परम्परा में भी उनकी गहरी पैठ थी । बंकिमचन्द्र एवं रवीन्द्रनाथ भी ऐसे ही रचनाकार थे जिनकी संस्कृत और अंग्रेजी दोनों ही साहित्यों में समान गति थी । इस समय भारतीय साहित्य को अपनी समृद्ध परम्परा और खुली दृष्टि से उत्साह व प्रेरणा मिली थी तथा साहित्य की प्रगति का मार्ग और भी प्रशस्त हुआ ।

नवजागरण के संदर्भ में बंगाल :

आधुनिक भारत में नवजागरण का आरंभ प्रत्येक क्षेत्र में लगभग एक ही शताब्दी में हुआ । परन्तु, यदि यह प्रश्न किया जाए कि

आधुनिक भारत के नवजागरण की आदिम रेखाएँ कहाँ से प्रारंभ होती है तो सबसे पहले बंगाल का नाम लेना चाहिए । भारत में अंग्रेजी शासन व्यवस्था के दरम्यान आम जनता परिवर्तन की बेचैनी महसूस कर रही थी । जनता की विचारधारा प्रायः जीवन के सभी क्षेत्रों में बदलने लगी थी । पुराने दकियानूसी विचारों से मुक्त होने का प्रयास करने लगी थी । राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक आदि क्षेत्रों में भारतीय जनता के दृष्टिकोण में परिवर्तन दिखाई देने लगा और एक नवीन जागृति पैदा होने लगी । अंग्रेजों से संयुक्त होने के बावजूद भारत का इतिहास मध्य युग से आधुनिक युग में पहुँच गयी ।[1] एक प्रकार से विचारकों का मत है कि आधुनिकता का संबंध अंग्रेजी शिक्षा के संपर्क से है और यह आधुनिकता सबसे पहले बंगाल में दिखाई देती है क्योंकि अंग्रेजी साम्राज्य विस्तार से प्रवेश द्वार होने के कारण अंग्रेज लम्बे समय तक बंगालमें शासन चलाते रहे । रामधारी सिंह दिनकर ने तो यहाँ तक कहा कि, "नवीन भारत में हम जो कुछ देख रहे हैं, वह एक दिन इसी की भूमि की कुक्षि से उत्पन्न हुआ था । बंगाल भारत का पूर्व द्वार है और कोई आश्चर्य नहीं कि हमारे नव युग के सूर्य का उदय प्रतीच्य क्षितिज से हुआ ।

---

1. डा० रामविलास शर्मा भक्ति काल में पुनर्जागरण को देखते हैं और वहाँ से भारत में आधुनिकता का शुरुआत मानने की सिफारिश करते हैं । उनके इस प्रस्ताव को सहज में ही टालना कठिन है ।

भारत के रोम - रोम पर बंग क्षुधता का दूर है ।"[1] इस संदर्भ में सर जदुनाथ सरकार की इन बातों से इस मतवाद के पोषकों के विचारों का स्पष्टीकरण होता है - "If Periclean Athens was the school of Hellas, the eye of Greece, mother of arts and eloquence, that was Bengal to the rest of India under British rule, but with a borrowed light which it had made its own with marvellous cunning. In this new Bengal originated every good and great thing of the modern world that passed on to the other provinces of India. From Bengal went forth the English educated teachers and the Europe inspired thought that helped to modernise Bihar and Orissa, Hindustan and Deccan. New literary types, reform of the language, social reconstruction, political aspirations, religious movements and even changes in manners that originated in Bengal, passed like ripples from a central eddy, across provincial barriers, to the farthest corners of India"[2]

ऐसे इतिहासकार हर अच्छी बात का श्रेय तर्कातीत ढंग से अंग्रेजों को देते हैं क्योंकि अंग्रेजों के शोषण और दमन की मारकीय स्थितियों ने भारतीयों को पीछे धकेलने में कोई कोर कसर नहीं रखी, इस बात पर पर्दा डाल देते हैं। सर जदुनाथ सरकार जैसे लोग अंग्रेजी

- -

1. "राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता" - रामधारी सिंह दिनकर, पृ॰ 30 [नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002]

2. History of Bengal - Edited by Sir Jadunath Sarkar - Page 49..

शिक्षा पद्धति के परिणामस्वरूप नौकरी पाने वाले लोगों को मानों नवजागरण का अग्रदूत बताना चाहते है । माइकेल मधुसूदन दत्त, बंकिमचंद्र और बाद में रवीन्द्रनाथ जैसे लोगों ने साहित्य में क्रांति इसलिए नहीं कि वे अंग्रेजीदाँ थे बल्कि इसलिए कि उन्हें बंगला और संस्कृत साहित्य का व्यापक और गहरा ज्ञान था । जदुनाथ सरकार तो भारतीयों की राजनीतिक आकांक्षाओं का श्रेय भी अंग्रेजों को देते है जो पूरी तरह हास्यास्पद है । 1857 में जिस भारतीय राजनीतिक आकांक्षा की अभिव्यक्ति हुई थी क्या उसमें प्रेरक अंग्रेज थे ? सामाजिक और धार्मिक सुधार के क्षेत्रों में महाराष्ट्र, पंजाब से लेकर बंगाल तक जो लोग काम कर रहे थे ----- स्वामी दयानंद सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, राजा राममोहन राय और ईश्वरचंद्र विद्यासागर इन सभी को अंग्रेजी शासन व्यवस्था की उपज बताना हास्यास्पद है । ये लोग भारतीय समाज और धर्म व्यवस्था की जड़ों से खूब परिचित थे । सरकार जैसे लोग मानते है कि बंगाल में नवजागरण का उदय सबसे पहले हुआ, कारण वहाँ के समाज में व्याप्त धार्मिक रूढ़ियों के निवारण हेतु कार्य बहुत पहले अर्थात 19वीं सदी के प्रारंभ में ही शुरू हो चुका था । यूरोपीय सभ्यता व साहित्य से संपर्क स्थापित होने पर बंगाल में एक बुद्धिवादी वर्ग का विकास हुआ । इस बुद्धिवादी वर्ग के तर्क बुद्धिपरक दृष्टिकोण ने सामाजिक रीति-रिवाज, आचार विचार आदि में परिवर्तन लाने का प्रयास किया जिसमें उसे अधिकतर सफलता भी मिली ।

समाज सुधार : नारी उत्थान :

19वीं सदी के सभी समाज सुधारपरक कार्यों में सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि वे नारी की परंपरागत स्थिति को मद्देनजर रखते हुए भी किये गये थे। सदियों पूर्व के श्रेष्ठ हिन्दू समाज का जो क्रमशः ह्रास हुआ वह इसीलिए भी कि नारी की दशा को बदतर बना दिया गया था। इससे समाज कमजोर एवं विकृत बनता गया। हिंदू समाज में जो कुरीतियां फैली थी उनका सम्पूर्ण निराकरण यदि न भी हुआ हो तो भी उस दिशा में कोशिश 19वीं सदी में अवश्य हुई। सती प्रथा जैसे समाज के कलंक को समाप्त करने में जोर - शोर से काम किया। राजा राममोहन राय ने अपनी पत्रिका "संवाद कौमुदी" के माध्यम से सती प्रथा, बंगाल, बिहार, उड़ीसा तथा राजस्थान के कुछ क्षेत्रों में प्रचलित थी।[1] 4 दिसम्बर 1829 को अधिनियम XVII के अंतर्गत बंगाल महाप्रान्त में सती प्रथा को राजनैतिक तथा फौजदारी अदालत के द्वारा दण्डनीय घोषित किया गया।[1] मद्रास में 2 फरवरी 1830 को सती प्रथा बहिष्करण हेतु इसी प्रकार के नियम कानून बनाये गये। कतिपय क्षेत्रों में एक लज्जास्पद अपराध का रिवाज था नवजात बच्चियों की हत्या करने का। बंगाल, कच्छ, गुजरात, राजस्थान आदि के राजपूत, जाट तथा मेवाती लोग इस कुकृत्य को अक्सर दोहराते रहते थे। 1802 में अधिनियम VI के अंतर्गत इसे समूचे भारत में ही निषिद्ध कर दिया गया था। बंगाल में तो 1795 में ही अधिनियम XXI के अंतर्गत इसे हत्या का अपराध मान लिया गया

- -

1. The British Paramount and Indian Renaissance, Pt. I, By R.C. Majumdar - Page 274.

था। समाज में विधवाओं की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। विधवाओं का जीवन उपेक्षा, लाचारी और विवशता का मानो पर्याय था। सती प्रथा के बहिष्करण के उपरांत[1] हिन्दू स्त्रियों के आत्मबल की वृद्धि हुई होगी। विभिन्न मंचों से उनकी व्यथाओं एवं विडम्बनाओं को प्रस्तुत किया गया। 1837 के आस पास कलकत्ता व बम्बई में नारी समस्याओं को लेकर काफी गहमा गहमी रही। कलकत्ता में 1845 में तत्वबोधिनी सभा व धर्म सभा नामक दो संस्थाएं खोली गई। परन्तु ये कोई ज्यादा उत्साह व समर्थन नहीं जुटा सकी जिससे उन्हीं दिनों विधवा विद्रोह के समर्थन में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आगे आये। परम्परागत हिन्दू समाज को बहुत धक्का पहुंचा। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर संस्कृत के महा पंडित थे। वे कलकत्ता के संस्कृत कालेज के प्रिंसिपल थे। उन्होंने विधवा विवाह के समर्थन में कई लेख लिखे। अंग्रेजी सरकार के सम्मुख 967 विधवा विवाह कोवैध बनाये जाने के समर्थन में 967 लोगों के हस्ताक्षर समेत एक आवेदन पत्र प्रस्तुत किया। हालांकि इनके विरोध में रूढ़िवादी पार्टी ने 36,763 लोगों के दस्तखत वाला अर्जीनामा पेश किया, फिर भी "26 जुलाई, 1856 को हिन्दू विडोज रिमैरेज एक्ट के अधिनियम XV के अंतर्गत विधवाओं के पुनर्विवाह को जायज माना गया।"[2] यह सुधारवादी कार्यक्रम भारत के दूसरे हिस्सों में भी आन्दोलन की तरह चलाया गया। बंगाल में जैसे पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर सक्रिय थे उसी तरह भारत के पश्चिमी भाग में

- -

1. वैसे सती के रूप में स्त्रियों के जल मरने/या जला डालने की यदा-कदा घटनाएं बाद तक होती रही। केवल कानून बना देने से समाज की पूरी मानसिकता नहीं बदलती। अंग्रेज शासकों ने कानून को बदला, समाज को नहीं। यही बात बाद की व्यवस्था के बारे में बखोबी कही जा सकती है।

2. The British Paramount cy and Indian Renaissance-II By R.C.Majumdar - P.278

हिंदुओं में ब्राह्मन जैसे उच्च वर्ग में विधवा विवाह निषिद्ध माना जाता था हालांकि समाज के निचले वर्गों और वर्णों में विधवा विवाह प्रचलित था। समाज का यह निचला हिस्सा निस्संदेह ज्यादा बड़ा था।

विष्णु शास्त्री । बम्बई में विधवाओं के पुनर्विवाह हेतु 1866 में एक संस्था का निर्माण किया गया । 1873-74 में महाराष्ट्र में ज्योतिबा फूले ने "सत्यशोधक समाज" की स्थापना की थी । और समाज के निम्न वर्ग और वर्ण के लोगों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण ऐतिहासिक कार्य किया । उनसे प्रभावित तथा अनुयायी एन•एन•लोखंडे ने निम्न जाति के मजदूरों का आन्दोलन आरंभ किया । सत्य शोधक बहुजन किसान आन्दोलन 1882 तक पुणे, औरंगाबाद, थाना जैसे क्षेत्रों में व्यापक हो गया था । 1896 में पूना में प्रोफेसर डी•के•कर्वे ने इस दिशा में स्तुत्य प्रयास किये । पं0 वीरेशलिंग पंतुलु ने मद्रास और आंध्र प्रदेश में इस आन्दोलन का नेतृत्व किया तथा इस दुराचार को जड़ से उखाड़ फेंकने का अथक प्रयास किया । उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व स्त्री शिक्षा का व्यापक चलन नहीं था । अभिजात वर्ग की लड़कियों को जमीन जायदाद की देखभाल करने के लिए प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती थी । 1813 के चार्टर एक्ट के उपरांत ईसाई मिशनरियों को शिक्षा के क्षेत्र में काम करने की सम्पूर्ण छूट मिली । वे अपने धर्म सम्बन्धी बातों के प्रचार तथा धर्म परिवर्तन के लिए नारी शिक्षा को भी माध्यम बनाने लगी । इस उद्देश्य को लेकर मिशनरियों ने लड़कियों को पढ़ाना लिखाना शुरू किया । यहाँ केवल निम्न वर्ग की लड़कियाँ पढ़ने आती थी । 1819 में कलकत्ता में किशोरियों के लिए एक संस्था खोली गई । प्रथम वर्ष ही अस्सी छात्राएं पढ़ने लगी थी । यह वर्षों के उपरांत 160 लड़कियाँ छ: स्कूलों मेंपढ़ने लगी थी । 1934 की रिपोर्ट के अनुसार कलकत्ता व उसके आस पड़ोस में वहां की स्थानीय शिक्षित नारियों ने कुल 200 लड़कियों के पढ़ना लिखना सिखाया जिसमें भूगोल जैसा विषय भी शामिलथा । धीरे धीरे स्कूलों की संख्या बढ़कर 30 हुई

तथा छात्राओं की संख्या बढ़कर 600 हो गई थी । 1828 को श्रीमती एवं श्री विल्सन की देख - रेख में केन्द्रीय विद्यालय का उद्घाटन हुआ जिसमें पढ़ने वाली छात्राओं की संख्या 58 थी परन्तु 1834 तक संख्या 320 के करीब हो गई । एडम् के रिपोर्ट के अनुसार 1834 तक बंगाल में स्त्रियों की शिक्षा हेतु 50 से भी अधिक मिशनरी स्कूल खुल गये थे । मई 1949 में कलकत्ता में स्त्री शिक्षा हेतु जे॰ई॰डी बेथून के नाम पर स्कूल खोला गया जिसका अस्तित्व आज अत्यन्त विकसित रूप में देखने को मिलता है । बंगाल में स्त्री शिक्षा के लिए जोर शोर से काम करने वालों में सबसे प्रमुख है ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जिन्होंने नवम्बर 1857 से मई 1858 तक लगभग पचास ऐसे स्कूल खोले । बंगाल की तुलना में बम्बई की स्त्रियों का जीवन उतना उत्पीड़क नहीं था । महाराष्ट्र में स्त्रियाँ पर्दे के पीछे नहीं रहती थी । 1851 से ही बम्बई में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने वाले नवयुवकों ने स्त्री शिक्षा के लिए कई विद्यालयों की स्थापना की । 1857 में "स्त्री बोध" पत्रिका का विशेषांक निकाला गया । नवजागरण की लहर एक समान बंगाल से बम्बई अर्थात् सभी प्रांतों तक फैली हुई थी ।

धार्मिक रूढ़ियों का निराकरण एवं राजा राममोहन राय :

सामाजिक दुराचार व कुरीतियों को धार्मिक रूढ़ियाँ जन्म देती है । समाज में अनेक धार्मिक कुसंस्कारों व अनाचारों आदि के फैलने के पीछे निहित स्वार्थ वाले लोग होते है जो धर्म की गलत व्याख्या और धर्म का गलत इस्तेमाल करते है । हमारी सामाजिक, धार्मिक

व्यवस्था कई सदियों तक जीर्ण शीर्ण रही । इसका पुनरुत्थान भक्तिकाल के कवियों ने किया लेकिन इस दिशा में नये सिरे से काम करना बहुत आवश्यक था । इसका श्रेय राजा राममोहन राय को जाता है । उन्होंने अपने आप को किसी संप्रदाय या पंथ का नहीं माना बल्कि जीवन के अंतिम काल तक एक सुधारवादी हिन्दू के रूप में बने रहे । जीवन के आखरी दिन तक यज्ञोपवीत या जनेऊ को धारण किये रहे व उसे यथा योग्य सम्मान भी देते रहे । कुछ लोग समझते है कि वे हिन्दू कम एवं अंग्रेज ज्यादा थे । इसका सबसे पहला कारण था, राय द्वारा मूर्ति पूजा के खिलाफ आवाज उठाना । परन्तु उनका प्रत्येक तर्क हिन्दू शास्त्रों की पवित्र कसौटी पर खरा उतरता था । मूर्ति पूजा सम्बन्धी धारणा उनके मन में बहुत अल्प वय में ही बनी थी । उसका कारण अरबी, फारसी का अध्ययन रहा होगा जो उन्होंने पटना में किया था । इस्लामी संस्कारों, दर्शन, सूफियों की विचार धारा आदि का प्रभाव भी उन पर था जिससे वे यह सोचने के लिए बाध्य हो गए थे कि क्या ईश्वर पूजा हेतु मूर्तियों को सामने रखना जरूरी था ? इसके बाद वे हिन्दू शास्त्रों के अध्ययन में लग गये और पाया कि सभी धर्मों में ईश्वर परब्रह्म स्वरूप है, वह निराकार, अगम्य, अगोचर आदि है तभी वे मूर्ति पूजा के विरोधी बन गये व इस तथ्य के प्रचार एवं प्रसार में लग गये ।[1]

- -

1. लेकिन राममोहन राय का मूर्ति विरोधी अभियान चल नहीं पाया । श्री रामकृष्ण परमहंस और उनके शिष्य विवेकानंद ने मूर्ति पूजा और सगुण ईश्वर के पक्ष में अपने विचारों से मूर्ति पूजा विरोधियों की बोलती बन्द करा दी ।

राममोहन राय एवं ब्रह्मसमाज :

20 अगस्त, 1828 को राजा राममोहन राय ने ब्रह्मसमाज की स्थापना की, ताराचन्द चक्रवर्ती को उसका सचिव नियुक्त किया गया। परन्तु ब्रह्मसमाज को हिन्दू समाज का व्यापक समर्थन कभी नहीं मिल पाया। इसके अनेक कारणों में यह भी एक था कि ब्रह्मसमाज के अनुयायी केवल निराकारवादी एकेश्वरवादी थे। वे सामाजिक कुरीतियों का विमोचन करने के लिए सक्रिय रहते थे, जैसे सती प्रथा के खिलाफ आवाज उठाना। 1829 में ही सती प्रथा का बहिष्कार हुआ जिसका श्रेय लेने वालों में सबसे अग्रगण्य स्थान था राजा राममोहन राय का। ब्रह्मसमाज के खिलाफ "धर्म सभा" को स्थापितकिया गया। दोनों संस्थाओं ने दैनिक संवाद पत्रिकाएं निकाली जिसमें एक दूसरे कीखिंचाई कीजाती थी। राममोहन राय ने "संवाद कौमुदी" नाम से यह पत्रिका चलायी तो धर्म सभा के प्रवर्त्तक व संस्थापक राधाकान्त देव ने "सामाचार चन्द्रिका" नाम से अपनी पत्रिका चलायी। इसमें समाज के किसी भी स्तर के लोग सक्रिय रूप से हिस्सा ले सकते थे। राममोहन राय के सुधारवादी आन्दोलन को केवल बंगाल में ही नहीं बल्कि समूचे भारत में प्रचार मिला। राममोहन राय पर यह भी आरोप लगाया जाता है कि वे हिन्दू धर्म के संरक्षक से अधिक ईसाई धर्म के प्रशंसक है। कराममोहन राय का दृष्टिकोण शुध्द सुधारवादी था, धर्म जैसे संवेदनशील विषय को लेकर सकारात्मक व रचनात्मक होते तो बात कुछ और होती। वे चाहते थे कि धार्मिक रूढ़ियां घट जाए। वे इस्लाम और ईसाई धर्म से प्रभावित होकर हिन्दू धर्म में उन विशेषताओं को जोड़कर उसे श्रेष्ठ बनाना चाहते थे। हिन्दू

धर्म और संस्कृति की व्यापकता में ईसाइयत और इस्लाम के गुण पूर्व-निहित ही थे,' इसे ढूंढ निकालने में राय सक्षम रहे । रामधारी सिंह दिनकर ने "संस्कृति के चार अध्याय" में जोर देकर कहा है कि संस्कृति जितनी अधिक सामासिक होगी वह उतनी ही श्रेष्ठ होगी । यही बात धर्म के संबंध में भी उपयुक्त है । दिनकर जी का निबंध "संस्कृति है क्या ?" में इसका स्पष्टीकरण किया गया है --"सांस्कृतिक दृष्टि से वह देश और वह जाति अधिक शक्तिशालिनी और महान समझी जानी चाहिए जिसने विश्व के अधिक से अधिक देशों,' अधिक से अधिक जातियों की संस्कृतियों को अपने भीतर जज्ब करके, उन्हें पचा करके,' बड़े से बड़े समन्वय को उत्पन्न किया है । जनवरी,' 1830 को एक गिरजाघर का 500 लोगों के समक्ष उद्घाटन किया । इस चर्च के घोषणा पत्र में सर्वधर्म समन्वय पर जोर दिया गया । यद्यपि वह चर्च था परन्तु उसमें दाखिल होने वाले किसी धर्म विशेष के न होकर केवल वे ही होते थे जो ईश्वर को इस संसार के सृष्टि कर्ता माने,' जो आकार विहीन हो,' परन्तु बेनाम हो जिसका कोई प्रतीक चिह्न आदि भी न हो । 1833 में राममोहन राय की मृत्यु के बाद इस संस्था की दुरवस्था हुई ।

देवेन्द्रनाथ एवं ब्रह्मसमाज :

राममोहन राय के पश्चात ब्रह्मसमाज की बागडोर संभाली देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने । देवेन्द्रनाथ ने राम मोहन राय का पदांक अनुसरण किया तथा

- -

1.' गद्य पराग - संपादक - मनोहर प्रसाद - पृ.' 63

इस चर्च के प्रतिज्ञा पत्र में यह नियम बनाया कि चर्च में आने वाले सभी वेदांत को मानकर चलने वाले व धार्मिक जीवन अनुसरण करने वाले होंगे तथा ईश्वर की वंदना गायत्री मंत्रोच्चारण के साथ करेंगे । इस तरह देवेन्द्रनाथ ने जो ..प्रयोग किया था वह महानिर्वाण तंत्र पर आधारित था । कालांतर में इस संस्था ने राम मोहन राय के धार्मिक शोध पूर्ण लेखों को तत्वबोधिनी पत्रिका में प्रकाशित किया जिसके संपादक थे श्री अक्षयकुमार दत्त । 1845 में इस संस्था ने वेदों को इतना महत्व दिया कि ऐसा लग रहा था मानो वेदान्तवाद ही ब्रह्मसमाज का लक्ष्य हो और यह ईसाई धर्म के बिल्कुल उल्टा था । इसे संस्था के सभी सदस्य मानने को तैयार न थे । 1847 को देवेन्द्रनाथ स्वयं बनारस गये थे वेदों का अध्ययन करने, वापस आने पर उन्होंने पुनः हिन्दू शास्त्रों के गौरव का गान किया । उपनिषदों के द्वारा एकेश्वरवादिता का समर्थन किया । परन्तु वे कट्टर हिन्दूवादी न बनकर ईश्वर प्राप्ति के लिए सर्वधर्म समन्वय की साधना में विश्वास करने लगे । यह सब 1847 से 1850 के दौरान हुआ । 1850 से 1856 तक ब्रह्मसमाजमें नवीन सामाजिक आदर्शों का दौर चल रहा था । देवेन्द्रनाथ ब्रह्मवाद के आधार को पुख्ता और सशक्त बनाने के लिए नवीन सामाजिक विचारधारा को कार्यान्वित करने का प्रयास किया जिससे धर्म में रूढ़िवादिता और कट्टरता के स्थान पर तर्क और बौद्धिक तत्वों का समावेश होने लगा था । स्त्रीशिक्षा, विधवा विवाह, धर्म के क्षेत्र में सहिष्णुता, बहु विवाह का विरोध या खण्डन आदि नई बातों को अपनाकर इस पर अमल करने के लिए ब्रह्मवादी यथेष्ट प्रयत्न करने लगे । इस दिशा में सर्वप्रथम कदम बढ़ाने वाले आचार्य केशवचन्द्र सेन थे ।

केशवचन्द्र सेन एवं ब्रह्मसमाज :

केशवचन्द्र सेन रोबदार व्यक्तित्व वाले तथा प्रभावशाली वक्ता थे। वे तथा उनके अनुयायियों ने न केवल बंगाल में बल्कि बम्बई [1864 में] मद्रास [1864] में तथा अन्य पश्चिम क्षेत्रों में भी ब्रह्मसमाज के सिद्धांतों का प्रचार किया। इन्हीं सिद्धान्तों से अभिभूत होकर भारत के कई बौद्धिक केन्द्रों में भिन्न-भिन्न नामों से ब्रह्म समाजों की स्थापना हुई- जैसे बम्बई में प्रार्थना समाज तथा मद्रास में वेद समाज जो आगे चलकर ब्रह्मसमाज ही कहलाया। भारत में आधुनिक युग का यह सर्वप्रथम धार्मिक व सामाजिक आन्दोलन था। कुछ वर्षों के उपरान्त एक और बंगाली ने राजनैतिक क्षेत्र में अग्रदूत बनकर एक आन्दोलन का नेतृत्व किया। वे थे सुरेन्द्रनाथ बन्धोपाध्याय। इन्होंने राजनीतिक सुधारों पर अधिक बल दिया। केशवचन्द्र सेन कीप्रेरणा से ब्रह्मसमाज ने समाज सुधार हेतु व्यापक योजना बनायी और उसे कार्यान्वित करने का अथक प्रयास भी किया। यह प्रयास बंगाल के क्षेत्र को लांघकर समूचे भारत में फैला, इसे भारतीय नवजागरण का सशक्त कदम कहा जा सकता है। इनमें से कुछ विचारों को "भारतीय सुधार सभा" के आदर्शों में भी देखा जा सकता है। भारतीय सुधार संघ व सभा का गठन केशव चन्द्र सेन ने ही 1870 ई० में इंग्लैण्ड से लौट आने के उपरांत स्थापित किया था। नारी सुधार श्रमिक वर्गों की शिक्षा और साहित्य को सर्वजन सुलभ[1] बनाने के प्रयत्न भी किये गये हैं।

- -

1. सुलभ समाचार नामक साप्ताहिक पत्र का केवल एक पैसे में उपलब्ध करवाना।

प्रार्थना समाज :

सामाजिक स्वतंत्रता, वैयक्तिक स्वतंत्रता एवं राजनीतिक स्वतंत्रता एक दूसरे से संबंधित है और समान रूप से महत्वपूर्ण भी। स्वातंत्र्य चिंतन से जातीयता की भावना भी जाग्रत होती है। इस दिशा में यह कहना अनुचित न होगा कि केशवचन्द्र सेन भारत में जातीयता की भावना को जगाने वालों में अग्रगण्य थे। 1864 में वे बम्बई गये थे, इन्हीं से प्रभावित होकर 1867 में ब्रह्मसमाज के समान प्रार्थना समाज की स्थापना हुई। इस प्रार्थना समाज का उद्घाटन करने वाले थे - डा० आत्माराम पाण्डुरंग। इस समाज का उद्देश्य था आस्तिक या ईश्वरवादी उपासना तथा समाज सुधार। प्रार्थना समाज का प्रभाव समूचे देश में इतना व्यापक नहीं था। परन्तु आंध्र तथा मद्रास प्रांत में प्रार्थना समाज के संतुलित विचारों का काफी प्रभाव पड़ा।

आर्य समाज :

ब्रह्मसमाज की भांति धार्मिक सामाजिक क्षेत्र में काम करने वाली अन्य कई संस्थाएं थी, परन्तु उनमें सबसे प्रमुख है, आर्य समाज। आर्य समाज की स्थापना हुई थी 1875 में तथा इसके प्रवर्तक थे स्वामी दयानंद सरस्वती। आर्य समाज के तीन प्रमुख मौलिक सिद्धांत थे। सर्वप्रथम उन्होंने वेदों के पुनरुद्धार के द्वारा हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान करना चाहा। अतः यहां वेदों को सर्वोपरि सत्ता मानागया। "आर्य समाज" ने नियम बनाया कि प्रत्येक सदस्य अपनी आय के सौवें भाग को "आर्य विद्यालय"

"आर्य प्रकाश" पत्रिका हेतु खर्च करे । आर्य विद्यालयों में वेदों एवं प्राचीन आदर्श ग्रंथों का पठन - पाठन करने की व्यवस्था की गयी । आर्य समाज पर यह आक्षेप लगाया जाता है कि उसने मूलत: हिन्दुओं के धार्मिक उत्थान पर जोर दिया यद्यपि आगे चलकर यह संस्था देश के कई भागों में जातीयता की भावना को फैलाने में सक्षम हुई । देश की स्वतंत्रता को प्राप्त करने के लिए यह भावना अत्यंत ही आवश्यक थी । आर्य समाज के द्वारा काफी हद तक समाज सुधार के अन्य कई कार्य भी किये गये ।

जिस तरह हिन्दुओं में अपनी दुरवस्था के प्रति चेतना का विकास हो रहा था । उसी प्रकार मुसलमान समाज भी धीरे धीरे अपनी बुराइयों को छिन्न - भिन्न करने के लिए उत्साहित हो रहा था । इस भावना को प्रेरित करने वाले समाज सेवी थे सैयद अहमद खाँ जो राय बरेली के निवासी थे ।

रामकृष्ण परमहंस :

आधुनिक युग में धार्मिक जागरण और सर्व धर्म समन्वय की बात करते समय एक महानतम हस्ती को भुलाना असंभव है । वे हैं श्री रामकृष्ण परमहंस । उन्होंने अपने ही जीवन को एक ऐसा प्रयोगशाला बनाया था जिसमें विभिन्न धर्मों के विधि विधानों का निष्ठापूर्वक पालन करते हुए समन्वयवादी भावना को प्रश्रय दिया था । सर्व धर्म समन्वय में विश्वास रखने वाले मानव धर्म के संस्थापक रामकृष्ण परमहंस छोटी छोटी कथाओं और दृष्टांतों के आधार पर जीवन के यथार्थ को समझाते थे । जैसे कुम्हार

की दुकान में कई आकार - प्रकार के बर्तन बनाये जाते है जिनको पृथक-पृथक नाम से बुलाते है । परन्तु मूलत: सभी बर्तनों का मिट्टी से ही बनाया गया है ठीक उसी प्रकार ईश्वर एक है जिन्हें विभिन्न युगों में विभिन्न देशों में विविध नामों से बुलाया जाता है । श्री रामकृष्ण परमहंस के शिष्यों में प्रमुख थे स्वामी विवेकानन्द ।

विवेकानन्द :

भारतीय नवजागरण के संदर्भ में विवेकानन्द एक विशेष ज्वलंत हस्ताक्षर है । 1892 ई० में शिकागो के विश्व धर्म सम्मेलन में ओजस्वी भाषण देकर उन्होंने धर्म के विषय में एक नया विचारोत्तेजक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया । भारत कीअस्मिता को पुन: स्थापित करने के लिए उन्होंने वेदान्त को आज के संदर्भ में देखने का आग्रह किया । विवेकानन्द ने देश की वर्तमान समस्याओं पर विचार करते हुए कहा, "भारतीय जागरण के प्रत्येक काल में जाति भेद को तोड़ डालने के सदा महाप्रयत्न किए गए हैं और किसी ऐसे दूसरे की जिसका हाथ भारत की गर्दन पर है, आज्ञा से होने वाली सब प्रगति सार हीन है । उत्तम कार्य भी उस समय केवल पतित ही होता है जब उसे करने के लिए दासता का बल काम में लाया जाता है ।"[1]

- -

1. [विवेकानन्द साहित्य, जन्मशती संस्करण, चतुर्थ खण्ड -पृ० 238-40] गोपा शंकर कृत आधुनिक भारत में समाजवादी चिंतन, पृ० 4 से उद्धृत ।(ऐसे कथन इस बात के प्रमाण है कि नवजागरण में न तो अंग्रेजों की प्रेरणा थी, न ही इस दिशा में वे सहायक थे । नवजागरण की प्रेरणा और प्रयत्न सर्वत: भारतीय मनीषा की देन था । अंग्रेजी शासन को नवजागरण केसहायक के रूप में नहीं बल्कि बाधक के रूप में देखना ही तर्कपूर्ण और उचित है ।)

उनकी आध्यात्मिक चेतना हर दृष्टि से आधुनिक है । वे धर्म के कट्टर पंथी व रूढ़िवादी चिंतक नहीं बल्कि वास्तविक धर्म की आत्मा को पहचान कर उस के आधार पर तत्कालीन भारत की व्यावहारिक समस्याओं को सुलझाने का दिशा - निर्देश करते थे । उनके सामने नये भारत के निर्माण का प्रश्न मुँह बाये खड़ा था । इसलिए वे सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में "उठो और जागो" का मंत्र फूंक रहे थे । विवेकानंद ने पहचान लिया था कि "जनता में शिक्षा के प्रसार से ही समस्या का समाधान हो सकता है । भारत वर्ष की दुर्गति का मुख्य कारण यह है कि देश की सारी शिक्षा और प्रतिभा शासकीय अधिकार से कुछ थोड़े से आदमियों तक सीमित कर दी गई ।"[1]

<u>बंगला वाङ्मय में आधुनिकता का उन्मेष</u>-इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी में भारत और बंगाल में धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक सभी क्षेत्रों में एक नवीन चेतना जाग्रत हुई । साहित्य के क्षेत्र में गद्य एवं पद्य कीविविध विधाओं का विकास होने लगा । जिसमें तद्युगीन परिस्थितियों की अभिव्यक्ति हुई । बोलचाल की भाषा में जनजीवन के यथार्थ को प्रस्तुत किया जाने लगा । कुछ लोग गद्य के आविर्भाव के पीछे यूरोपीय साहित्य का प्रभाव मानते है, यद्यपि भारतीय साहित्य में गद्य की बड़ी लंबी और समृद्ध परंपरा रही है । उन्नीसवीं शताब्दी के नवजागरण में साहित्य की महत्वपूर्णभूमिका रही है । प्रस्तुत अध्ययन के केन्द्र में बंगला एवं हिंदी साहित्य है । यहाँ हम उन्नीसवीं सदी के मध्य [सन् 855] तक के बंगला साहित्य तथा साहित्येतर विषयों से संबंधित ग्रंथों का उल्लेख करेंगे ।

- -

1. [विवेकानंद, राउजिंग काल टू हिन्दू नेशन, पृ.60] आधुनिक भारतीय समाजवादी चिन्तन - डा० रमेश मिश्र पृ. 4 से उद्धृत

अगले अध्ययन का बिन्दु 1857 से शुरू होगा जहाँ हिंदी प्रांतों के नवजागरण से सम्बन्धित विमर्श किया जाएगा । ध्यातव्य है कि इस समय तक अंग्रेजी शासन की नींव पूरीतरह मजबूत हो चुकी थी । अंग्रेज अपने हित में देश के लिए नियम कानूनों का निर्माण करने लगे । चिट्ठी पत्री एवं दलील दस्तावेज से बाहर भी बंगला गद्य का व्यापक रूप से व्यवहार होने लगा था । बंगाली शासितों को अंग्रेजी और अंग्रेजी शासकों को बंगला सीखने की आवश्यकता का अनुभव होने पर व्याकरण और कोश ग्रंथों की रचना होने लगी। केवल हस्तलिखित प्रतियों से काम चलाना दुष्कर व्यापार था, अतः मुद्रा यंत्र एवं बंगला टाइप की आवश्यकता अनुभूत हुई । बंगला टाइप का आविष्कार सबसे पहले चार्ल्स विल्किन्स ने किया जो ईस्ट इण्डिया कम्पनी के एक कर्मचारी थे । बंगला टाइप का प्रथम व्यवहार हालहेड साहब द्वारा रचित बंगला व्याकरण में हुआ । यह पुस्तक 1778 ई॰ में हुगली से प्रकाशित हुई थी ।मुद्रण यंत्र के लिए बंगला अक्षरों की सृष्टि होने से बंगला भाषा और साहित्यमेंनूतन युग का आविर्भाव हुआ । साहित्य अब सबके लिए सुलभ सामग्री बन गया । अठारहवीं शताब्दी के अन्त में बंगला भाषा में दो एक कानून की पुस्तकें लिखीगयी । बंगला गद्य का व्यापक रूप से आरंभ तो 19वीं शताब्दी के बिलकुल आरंभ से ही हुआ । जो विदेशी कर्मचारी विलायत से नियुक्त होकर इस देश में आते थे उनको भारतीय भाषाएँ सिखाने के लिए 1800 ई॰ में कलकत्ते में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना की गयी । कालेज में प्राच्य भाषा विभाग के अध्यक्ष श्रीरामपुर के मिशनरी पादरी विलियम केरी नियुक्त हुए । साहबों को सिखाने के लिए बोलचाल की व्यवहारोपयोगी भाषा की आवश्यकता थी । अतः केरी अपने सहकारी

पंडितों और मुंशियों द्वारा बंगला गद्य में पाठ्य पुस्तकें तैयार करने लगे। उन्होंने स्वयं भी व्याकरण, कोश प्रश्नोत्तरी एवं अन्य दो एक गद्य की पुस्तकें संकलित की। जिस वर्ष कालेज का कार्यारंभ हुआ उसी वर्ष केरी का व्याकरण और कथोपकथन, रामराम बसु का "प्रतापादित्य चरित्र" एवं गोलोक शर्मा का "हितोपदेश" प्रकाशित हुए। राम राम बसु का दूसरा गद्य ग्रंथ "लिपि माला" 1802 ई० में प्रकाशित हुई।

भारतीय साहित्य में आधुनिकता का अनुप्रवेश उन्नीसवीं शताब्दी से माना जाता है। बंगला साहित्य में भी आधुनिक काल का समय यही है अर्थात 1800 ई० के बाद से। हिंदी में आधुनिक काल का प्रारंभ कतिपय साहित्येतिहासकार 1857 से भी मानते हैं। इन आरंभिक वर्षों में बंगला में विभिन्न विषयों पर कितनी ही पुस्तकें प्रकाशित हुईं। भले ही इन पुस्तकों को आने वाले समय के संदर्भ में महत्वपूर्ण नहीं समझा जाए किन्तु तत्कालीन उपयोगिता को निर्विवाद माना जा सकता है। इस समय कई ऐसी मूल्यवान कृतियों का सृजन हुआ जो बंगाली जनता के ज्ञानोदय का कारण बनी और तत्पश्चात अपनी उपयोगिता खो बैठी। ऐसी रचनाएं उपेक्षित होकर विस्मृति की गर्त में खो गईं। इनके सामयिक महत्व से इन्कार नहीं किया जा सकता।[1]

"फोर्ट विलियम कालेज के अध्यापकों ने पाठ्य पुस्तकों के माध्यम से जिस गद्य शैली का प्रवर्तन किया वह आगामी काल के अंग्रेजी और बंगाली पाठ्यपुस्तक रचयिताओं के लेखों में से होकर उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य

- -

1. अधिक विस्तार से बचते हुए केवल कुछ प्रमुख पुस्तकों एवं उनके लेखकों की एक सूची भर परिशिष्ट - 1 में दी जा रही है। कृपया देखें।

भाग तक चलती रही । इस आरंभिक गद्य में एक तो कोई शोभा सुषमा न थी और दूसरा चलती भाषा में कोशों से छाँट कर निकाले गये संस्कृत शब्दों के उत्कट प्रयोग से भाषा अजीबोगरीब लगती और मनमेढ़कर वाक्य गठन प्रणाली अँग्रेजी और संस्कृत भाषाओं के साँचों में ढली थी । जिससे भाषा की गति या प्रवाह में स्वाभाविकता नहीं आ पाती थी । लेखक ऐसे भी थे जो अँग्रेजी से अनुवाद करने के कारण हू - ब - हू अँग्रेजी शैली का अनुकरण करते जिससे अँग्रेजी न जानने वालों के लिए यह भाषा शैली दुरूह एवं दुर्बोध हो जाती थी ।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर - भाषा संस्कारक एवं समाज सुधारक :

व्याकरणिक दृष्टि से बंगला भाषा को संस्कृत करने का श्रेय ईश्वरचन्द्र विद्यासागर को जाता है । आपने भाषा को परिमार्जित कर एक मानक दिशा देने का सफल प्रयास किया है । ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का जन्म 1820 ई॰में हुआ तथा 1891 में उनकी मृत्यु हुई । इस दौरान वे बंगला गद्य को उच्च कोटि के साहित्य के स्तर तक उठाने में सफल हुए ।

फोर्ट विलियम कालेज में नौकरी के लिए प्रविष्ट होकर वे बंगला गद्य में पाठ्य पुस्तकों की रचना में प्रवृत्त हुए । कालेज के कर्ताधर्ता लोगों के अनुकूल न होने के कारण वहाँ उनका प्रथम ग्रंथ "वासुदेवचरित"[1] प्रकाशित नहीं हुआ । उनका दूसरा ग्रंथ "बेताल पंचविंशति" 1847 में प्रकाशित हुआ । इस ग्रंथ के प्रकाशन के साथ ही बंगला गद्य में एक नूतन युग का

- -

1॰ सुकुमार सेन की "बंगला साहित्य की कथा" - पृ॰ 126

प्रवर्त्तन हुआ । इसके पश्चात उन्होंने बंगला का इतिहास"[1] [1848 ई.]
"जीवन चरित"[2] [1849 ई.], "शिशु शिक्षा चतुर्थ भाग अथवा बोधोदय"[3]
[1851 ई.], "शकुन्तला"[4] [1854 ई.], "कथामाला"[5] [1856 ई.]
"चरितावली" [1856 ई.], "महाभारत का उपक्रमणिका पर्व"[6] [1860 ई.],
"सीता का वनवास"[7] [1860 ई.], "आख्यान मंजरी"[8] [1863-68 ई.],
एवं "शान्ति विलास"[9] [1869 ई.] इत्यादि कई पाठ्यपुस्तकों की रचना
की । विद्यासागर मात्र पाठ्य पुस्तक रचयिता ही नहीं थे बल्कि उन्होंने
कई मौलिक ग्रंथों की रचना की जो साहित्यिक दृष्टि से काफी उपादेय
है । जैसे --"संस्कृत भाषा और संस्कृत साहित्य शास्त्र विषयक प्रस्ताव
विधवा विवाह प्रचलित होना उचित है या नहीं एतद्विषयक प्रस्ताव
[दो खंड], बहु विवाह दूर होना उचित है या नहीं एतद्विषयक विचार
[दो खंड] "विद्यासागर चरित" [स्वचरित], "प्रभावती संभाषण"[10] आदि
इस प्रकार बंगला के गद्य के पिता विद्यासागर है जिन्होंने सुलक्षित गद्य
शैली का प्रवर्त्तन किया । 1847 से पहले बंगला गद्य में या तो शुद्ध संस्कृत
का या बोल चाल की भाषा का अनुचित बाहुल्य हो गया अथवा दोनों
का शोभा शून्य समप्रयोग हुआ करता था । विद्यासागर ने बंगला गद्य
को दोषों से मुक्त कियातथा इसे सीधी सादी सरलएवं स्वाभाविक रूप
देकर व्यवहार योग्य जीवित भाषा के रूप में खड़ा कर दिया ।

अक्षय कुमार दत्त :

बंगला गद्य के प्रवर्त्तन में विद्यासागर के प्रधान सहयोगी थे अक्षय कुमार

- -

1. सुकुमार सेन की "बंगला साहित्य की कथा" - पृ. 126
2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9 -वही- पृ. 126
10. "बंगला साहित्य की कथा" - सुकुमार सेन - 126

दत्त । 1842 में ब्रह्मसमाज द्वारा जो तत्वबोधिनी पत्रिका प्रकाशित हुई थी इसके प्रथम संपादक थे अक्षयकुमार दत्त । निरन्तर बारह वर्षों तक इस कार्य में व्यस्त रहे । "तत्वबोधिनी" में अक्षय कुमार ने अपने विविध प्रबंध प्रकाशित किये और इन सारे प्रबंधों को एकत्रित करके इन्हें पाठ्य पुस्तक के रूप में संकलित किया। इनकी पुस्तक "बाह्य वस्तु के साथ मानव प्रकृति के संबंध पर विचार" 1852 में प्रकाशित हुई । तदुपरांत इस ग्रंथ का द्वितीय भाग, "चारु पाठ" [तीन भाग] "धर्म नीति", "भारत वर्षीय उपासक संप्रदाय" [दो भाग] आदि पुस्तकें प्रकाशित हुई । श्री दत्त हमारे देश में वैज्ञानिक आलोचना के पथ प्रदर्शकों की श्रेणी में रखे जायेंगे ।

19वीं शताब्दी के मध्य भाग में विद्यासागर के पद चिह्नों पर चलने वाले कई उल्लेखनीय व्यक्ति थे जिन्होंने बंगला गद्य को प्रतिष्ठा दिलाने में विशेष सहायता की । उनमें सबसे प्रमुख है - राजानारायण बसु, राजा राजेन्द्रलाल मित्र, ताराशंकर तर्करत्न, रामगति न्याय रत्न, राजकृष्ण बन्धोपाध्याय, काली प्रसन्न सिंह, भूदेव मुखोपाध्याय, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर एवं कृष्ण कमल भट्टाचार्य ।

आधुनिक बंगला काव्य :

19वीं शताब्दी के मध्य भाग तक बंगला साहित्य की दो धाराएं समान रूप से चली आ रही थी । वैष्णव पदावली [और पौराणिक काव्य] तथा भारतचंद्र के अन्नदामंगल जैसे मौलिक कथा काव्य । वैष्णव पदावली

और पौराणिक पद्धति के कवियों में विशेष रूप से उल्लेख योग्य थे। रघुनन्दन गोस्वामी। इनके तीन काव्य प्रकाशित हुए -"राम रसायन" [रामायण की कथा], "गीत माला" [कृष्णलीला विषयक गीत] तथा "राधा माधवोदय" [राधा माधव की लीला, विविध छन्दों में]। भारतचन्द्र की पद्धति के कवियों में श्रेष्ठ मदनमोहन तर्कालंकार एवं ईश्वर चन्द्र गुप्त थे। मदन मोहन ने विद्यार्थी जीवन में ही दो काव्यों की रचना की -"रस तरंगिणी" और "वासवदत्ता"। कवित्व शक्ति में ईश्वरचन्द्र गुप्त मदनमोहन से भी एकदम आगे थे। ईश्वरचन्द्र गुप्त पुरातन पद्धति के अन्तिम और नूतन पद्धति के आदि कवि माने जाते है। ईश्वर चन्द्र गुप्त की साहित्य साधना में आधुनिकता की अभिव्यक्ति, उनकी असाधारण इतिहास चेतना के कारण संभव हुई थी। इस इतिहास चेतना का आधारभूत रूप था उनका देश के प्रति प्रेम। आधुनिक युग के साहित्यकारों में ईश्वरचन्द्र गुप्त ही प्रथम व्यक्ति थे जिन्हें कवि मंडल के प्रथम गोष्ठीपति के रूप में स्मरण किया जाता है। इस कविगोष्ठी में चार उत्तम कोटि के साहित्यकार बन सके। वे चार कवि थे - रंगलाल बन्दोपाध्याय, द्वारकानाथ अधिकारी, दीनबन्धु मित्र एवं बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय। रंगलाल के काव्य का मूल स्वर देश प्रेम और स्वाधीनता प्रेम है। संस्कृत तथा अंग्रेजी की अनूदित काव्य रचनाओं को छोड़कर इनकी मौलिक रचनाएं चार थी -"पद्मिनी उपाख्यान" [1858], "कर्मदेवी" [1862], "शूरसुन्दरी" [1868] एवं कांचीकावेरी [1879] है। द्वारकानाथ अधिकारी की अत्यंत अल्प आयु में ही मृत्यु हो गयी। दीनबंधु कविताएं तो लिखते थे परन्तु नाटक व प्रहसन लिखकर ही अधिक यशस्वी हुए, बाद में तो वे कविता रचना से विमुख ही हो गए।

बंकिमचंद्र आरंभ में ईश्वरचन्द्र गुप्त की शैली में कविता रचना करते थे। उनकी कई कविताएं संवाद प्रभाकर में प्रकाशित हुई थी। इनकी प्रथम पुस्तकें "ललिता" और "मानस" थी। ये दोनों स्वतंत्र काव्य, 1856 में प्रकाशित हुए। कविता रचना में अधिक सफल न होने के कारण बंकिम उपन्यास के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए और सफलता भी पाई।

कविताओं के क्षेत्र में एक और उल्लेखनीय हस्ताक्षर थे - कृष्णचन्द्र

मजूमदार। धर्म और रीति से संबंधित विषयों पर कविता की रचना करने वाले कृष्णचन्द्र की कविताओं पर संस्कृत एवं फारसी का प्रभाव दिखाई देता है। कविता की सहज स्वाभाविक कान्ति को लुप्त होने से जिन लोगों ने बचाया। वे असामान्य रूप से प्रतिभाशाली तथा विभिन्न भाषाओं के साहित्य के रसज्ञ भी थे। इन लोगों ने काव्य भाषा में नवीन शक्ति का संचार किया एवं काव्य रीति में नया लावण्य भर दिया। माइकेल मधुसूदन दत्त ने आधुनिक बंगला काव्य को मानों नवीन जीवन दान दिया। मधुसूदन के कवि कर्म में जो विदेशी साहित्य का प्रभाव दिखाई देता है, वह अनुकरण नहीं है। पहले पहल वे अंग्रेजी में कविता रचना करते थे। उनकी प्रथम अंग्रेजी कविता "कैप्टिव लेडी", "विजन्स आफ द पास्ट" है। बंगला में उनकी प्रथम कविता थी "तिलोत्तमा संभव" जो 1859 ई. में विविधार्थ संग्रह में प्रकाशित हुई। बंगला काव्य में उन्होंने सर्वप्रथम अमितात्तर छन्द की सृष्टि की। इसी छन्द में उन्होंने "तिलोत्तमा संभव की रचना की। 1861 ई. में "वीरांगना" काव्य तथा "मेघनाद वध" का प्रथम एवं द्वितीय भाग प्रकाशित हुआ। इस युग में अन्त्यानुप्रास का प्रयोग होना आरंभ हुआ था। आगे चलकर इस प्रवृत्ति का पूरा विकास बंगला काव्य में देखा जा सकता है। आधुनिक

बांग्ला साहित्य की सर्वप्रथम आत्मप्रकाश मूलक कविता "आत्मविलाप" 1861 ई॰ में "तत्त्वबोधिनी" पत्रिका में प्रकाशित हुई । फ्रांस में प्रवास करते समय मधुसूदन ने 1865 ई॰ में "चतुर्दशपदी कवितावली" की रचना की थी । मधुसूदन के पश्चात भी अनेक कवियों ने सॉनेट लिखे परन्तु वे इस कदर सफल नहीं हो पाए । मधुसूदन अंग्रेजी साहित्य से प्रभावित अवश्य थे परन्तु उनके काव्य का विषय, परिकल्पना सब कुछ यथा संभव देशी ही था । अतः आश्चर्य नहीं जो वे अपने समय के अत्यंत लोकप्रिय कवि बने ।

मधुसूदन के परवर्ती दो कवियों की कविता में विदेशी काव्य सुलभ अनुभूति प्रधान दृष्टिकोण का प्रथम दर्शन होता है । ये दो कवि थे बिहारीलाल चक्रवर्ती [1835 - 74] एवं सुरेन्द्रनाथ मजूमदार [1838-78] है । बिहारीलाल ने "पूर्णिमा" पत्रिका प्रकाशित की और इसी में इनकी अनेक कविताएं प्रकाशित हुई । तदुपरान्त इन्होंने "अबोध बन्धु" नामक पत्रिका का संपादन कियाजिसमें "बंगसुन्दरी" काव्य का कुछ अंश प्रकाशित हुआ । बिहारी लाल का सर्वश्रेष्ठ काव्य "सारदामंगल" है । जो "आर्य दर्शन" पत्रिका में क्रमशः प्रकाशित हुआ । इसके अतिरिक्त "बंगसुन्दरी" के समान ही "साधेर आसन" नामक काव्य की रचना की । अपनी कविताओं में बिहारीलाल ने छन्द की मधुरता और लालित्य में नवीनता दिखलायी है । बालक रवीन्द्रनाथ बिहारीलाल की काव्य रचना से काफी प्रभावित थे तथा इनसे प्रेरणा ग्रहण करके उन्होंने कई कविताओं की रचना की थी ।

सुरेन्द्रनाथ मजूमदार के निबंध एवं कविताएं "विविधार्थ संग्रह" जैसी कई पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई । इनका सर्वश्रेष्ठ काव्य "महिला काव्य" माना जाता है । सुरेन्द्रनाथ का सबसे बड़ा काव्य "सविता सुदर्शन" है ।

इस ज़माने के एक और महत्वपूर्ण हस्ताक्षर है हेमचन्द्र बन्धोपाध्याय। बिहारी लाल द्वारा संपादित "अबोध बन्धु" में उनकी कविताएँ प्रकाशित होती थी। 1866 में प्रथम काव्य "चिन्तातरंगिनी"; तदुपरान्त क्रमशः "कवितावली" [प्रथम भाग 1870]; "वृत्रसंहार" महाकाव्य [प्रथम खंड 1875; द्वितीय खंड 1877]; "कवितावली" [द्वितीय खंड] "छायामयी" "दशमहाविद्या"; एवं "चित्तविकास" प्रकाशित हुए।

हेमचन्द्र के समकालीन नवीनचन्द्र थे। नवीनचन्द्र ने अनेक उत्कृष्ट काव्यों की रचना की है जिसमें "पलासी का युद्ध", "रैवतक"; "कुरुक्षेत्र" और "प्रभास" श्रेष्ठ है। नवीनचंद्र के अन्य काव्य ग्रंथ "अवकाशरंजिनी [दो खंड]; "क्लिओपेट्रा"; "अमिताभ"; "अमृताभ और "ख्रीस्ट" है।

19वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में मधुसूदन और हेमचन्द्र के अनुसरण पर कई कवि काव्य रचना में प्रवृत्त हुए। इनमें से राजकृष्ण मुखोपाध्याय ["मित्र विलाप", 1969 ई]; शिवनाथ शास्त्री ["पुष्पमाला"; "निर्वासितेर विलाप", "हिमाद्री कुसुम" आदि] हरचन्द्र घोष [राज तपस्विनी" 1876], दिनेशचन्द्र वसु ["कवि कहानी"] नवीनचन्द्र मुखोपाध्याय "आर्य संगीत"] "भारमंगल" आदि] अक्षयमाम सेन ["मेनका"; "महिला सुन्दरी"] आदि के नामोल्लेख किये जा सकते है। 19वीं शताब्दी के अन्त की ओर कुछ कवयित्रियों का भी आविर्भाव हुआ जिनमें प्रमुख थे गिरीन्द्र-मोहिनी दासी जिन्होंने "अश्रुकण" एवं "आभाष" काव्यों की रचना की।

बंगला उपन्यास :

उपन्यास का आविर्भाव साहित्य के इतिहास की एक आधुनिक

घटना है । पाश्चात्य देशों में जब ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक मनोवृत्ति जागृत हो उठी अर्थात मानव आध्यात्मिक विश्वास को छोड़ ऐतिहासिक घटना परम्परा अथवा प्रत्यक्ष ज्ञान से सम्बन्धित कार्य कारण संबंधों पर विचार करने लगा तभी उसका कौतूहल इस जगत एवं जीवन पर केन्द्रित होने लगा था । परिणामस्वरूप साहित्य सृजन में एक नये रूप का आविर्भाव होने लगा जिसे नॉवेल [उपन्यास] कहा जाने लगा । जार्ज लुकाच ने उपन्यास का संबंध पूँजीवाद और व्यक्तिवाद के आरंभ से माना है । उसका कहना था कि जैसे "महाकाव्य" सामंतवादी काव्य विधा था वैसे ही उपन्यास "मध्य वर्ग" का महाकाव्य है । सामंतवाद के पतन से पूँजीवाद और मध्यम वर्ग का उदय जुड़ा हुआ है । अतः उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बंगला उपन्यास के न होने के तीन कारण हो सकते हैं - [1] पूँजीवाद और मध्य वर्ग का अभाव [2] बंगला गद्य तब भी स्थिरीकरण की प्रक्रिया में था [3] छापेखाने की बड़े पैमाने पर सुविधा नहीं थी ।

लेकिन बंकिमचन्द्र के साथ बंगला उपन्यास तीव्र गति से प्रगति के रास्ते पर चल रहा था । बंकिम से पहले से दो तीन लेखक बंगला उपन्यास लिखने के लिए उद्यत हुए थे - [कृष्णकमल भट्टाचार्य, भूदेव मुखोपाध्याय एवं गोपी मोहन घोष ।] बंकिमचन्द्र आधुनिक बंगला उपन्यास के श्रेष्ठ शिल्पी थे । छोटे बड़े कुल मिलाकर बंकिम ने पन्द्रह आधुनिक बंगला उपन्यास के श्रेष्ठ शिल्पी थे । छोटे बड़े कुल मिलाकर बंकिम ने पन्द्रह उपन्यासों की रचना की । उनका प्रथम उपन्यास अंग्रेजी में लिखा गया था जिसका नाम था "राजमोहन्स वाइफ" - 1864 में यह "इण्डियन

फील्ड" नामक एक साप्ताहिक पत्रिका में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ। परन्तु अंग्रेजी में उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा का उद्गार उनके अंतर्मन को संतुष्ट नहीं कर सका। फलतः उन्होंने बंगला भाषा में ही बाकी उपन्यास लिखे। 1965 ई॰ में "दुर्गेशनन्दिनी" के प्रकाशित होने से बंगाली पाठकों के सम्मुख एक अपूर्व रस भंडार उन्मुक्त हो गया था। इसके पश्चात 1866 में "कपाल कुण्डला" एवं 1869 में "मृणालिनी" प्रकाशित हुए। 1872 ई॰ में बंकिम ने बंग दर्शन पत्रिका प्रकाशित की। "बंग दर्शन" के प्रथम चार खण्डों का प्रकाशन बंकिम ने किया। तदुपरान्त उनके भाई सजीवचंद्र ने इस उत्तरदायित्व को संभाल लिया। "बंग दर्शन" के पृष्ठों में बंकिमचन्द्र के निम्नलिखित उपन्यास प्रकाशित हुए। विष वृक्ष [1872], "इन्दिरा" [1872], "युगलांगुलीय" [1873], "साम्य" [1873-74], "चन्द्रशेखर" [1872], "कमलाकान्तेर दफ्तर" [1873], "कृष्ण चरित्र" [1874], रजनी [1874-75], "राधारानी" [1875], "कृष्णकान्तेर विल" [1875-77], "राज सिंह [1877-78], "मुचिराम जीवन चरित" [1880], "आनन्दमठ" [1880-82], "देवी चौधुरानी" [1882] नवजीवन पत्रिका में "धर्म तत्व" [1880 ई॰ में] एवं "प्रचार" पत्रिका में "सीताराम" [1880 में] प्रकाशित हुए। बंकिम का यह अंतिम उपन्यास है। "बंग दर्शन" में प्रकाशित बंकिम की अन्य रचनाएं "लोक रहस्य", "विविध प्रबंध" [दो भाग] आदि के रूप में पुस्तकाकार में प्रकाशित हुईं।[1] बंकिम बंगला साहित्य में नवजागरण के अग्रदूत बन कर आते है। हालांकि वे अंग्रेजों की नौकरी करते थे मगर अंग्रेजियत से आक्रांत नहीं थे।

---

1. बंगला साहित्य की कथा" -सुकुमार सेन - पृ॰ 151

उनकी जड़े भारतीय इतिहास, परंपरा और संस्कृति में गहरी थी । "कृष्ण चरित्र" हो या "आनंद मठ" उनकी रचनाएँ राष्ट्रीय भावना से ओत प्रोत है ।

"दुर्गेशनन्दिनी" और विष वृक्ष के प्रकाशन के अन्तराल वाले समय में बंगला में अन्य लेखकों के द्वारा भिन्न विषयों को लेकर जिन उपन्यासों की रचना हुई कमोबेश उन सभी उपन्यासों पर बंकिम का प्रभाव दिखाई देता है । नवीनचन्द्र बन्दोपाध्याय के "रत्नोत्तमा" [1867] और "मनोत्तमा" [1868], मीर ममारफ हुसैन का "रत्नावती" [1869], जयगोपाल गोस्वामी का "शैवलिनी" [1969, कालीपद भट्टाचार्य का "अकाल कुसुम" [1969], क्षेत्रनाथ बन्धोपाध्याय का "वान्कामिनी" [1870] राजकृष्ण आढ्येर कृत "कामरूप कामलता" [1871], गोरीनाथ नियोगी कृत "आशा मरीचिका" [1872], उमाचरन चक्रवर्ती कृत "वसन्त कुमारी" [1872] मदनमोहन मिश्र कृत "समराशायिनी" [1973], शिवचन्द्र मुखोपाध्याय कृत "कांचन माला" [1873] आदि[1] पर बंकिमचंद की उपन्यास कला का प्रभाव लक्षित करना कठिन नहीं है ।

बंकिमचंद्र के समसामयिक उपन्यास लेखकों में रमेशदत्त विशेष रूप से सफल कहे जा सकते है । 1873 ई॰ में "बंग विजेता" जैसे ऐतिहासिक उपन्यास के अलावा इनके दो सामाजिक उपन्यास - "संसार" [1875 ई] एवं "समाज" बहुत लोकप्रिय हुए । दरिद्र ग्रामीण गृहस्थों का सरल सुन्दर चित्रण तारकनाथ गंगोपाध्याय के "स्वर्णलता" उपन्यास में देखा जा सकता

- -

1॰ बंगला साहित्येर इतिहास - सुकुमार सेन - पृ॰ 206-207

है । प्रतापचन्द्र घोष का "बंगाधिप पराजय" उपन्यास जो 1869 में प्रकाशित हुआ । बंकिम के प्रभाव से मुक्त है ।

आधुनिक युग में बंगला नाटक :

19वीं शताब्दी के पांचवे दशक में मौलिक बंगला नाटकों का सूत्रपात हुआ । इसके पहले संस्कृत नाटक एवं प्रहसनों से अनूदित कुछ नाटक प्रकाशित हुए, परन्तु कथोपकथनहोने पर भी उन्हें काव्यानुवाद कहना ही अधिक उचित होगा । वे अभिनय की दृष्टि से रचे नहीं गये थे । इस दृष्टि से पहला नाटक जिसमें नाटक के सभी तत्व विद्यमान थे । विश्वनाथ न्याय रत्न द्वारा अनूदित "प्रबोध चंद्रोदय" है -[इसका अनुवाद काल है 1839ई०।] यह नाटक इसके 32 वर्ष बाद प्रकाशित हुआ, अर्थात 1871 ई० में प्रथम मुद्रित बंगला नाटक "रत्नावली" था जो 1849में छपा था । बंगला नाटक के प्रथम पड़ाव में विषय वस्तु का आधार संस्कृत कथाएं थी परन्तु आगे चलकर विषय वस्तु सामाजिक हो गई, जैसे - विधवा विवाह, बहु विवाह आदि 1853 ई० में हरचन्द्र घोष का "भानुमति चित्तविलास" नाटक छपा जो शेक्सपियर के "मर्चेन्ट आफ वेनिस" के आधार पर लिखा गया था । बंगला में "प्रथम दो वियोगात्मक नाटक है - योगेन्द्र चन्द्र का "कीर्ति विलास" [1852] एवं उमेशचन्द्र मित्र का "विधवा विवाह" नाटक [1857] ।[2] कालीप्रसन्न सिंह ने जिन विचार प्रधान नाटकों की रचना की थी उनमें सबसे प्रथम "बाबू नाटक" 1853 में प्रकाशित हुआ ।[3]

---

1. बंगला साहित्य की कथा - सुकुमार सेन - पृ० 136
2. -वही- पृ० 136
3. -वही- पृ० 136

नंदकुमार राय का अनुवाद "अभिज्ञान शाकुन्तला" 1855 में प्रकाशित हुआ 1897 में यह अभिनीत भी हुआ । किसी मुद्रित नाटक का यही प्रथम मंचन था । बंगला नाटक की शैशवावस्था के एक और उल्लेखनीय हस्ताक्षर हैं, रामनारायण तर्क रत्न, जो "नाटकी रामनारायन" नाम से लोकप्रिय हुए । उनका प्रथम नाटक "कुलीनकुल रामनारायन तर्क रत्न, जो "नाटकी रामनारायन" नाम से लोकप्रिय हुए । उनका प्रथम नाटक सर्वस्व 1854 में प्रकाशित हुआ । बंगला नाटक का दूसरा पड़ाव अद्वितीय प्रतिभा संपन्न कवि माइकेल मधुसूदन दत्त से प्रारंभ होता है । बंगला में प्रथम उत्कृष्ट नाटक रचना करने का श्रेय माइकेल को ही जाता है और उस अमूल्य रचना का नाम है "शर्मिष्ठा [रचना काल - 1858] । 1859 में उनके दो और नाटक प्रकाशित हुए - "कृष्ण कुमारी" एवं "पद्मावती" मधुसूदन के नाट्य रचना से विमुख होने पर एक और श्रेष्ठ नाटककार का आविर्भाव हुआ । वे थे दीनबंधु मित्र जिन्होंने 1860 ई॰ में "नील दर्पण" की रचना की । . . . । वे थे दीनबंधुमित्र जिन्होंने 1860 ई॰में "नील दर्पण" की रचना की । नील दर्पण ने न केवल बंगला साहित्य में बल्कि पूरे बंगाल समाज एवं राष्ट्र में ही हलचल मचा दी थी । बंगाल में नील की खेतों में काम करने वाले मजदूरों पर साहबों के अमानुषिक अत्याचार और शोषण को "नील दर्पण" में चित्रित किया गया । इस नाटक से प्रेरित होकर अंग्रेजी साहबों के विरुद्ध आन्दोलन भी चलाया गया । नतीजा यह हुआ कि जल्दी ही मजदूरों के प्रति अमानुषिक अत्याचार का पर्दाफाश हो गया । इस नाटक पर पाबंदी भी लगा दी गयी । "नील दर्पण" के उपरांत दीनबन्धु के निम्नलिखित नाटक प्रकाशित

हुए - "नवीन तपस्विनी" [1863], "विये पागल बूड़ो" [विवाह के लिए पागल बूढ़ा] 1866, "सधवा की एकादशी" [1866] "लीलावती" [1867], "जामाई बारिक" [1872], "कमले कामिनी नाटक" [1873]

उन्नीसवीं शताब्दी बंगला साहित्य में व्यंग्य रचनाएँ भी दिखाई देती है । भवानीचरण का "बाबू विलास" इसी प्रकार की पुस्तक है ।

रवीन्द्रनाथ :

बंगला साहित्य का चरमोत्कर्ष उन्नीसवीं सदी में ही रवीन्द्रनाथ की गद्य पद्य रचनाओं के साथ प्रारंभ होने लगता है । रवीन्द्रनाथ बारह तेरह वर्ष की अवस्था ही से गद्य एवं पद्य की रचना करने लगे थे । इनका प्रथम काव्य "वनफूल" ज्ञानांकुर पत्रिका में सन् 1875 में तथा पुस्तकाकार रूप में 1879 ई. में प्रकाशित हुआ ।[1] उनके प्रथम गद्य प्रबंध [समालोचना] "भुवनमोहिनी प्रतिभा", "अवसरसरोजिनी" तथा "दुःख संगिनी" - "ज्ञानांकुर" में 1876 में प्रकाशित हुए ।[2] वनफूल के पश्चात रवीन्द्रनाथ का द्वितीय काव्य "कवि काहिनी" 1879 में प्रकाशित हुआ । रवीन्द्र नाथ कीरचनाओं का सम्यक परिचय देना भी संभव नहीं है, अतः चुनी हुई प्रधान रचनाओं का ही संक्षेप में उल्लेख किया जाएगा । "भारती" पत्रिका में रवीन्द्रनाथ ने ब्रजबोली के पदों में "भानुसिंह ठाकुर की पदावली की रचना की थी तो विद्यापति के पदों की नकल होते हुए भी उनसे होड़

- -

1. बंगला साहित्य की कथा - सुकुमार सेन - पृ. 158
2. -वही- पृ. 159

लेती थी । रवीन्द्रनाथ का प्रथम गीति नाट्य "वाल्मीकि प्रतिभा"[1] है । 1882 ई० में "संध्या गीत" प्रकाशित हुआ जिसमें रवीन्द्रनाथ की वैयक्तिकता स्पष्ट झलकती है । रवीन्द्रनाथ का प्रथम उपन्यास "करुणा"[2] प्रकाशित हुआ । 1883 में "बोठाकुरानीरहाट" नामक दूसरा उपन्यास प्रकाशित हुआ । "कडि ओ कोमल" काव्य में कवि की काव्योचित परिपक्वता के दर्शन होते है - इसमें भाव सुनिर्दिष्ट तथा भाषा व छन्द संयत जान पड़ते है। इसके पश्चात |1890| में "मानसी" काव्य में कवि की प्रतिभा और भी विकसित हुई । तद्परांत "चित्रांगदा" नामक नाट्य काव्य तथा "सोनारतरी" नामक काव्य प्रकाशित हुए । सोनारतरी" में 1891-1893 की कविताएं संकलित है । रवीन्द्रनाथने 1891 ई० में सुधीन्द्रनाथ के संपादकत्व में "साधना" नामक पत्रिका प्रकाशित की । 1887 ई० के आस पास रवीन्द्रनाथ ने कहानियों के क्षेत्र में महत्वपूर्ण काम कियाऔर छोटी - छोटी रोचक कहानियों की रचना की । रवीन्द्रनाथ की पहली छ: छोटी कहानियां "हितबादी" पत्रिका में प्रकाशित हुई । तद्परान्त "साधना" |साधना के बन्द हो जाने पर| "भारती", "बंगदर्शन" |नवीन| "प्रवासी" एवं "सबुज पत्र" नामक पत्रिकाओं में उनकी छोटी छोटी कविताएं प्रकाशित होती रही ।

क्षणिका |1900| काव्य में कवि के हृदय की मुक्तावस्था आडम्बरहीन भाषा में छोटी - छोटी कविताओं के रूप में प्रकट हुई है । "नौका" का आध्यात्मिक भाव "खेया" काव्य में 1906 में विशेष स्फुरण पाता है ।

- -

1. बंगला साहित्य की कथा - सुकुमार सेन - पृ० 159

2. -वही- पृ० 159

रवीन्द्रनाथ बंगला नवजागरण के शीर्ष कुसुम थे । उन्हें अंग्रेजी शिक्षा से बचपन से ही चिढ़ थी । वे स्कूली शिक्षा से जानबूझकर अलग रहे । उन्होंने बाद में चलकर भारतीय शिक्षा परंपरा में विश्व भारती की स्थापना भी की । रवीन्द्रनाथ ने वाल्मीकि, कालिदास जैसे श्रेष्ठ भारतीय कवियों का गहरा अध्ययन किया था । वे भारतीय कवि है, भारतीयता के कवि है । रवीन्द्रनाथ सदा से स्वतंत्र चेता थे । उन्होंने भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति, परम्परा में जो भी अच्छा है, उसकी अभिव्यक्ति की । 1910 में "गीतांजली" प्रकाशित हुई । अंग्रेजी में अनूदित होकर यह नोबेल पुरस्कार पाने योग्य रचना बनकर विश्व विख्यात हो गई ।

इस काल में बंगला की बोलियाँ स्पष्ट हो चुकी थी तथा साहित्य में उनसे शब्द भी लिये जाने लगे । शब्दों का मानकीकरण हुआ और डा0 सुनीति कुमार चटर्जी, डा0 सुकुमार सेन, डा0 नलिनी मोहन सन्याल आदि भाषाविद् ने इस भाषा को बड़े मनोयोग से सजाया और संवारा है ।......... अंग्रेजी भाषा का बहुत अधिक प्रभाव बंगला भाषा पर पड़ा है जिसके कारण इस भाषा का अत्यधिक विकास हुआ है । बंगला भाषा का साहित्य भी अत्यंत समृद्ध है । नोबेल पुरस्कार विजेता रवीन्द्रनाथ टैगोर, शरत्चन्द्र, चट्टोपाध्याय जैसे विश्व विख्यात लेखक भी इसी भाषा में व्युत्पन्न हुए है ।"[1]

हिंदी प्रदेश में नवजागरण - 1857 का स्वाधीनता आन्दोलन :

सदी के बंगला साहित्य और बंगला नवजागरण के संबंध को समझने

- -

1. हिंदी और बंगला की रूप रचना - सरोज सिन्हा - पृ० 11

के लिए तत्कालीन साहित्य संबंधी संक्षिप्त चर्चा आवश्यक थी । परन्तु बंगला नवजागरण का हिंदी के नवजागरण से क्या, कितना और कैसा सम्बन्ध है, यह जानने के लिए आवश्यक है कि हिंदी प्रदेश के नवजागरण को समझा जाए । सवाल यह उठता है कि हिंदी प्रदेश में नवजागरण को कब से आंका जाए ? इस सवाल का जवाब रामविलास शर्मा जी दृढ़ता से देते हैं कि "हिंदी प्रदेश में नवजागरण 1857 ई. के स्वाधीनता संग्राम से शुरू होता है ।"[1] 1857 की क्रान्ति का हिंदी नवजागरण के संदर्भ में ऐतिहासिक महत्व है । इस क्रान्ति के परिणामस्वरूप हिंदी क्षेत्र की मानसिकता में परिवर्तन हुआ था । डा० रामविलास शर्मा का मानना है कि 1857 लोगों में कोई अचानक उभरे जोश का कारण नहीं था, उसके पीछे लोगों की मानसिकता का एक लम्बा इतिहास है । हिंदी नवजागरण के पहले शर्मा जी "लोक जागरण" को हिंदी साहित्य के आदि काल से ही लक्षित करते है । शर्मा जी के शब्दों में —"शुक्ल जी का आदिकाल सामन्तकाल के अंतर्गत है, किन्तु इसी काल में विद्यापति और खुसरो हुए है । लोकजागरण वाले साहित्य की शुरुआत इन दो कवियों से मानी जानी चाहिए । .... लोकजागरण वाले साहित्य की धारा विद्यपति और खुसरो से आरंभ होकर सूर तुलसी के अलावा, सेनापति और रहीम को समेटती हुई रीतिमुक्त घनानंद तक प्रवाहित रहती है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से जो नवजागरण शुरू होता है वह नयी परिस्थितियों में पुराने लोकजागरण का विकास है ।"[2]

- -

1. महावीरप्रसाद और हिंदी नवजागरण - रामविलास शर्मा -पृ. 9
2. "हिंदी जाति का साहित्य" -लोकजागरण और आधुनिक काल : डा० रामविलास शर्मा - पृ. 123

1857 से पूर्व अंग्रेजों से संग्राम :

सच पूछा जाए तो सन् 1748 से 1947 तक के भारतीय समाज की जो तस्वीर उभर कर सामने आती है, वह उसकी अतीत की तस्वीर से बिल्कुल भिन्न है। विशेषकर सन् 1756 से 1856 तक के काल खण्ड में देश भर में अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध 40 से भी अधिक बार विद्रोह की आग भड़क उठी थी। तब 1857 के इस क्रान्तिकारी विस्फोट के पीछे इसके उत्स की चिनगारी को ढूंढना आवश्यक हो जाता है। 1857 की इस क्रान्ति के लिए जो माहौल पैदा किया जा रहा था उसे देखने के लिए 1857 से पूर्व होने वाले विद्रोहों और लड़ाइयों को भी देखना होगा कि किस प्रकार भिन्न भिन्न प्रांतों ने अपने स्वाभिमान और स्वराज्य के लिए किस अदम्य साहस और वीरता के साथ अंग्रेजों को चुनौती दी थी। उस मार्ग पर चलते हुए उन्होंने अपना सब कुछ गंवा दिया था। सवाल उठता है कि सन् 1857 को यदि भारत का पहला स्वाधीनता संग्राम मान लिया जाये तो अंग्रेजों के विरुद्ध उन क्रांतियों को क्या संज्ञा दी जाये जो 1857 से पहले अपनी सीमा में प्रचंड और उग्र रूप धारण कर प्रकट हुई थी। क्या उन्हें राष्ट्रीय आन्दोलन में शुमार नहीं किया जाना चाहिए? अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोहों के इतिहास के स्रोत को ढूंढने चले तो सबसे पहले पटना में 1764 में भारतीय सिपाहियों का पहला विद्रोह दिखाई पड़ता है।

पटना में सिपाही विद्रोह :

पटना में मीर कासिम के विरुद्ध लड़ते हुए मनरो की सेना कोउ

पूरी बटालियन ही नवाब कि सेना में मिल गये थे । बाद में गिरफ्तारी के बाद इन सैनिकों पर मुकदमा चलाया गया और अन्त में 24 सिपाहियों को तोप से उड़ा दिया गया था । विद्रोह की आरम्भिक घटनाओं में यह रूप थी ।

बंगाल में सिपाही विद्रोह :

1824 में बंगाल के बैरकपुर में स्थित अंग्रेज फौज की 47वीं नैटिव इन्फेंट्री के भारतीय सैनिकों ने खुला विरोध किया था । इस विरोध के कारण अंग्रेज सिपाहियों ने उन पर निर्दयतापूर्वक गोलियाँ दागी । अनेक सिपाही वहीं ढेर रहे, बाकी का कोर्टमार्शल हुआ जिनमें से अनेक को मौत की सजा सुनायी गयी जिन भारतीय अफसरों ने इस विद्रोह में भाग नहीं लिया था उन्हें भी विद्रोही मानकर बर्खास्त कर दिया गया । इस घटना का प्रभाव इतना अधिक था कि बाद में बराबर इस घटना को 1857 की लड़ाई में प्रेरणा स्रोत बनाया गया ।

पागलपंथी सम्प्रदाय :

पागलपंथी सम्प्रदाय के लोगों ने 1825 में उत्तर बंगाल में विद्रोह कर दिया था । 1840 तक लगातार इस क्षेत्र के लोगों ने अंग्रेजों को परेशान किया । 1857 के विद्रोह से पहले अंग्रेजों के विरुद्ध होने वाले विद्रोहों में सबसे पुराना एवं सबसे प्रमुख "सन्यासी विद्रोह" माना जाता है ।

बंगाल में सन्यासी आन्दोलन :

1770 के अकाल, अंग्रेजों के कठोर व शोषक कानूनों के खिलाफ सन्यासियों का विद्रोह हुआ था । यह भी सामन्त विरोधी आन्दोलन था । ब्रिटिश सत्ता की अराजकता के विरुद्ध सन्यासियों और फकीरों के झुण्डों ने भूखे किसानों का साथ दिया था । काफी कठिनाइयों के बाद वारेन हेस्टिंग्स को इस क्रान्ति को दबाने में सफलता मिली थी ।

महाराष्ट्र में राष्ट्रीय चेतना का उदय :

महाराष्ट्र में राष्ट्रीय चेतना कोई नई बात न थी क्योंकि मराठा जाति में सैन्यबल, धार्मिक एवं राष्ट्रीय चेतना पहले से ही मौजूद थी । स्वामी विवेकानन्द ने अपने शिवा चरित्र में लिखा, "अखण्ड भारत का स्वप्न महाराष्ट्र में सर्वप्रथम समर्थ रामदास और छत्रपति शिवाजी ने देखा था ।"[1]

आंध्र में विद्रोह :

आन्ध्र में सन् 1794 ई० में विजयनगरम के राजा ने अंग्रेजों को उखाड़ फेंकने के लिए सशस्त्र लड़ाई शुरू की थी अनेक भागों में 1768 से 1 3 तक सरकारी क्षेत्र में तथा 1800 से 1 4 तक राजसीमा क्षेत्र में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह होते रहे इस विद्रोह के कारण अंग्रेज सत्ता काफी परेशान हुई थी ।

• भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम - डा० शम्भू केशवराव राउन्द० 4 से उद्धृत

कर्नाटक प्रदेश में विद्रोह :

कर्नाटक प्रदेश में हैदरअली और टीपू सुल्तान ने राष्ट्रीय चेतना को जीवित रखा था । कई बार अंग्रेजों ने इनसे मात खाई थी । कित्तूर की रानी चेन्नम्मा और रायन्ना भी अंग्रेजों के विरुद्ध मोर्चा किये थे एवं राष्ट्रीय चेतना को व्यापक रूप देने का प्रयास किया था ।

केरल में विद्रोह :

केरल में वेलुथम्पी के कारण राष्ट्रीयता का उदय हुआ । 19वीं शताब्दी के आरंभ में केरल राज्य में जो स्वाधीनता संग्राम हुआ था उसके वीर सेनानी थे वेलुथम्पी जिन्होंने अपने देश की रक्षा करने हेतु गांव गांव घूमकर लोगों के मन में राष्ट्रीयता की ज्योति जगायी थी।

मद्रास में विद्रोह :

मद्रास में पांड्य कट्टबोम्मन ने अपने क्षेत्र में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह को प्रबल रूप में उद्घोषित किया । तत्कालीन मद्रास, गवर्नर बैनर्मेन ने कट्टबोम्मन का अंग्रेजों के सामने न झुकने के कारण फांसी की सजा सुनायी ।

पंजाब में विद्रोह :

पंजाब में राष्ट्रीयता सम्बन्धी बात की जाय और तेगसिंह की वीरता का ध्यान न हो तो बात अधूरी ही रह जायेगी । रणजीत सिंह

का बेटा शेरसिंह आपसी फूट का शिकार हो गया था । परिणामस्वरूप वीरतापूर्वक लड़ने के बावजूद अंग्रेजी सेनापति गफ के सामने उसे आत्म-समर्पण करना पड़ा था । छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद ने इसे आधार बनाकर "शेरसिंह का शस्त्र समर्पण" शीर्षक से कविता लिखी ।

बिहार में विद्रोह :

1827 में बिहार में "हो" नामक आदिवासी जाति ने अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध किया परन्तु विफल रही । 1831 में छोटा नागपुर के मुंडा जाति के लोगों ने अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध किया तब "हो" जाति वाले पुनः एक बार उनके साथ मिलकर घमासान युद्ध करने लगे । युद्ध में "हो" जाति के सरदार बुद्धो भगत ने अपनी प्राणों की बाजी लगा दी । इसके अलावा 1831 में कोल विद्रोह तथा 1846 में खोंदविद्रोह हुए जहाँ स्वाभिमान की रक्षा हेतु कमजोर जातियों ने शस्त्र उठाकर अंग्रेजों का सामना किया था ।

आसाम में विद्रोह :

आसाम में भी आदिवासियों ने अंग्रेजों के विरुद्ध ऐसा कठोर युद्ध किया कि अंग्रेजों को भीबाध्य होकर उनकी प्रशंसा करनी पड़ी । आसाम के खासी जाति के आदिवासियों ने अपने वीर राजा तीरोत सिंह के नेतृत्व में लड़ाई की थी । 1830 में खासी, जयन्ती और गारो लोगों ने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह किया । इससे पहले 1828 के "अहोम विद्रोह" भी विख्यात हुआ था ।

उड़ीसा में विद्रोह :

1835 में उड़ीसा के गंजाम जिले में विद्रोह के कारण मार्शल ला लागू

करना पड़ा । वहाँ गुरंदर के जमींदार धनंज्य भंट ने विद्रोह किया था ।

गुजरात में विद्रोह :

1825 से लेकर 1831 तक अंग्रेजों और कच्छ तथा काठियावाड़ की जनता के बीच निरंतर संघर्ष चलता रहा । 1831 में यह विद्रोह अत्यंत उग्र हो उठा और कच्छ की जनता के साथ अंग्रेजों को सशस्त्र संघर्ष करना पड़ा ।

गुजरात का कोली विद्रोह 19वीं सदी में 1820 से लेकर 1850 तक चला था । भीलों के पड़ोसी कोली लोगों ने 1829, 1839 और 1844-48 म में अंग्रेजी गुलामी के खिलाफ कई बार विद्रोह किये थे 1850 में जब इनके नेता गण गिरफ्तार हो गये तभी इस आन्दोलन का अन्त हुआ ।

1844 में सूरत में "कर" बढ़ाने के विरुद्ध अंग्रेजों के खिलाफ व्यापक जन आन्दोलन हुआ था ।

इन सभी घटनाओं को । 57 के विस्फोट की पीठिका और प्रेरणा स्रोत मानना चाहिए । ये सभी विद्रोह राजनीतिक रूप से एक समान संघटित न थे परन्तु इनके पीछे राजनैतिक सामाजिक चेतना प्रतिबिम्बित अवश्य हो उठती है । वहाँ गुलामी के खिलाफ स्वाभिमान को प्रतिष्ठित करने की भावना काम कर रही थी और वे विद्रोह देश भक्ति की ही भावना से भी परिचालित थे ।

57 - सिपाही विद्रोह, स्वाधीनता संग्राम का सामन्ती दृष्टः

अंग्रेजों के विरुद्ध जनता और सिपाहियों के विद्रोहों की सबसे

परम्परा का चरम विकसित रूप 1857 की क्रान्ति है । 1757 के पलासी के युद्ध से लेकर छोटी बड़ी जो लड़ाईयाँ बीच के समय मे लड़ी गई उसका प्रतिफलन 1857 में हुआ ।

1857 की इस क्रान्ति के संबंध में दो राय प्रचलित है । अंग्रेजी हुकूमत और उससे जुड़े इतिहासकार इसे महज "सिपाही विद्रोह" कहते थे तो अनेक इतिहासकार "राष्ट्रीय विद्रोह" और क्रांति बताते है । लोग इसे राजा महाराजाओं की लड़ाई कहते है । इसे हम सिपाही विद्रोह नहीं कह सकते है क्योंकि यह केवल सिपाहियों द्वारा नहीं लड़ा गया था । इसे राष्ट्रीय विद्रोह कहा जा सकता है क्योंकि 1857 के विद्रोह/क्रांति का क्षेत्र कलकत्ता [बंगाल] से पंजाब तक और बिहार मुक्त प्रांत से महाराष्ट्र तक था । इस भूकंप को देश के हर हिस्से में महसूस किया गया था । [यद्यपि एकाध राज्य इस विद्रोह में समान रूप से भाग नहीं लिये थे ।] कुछ लोगों का यह मानना है कि ये केवल राजा महाराजा की लड़ाई थी जिसमें देश की गरीब जनता साथ दे रही थी। परन्तु वस्तु स्थिति इससे भिन्न है । आरंभ में जो सिपाहियों का विद्रोह था वह धीरे धीरे जन विद्रोह का रूप लेता च गया । बहादुरशाह जफर, झांसी की रानी, तांत्या टोपे, नाना फड़नवीस, कुँवरसिंह आदि सभी सामन्त प्रतीक नहीं रहकर विद्रोही चेतना के प्रतीक बन गये थे । इन लोगों का समान लक्ष्य अंग्रेजी राज को उखाड़ फेंकना था, न कि अपना साम्राज्य विस्तार करना । यह राजा महाराजाओं की आपसी लड़ाई नहीं थी बल्कि अंग्रेजों के विरुद्ध अमीर - गरीब, हिन्दू - मुस्लिम भारतीय जनता की एकजुटता की लड़ाई थी। इन बातों में राष्ट्रीयता की

भावना कूट - कूट कर भरी हुई है । 1857 की क्रान्ति इसका ज्वलन्त उदाहरण है । 1857 की क्रांति के पीछे राष्ट्रीयता की भावना उसके प्रतीक चिह्न "रोटी और कमल" से भी व्यक्त होती थी । लोगों की कल्पना में भारत की तस्वीर थी औरलक्ष्य था अंग्रेजों को निकालना । इसके लिए हिन्दू मुसलमान अपना अतीत का आपसी वैमनस्य भुलाकर एक जुट हो गये थे । सामन्त, जमींदार, सामान्य किसान मजदूर सिपाही सब में आपसी एकता के पीछे राष्ट्रीयता की भावना कार्य कर रही थी । जो सामन्त और छोटे राजे अपना निजी स्वार्थ देखते थे वे अंग्रेजों का साथ दे रहे थे या तटस्थ हो गये थे । स्पष्ट ही उनमें वह राष्ट्रीय भावना नहीं थी जो क्रांति के योद्धाओं में थी । कुछ इतिहासकारों का यह मानना है कि यदि देशी नरेश देश के हित के लिए लड़ाई लड़ी होती तो वे इस क्रांति के साथ इस कदर शांत न हो जाते थे । समाज के शीर्ष पद से भ्रष्ट होकर देश की स्वतंत्रता के बारे में सोचना ही भूल गये । परन्तु ऐसे इतिहासकारों को ध्यान रखना चाहिए कि 1857 में भाग लेने वाले क्रांतिकारी वीर नरेश या तो युद्ध में मारे गये थे या उन्हें फांसी की सजा दी गई या जेल में मारे गये थे । वैसे भी संग्राम और महासंग्राम रोज रोज नहीं होते, पर जब तक लक्ष्य पूर्ति नहीं हो जाती तब तक चलते है । 1857 से 1947 तक का ऐतिहासिक समय भारतीय स्वाधीनता संग्राम का सम्बा काल है ।आजादी की ऐसी लड़ाई दुनिया में पहले कहीं नहीं लड़ी गयी थी । 1857 की क्रांति चन्द्रशेखर आजाद, शहीद भगतसिंह, नेता जी सुभाषचन्द्र बोस जैसे क्रांतिकारियों के लिए महान प्रेरणा थी । वहीं इसकी विफलता से सबक लेकर महात्मा गांधी ने अहिंसक आन्दोलन चलाये । सविनय अवज्ञा, करो या मरो, अंग्रेजों

भारत छोड़ो जैसे आन्दोलन उस महासंग्राम के अंग थे जो 1857 के संग्राम के बाद लड़ा गया ।

1857 की विफलता के बारे में गहराई से सोचना आवश्यक है । सत्तावनी क्रांति योजना के नियोजित कार्यक्रम का संभवत: ठीक ठीक पालन नहीं किया जा सका । पुराने सामन्ती जातीय युद्धों की विरासत से पनपे जातीय विद्वेष और पारस्परिक संदेहों को उभारने में अंग्रेज अपनी चालबाजी से कहीं - कहीं सफल हो गए । सीमावर्ती जम्मू काश्मीर और नेपाल राज्यों ने अंग्रेजों की मदद की । हिंदी भाषा - भाषी को छोड़कर अन्य प्रदेशों में क्रांति का उठाव जोरदार नहीं हुआ ।[1] 1857 ने जनता के मन में गुलामी के बन्धन को तोड़ डालने का भाव जागृत किया । अत: 1857 के बाद भी जन आन्दोलन को राष्ट्रीय रूप मिल पाया ।

1857 के विद्रोह का प्रभाव सचमुच व्यापक था । विश्व के कई देश इससे प्रभावित हुए । "सत्तावनी क्रान्ति के ऐतिहासिक महत्व की एक प्रमुख बात यह भी है जिसके कारण चीन और जापान उस समय अंग्रेजों के दासत्व में पड़ने से बच गये ।"[1]

1857 के उपरांत नवीन परिस्थितियाँ :

1857 के विफल होने के बाद भी नवीन परिस्थितियों का उदय हुआ । यह नवीन परिस्थिति क्या है ? अंग्रेजों का दमन चक्र बढ़

---

1. 1857 के स्वाधीनता संग्राम का हिंदी साहित्य पर प्रभाव" - भगवान दास माहोर - पृ० 19

गयी और भारतीयों की विद्रोह चेतना भी बढ़ी । नवीन मानसिकता से उन्होंने नवीन परिस्थितियों का साक्षात्कार किया । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने कहा है, "काल चक्र के फेर से जिस नई परिस्थिति के बीच हम पड़ जाते है, उसका सामना करने योग्य अपने बुद्धि को बनाए बिना जैसे काम नहीं चल सकता वैसे ही उसकी ओर अपनी रागात्मक वृत्ति को उन्मुख किये बिने हमारा जीवन फीका, नीरस, शिथिल और अशक्त रहता है ।"[1] कालचक्र के फेर से भारत अंग्रेजों का गुलाम बन गया । इसी काल चक्र के फेर से अंग्रेजी शासन से सामना करने व उसका तख्ता पलटने का जो उपक्रम भारतीयों ने किया उसमें आधुनिकता का आह्वान था, वही आधुनिक बोध था, उसी को "नवजागरण" कहा जा सकता है ।

1857 से हिंदी नवजागरण का प्रारंभ माना गया । 1857 का असर हिंदी प्रांत और हिंदी साहित्य पर पड़ा । 1857 के स्वाधीनता संग्राम से हिंदी साहित्य में भी युगान्तर उपस्थित हुआ । 1857 से भारतीय जीवन में जो एक महान परिवर्तन, एक क्रांति, एक युगान्तर आया वह समस्त भारतीय साहित्य में प्रतिफलित हुआ । गुजराती साहित्य में नर्मद, मराठी साहित्य में चिपलूणकर, बंगला साहित्य में बंकिम और हिंदी साहित्य में भारतेन्दु इस युगान्तर के प्रतिनिधि साहित्यकार कहे जाते है । इस क्रान्ति और युगान्तर की मुख्य बात यही है कि "नरेश युग" समाप्त हुआ और "जन युग" आरंभ हुआ । सामन्ती नरेशों के प्रति अनास्था और उनकी विदेशियों के प्रति दास

- -

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल - पृ. 538

वृत्ति की भर्त्सना के स्वर हिंदी साहित्य में प्रकट हुए। ...ब्रिटिश राज के प्रति प्रत्यक्ष रूप में भक्ति व्यक्त करते हुए भी इस युग के साहित्यकार देशी नरेशों के प्रति भर्त्सना बिना किसी हिचक के बड़े खुले रूप में व्यक्त करते है।*[1] इस प्रकार 1857 आधुनिक हिंदी साहित्य का द्वार है अतः इसे मध्य और आधुनिक का संधि युग या संक्रान्ति काल भी माना जा सकता है। इस युग के साहित्यकार, समाज सुधारक, पत्रकार और प्रचारक अधिक थे। अतः इन्होंने पत्र-पत्रिकाओं एवं साहित्य में "हिन्दू समाज में प्रचलित कुरीतियों, धार्मिक मिथ्याचार, छल कपट, अमीरों की स्वार्थपरता, पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगे शिक्षित वर्ग की कटु आलोचना, पुलिस और कर्मचारियों की लूट खसोट, अदालतों में प्रचलित अन्याय, अनीति, उर्दू के प्रति सरकार का पक्षपात, देश की सामान्य दुरवस्था, अकाल, महामारी के प्रकोप, अंग्रेजी शासन के आर्थिक शोषण आदि नवीन विषयों का समावेश किया।*[1] इन नवीन विषयों को ग्रहण करने में सहायक है तत्कालीन लेखकों की राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक चेतना। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इस युग के प्रतिनिधि साहित्यकार है। आचार्य शुक्ल के भारतेन्दु के प्रति कहे गये शब्द उनके व्यक्तित्व के परंपरागत और आधुनिक दोनों रूपों को स्पष्ट करते है --"अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल से एक ओर तो वे पद्माकर और द्विजदेव की परम्परा में दिखाई पड़ते है, दूसरी ओर बंग देश के माइकेल और हेमचन्द्र की श्रेणी में। एक ओर तो राधाकृष्ण की भक्ति में झूमते हुए नई भक्तमाल गूंथते हुए दिखाई देते थे, दूसरी

- -

• हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ - डा० शिवकुमार शर्मा - पृ० 42 -430

और मन्दिरों के अधिकारियों और टीकाधारी भक्तों के चरित्र की हँसी उड़ाते और स्त्री शिक्षा, समाज सुधार आदि पर व्याख्यान देते पाये जाते थे ।"[1]

भारतेन्दु का व्यक्तित्व और कृतित्व अद्भुत पकड़ और आकर्षक था । वे अँग्रेजी शासन के विरोधियों में से थे । अपनी जातीय अस्मिता के प्रति अत्यंत सजग रहते थे । समाज सुधार, शिक्षा, नारी, उत्थान आदि साहित्य के इतर क्षेत्रों में भी उन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किये । देश भक्ति स्वातंत्र्य चेतना, प्रगति कामी भावना आदि को अपनी रचनाओं के माध्यम से उन्होंने अभिव्यक्ति दी ।

भारतेन्दु युगीन कविता :

भारतेन्दु कालीन कविता के विकास में भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास, राधाकृष्ण दास और बदरीनारायण चौधरी का नाम उल्लेखनीय है । इन कवियों की कविताओं में देश भक्ति का स्वर ऊँचा है । वहाँ कहीं कहीं राजभक्ति की अनुगूँज भी सुनायी देती है । मगर वह "पोलेमिकल" है । अपने समय के भारतेन्दु प्रतिनिधि साहित्यकार है । "इनकी कविता में कहीं अतीत के गौरव की गर्व गाथा, कहीं वर्तमान अधोगति की क्षोभ भरी वेदना, कहीं भविष्य की भावना से जगी हुई चिन्ता, कहीं भक्ति के पद, कहीं शृंगार रस के कवित्त और सवैये, कहीं उपदेश और सूक्तियाँ, तो कहीं उत्सव वर्णन है ।[2]

---

1. हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ-डा शिवकुमार शर्मा-पृ.43

2. -वही- पृ. 43

भारतेन्दु ने अधिक निबंधों की रचना नहीं की परन्तु उनके अनुयायी प्रतापनारायण मिश्र इस क्षेत्र में अधिक सफल हुए । देश भक्ति और राजभक्ति सम्बन्धित विषयों के अलावा बुढ़ापा तथा गो-रक्षा आदि विषय पर भी कविता रचना की । मिश्र जी "हर गंगा", "तृप्यंताम", "बुढ़ापा" आदि रचनाएं काफी लोकप्रिय हुई । इनकी "हिंदी की हिमायत" नामक कविता भी उस ज़माने में बहुत मशहूर हुई ।

उपाध्याय और प्रेमघन ने तत्कालीन कवियों के विषयों के अतिरिक्त विशेष उत्सवों और अवसरों पर आनन्द प्रकट करने के लिए प्रशस्तियां लिखी । कहीं कहीं इन प्रशस्तियों में ब्रिटिश शासन की प्रशंसा भी की गई है परन्तु उस युग में देश भक्ति और राजभक्ति का जो संबंध था उस पर सूक्ष्मता और संवेदनशीलता से विचार किया जाना चाहिए । जैसे भारतेन्दु जब कहते हैं -

"अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी ।
पै धन बिदेस चलि जात यहै अति ख्वारी ।।"

तो यह देखना ज़रूरी है कि क्या यह अंग्रेज़ी राज की प्रशंसा है या उसकी आलोचना ? अंग्रेजों ने जो सुख - सुविधाएं पैदा की थी वे आम जनता के लिए नहीं, मुट्ठी भर खास लोगों के लिए और जिसकी आड़ में वे हमारे देश का धन लूटकर ' इंग्लैण्ड पहुंचा रहे थे ।

इसी तरह "जगी की क्टोरिया मी चिर जीवहु सदा विक्टोरिया रानी" में विक्टोरिया की स्तुति या प्रशस्ति का होना ज़रूरी बात है;

मगर सभी पद यमक [विक्टोरिया - विक्टोरिया] के प्रयोग से कवि का उद्देश्य व्यंग्य और हास्य उत्पन्न करना है, इसे मद्दे नजर रखना भी जरूरी है ।

अम्बिकादत्त व्यास ने नवीन और प्राचीन दोनों विषयों पर फुटकर कविताएं लिखी और ये कविताएं तत्कालीन पत्र - पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थी ।

ठाकुर जगमोहन सिंह ने नवीन विषयों पर नहीं बल्कि प्राचीन संस्कृत काव्यों के प्रकृति वर्णन की भांति विविध प्रदेश के रमणीय स्थलों का सुन्दर वर्णन किया है । वे अच्छे गद्यकार भी थे ।

डा० इन्द्रनाथ मदान, "आधुनिक कविता का मूल्यांकन [पृ० 13] में लिखते है, "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र स्वयं पुरातन एवं नवीन की द्विधा से ग्रस्त है । उनका हृदय प्राचीन के मोह में जकड़ा हुआ है और उनका मस्तिष्क नवीन के प्रति उन्मुख है ।इसलिए अपनी काव्य रचनाओं में प्राय: परम्परावादी है और गद्य रचनाओं में प्राय: आधुनिकता का आभास देते है ।" भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपनी कविता "विजयिनी विजय वैजयन्ती" में भारत की वर्तमान दुरावस्था का करुण चित्रण किया है -

मोई भारत भूमि भई सब भांति दुखारी ।
रह्यो न एकहु वीर सहस्त्रन कोस मंझारी ।।
होत सिंह को नाद जौन भारत वन माही ।
तहँ अब ससक सियार स्वान खर आदि लखाहीं ।।

धन विद्या बल मान वीरता कीरति छाई ।
रही तहँ तित केवल अब हीनता लुनाई ।।"[1]

प्रतापनारायण मिश्र ने इस कविता में अतीत की भारतीय संस्कृति विद्या, वीरता यश आदि पर गर्व करते हैं -

जय जय जगत शिरोमणि भारत,
निज गौरव हित जासु वदन विधु सब संसार निहारत,
बुधि विद्या वीरता बड़ाई जासों रहहिं सदा रत ।
जासु दिव्य उपदेश पाय सब निज आचरण सुधारत,
जासु सपूत पवित्र प्रीति निज तन मन धन वारत ।।[2]

भारत की मान एवं प्रतिष्ठा अंग्रेजी राज के साथ ही धूल में मिल गयी ।

जो भारत जग में रह्यो सब सों उत्तम देस,
ताही भारत में अब नहीं सुख को लेस ।।[3]

इस काल के कवियों ने 1857 के विद्रोह की ओर भी ध्यान दिया । इस विद्रोह से सामान्य जीवन में सचेतता आई थी । यद्यपि इस घटना से आलोच्य कालीन कवि समोवेश प्रभावित थे परन्तु कई कारणों से इस विषय पर लेखकों ने अपने विचारों की अभिव्यक्ति नहीं की । बहुत कम संख्या में हम 1857 के इस क्रांति पर सामग्री मिलती है । एक उदाहरण [प्रतापनारायण मिश्र की] इस कविता में देखा जा सकता है -

- -

1. ब्रजरत्न दास [सम्पादक]-भारतेन्दु सुधावली, भाग-2, पृ. 805
2. प्रतापनारायण मिश्र -ब्राह्मण पत्रिका, खंड-5, संख्या -5, पृ. 5
3. ब्रजरत्नदास [सम्पादक] भारतेन्दु सुधावली, भाग-2, पृ. 805

सन सत्तावन माहिं जबहिं कछु सेना बिगरी ।
तब राजा दिशी ही वही युद्ध के परजा सिगरी ।।
दुष्ट समुझि अपने भाइन कहँ साथ न दीन्हो ।
भोजन बिन विद्रोहिन कर दल निरबल कीन्हीं ।।
ठौर ठौर निज घर लुटवाए अरु फुंकवाए ।
प्राण खोय बहु ब्रिटिश वर्ग के प्राण बचाए ।।[1]

प्रतापनारायण जी को दुःख इस बात का है कि भारतीय सैनिकों के साथ अपने देशवासी राजाओं ने धोखेबाजी की जब कि हमारे देश की जनता ने अपनी जान देकर भी अनेक विदेशियों के प्राण बचाए ।

आर्थिक शोषण सम्बन्धी कविता की झांकी प्रस्तुत करने वाला एक उदाहरण इस प्रकार है -

भागो भागो अब काल पड़ा है भारी।
भारत पै घेरी घटा विपत की कारी ।
- - - - - - - -
अब बची खुची खेती ए छिनन लागी ।
बारहु दिसि लागी है महंगी की आगी ।।[2]

- -

1. पं० प्रतापनारायण मिश्र -ब्रेडला स्वागत, ए॰10|1889| को भारतेन्दु युगीन साहित्य में राष्ट्रीय भावना - पुष्पा घोजा-पृ॰सं० 74-75 से उद्धृत
2. बदरीनारायण चौधरी -प्रेमघन सर्वस्व कविता कौमुदी -पृ॰ 38 को भारतेन्दु युगीन साहित्य में राष्ट्रीय भावना-पृ॰ 75से उद्धृत

एक तो देश की जनता को पेट भर खाने तक को नसीब नहीं, ऊपर से ब्रिटिश सत्ता के करों की मार । वे किस तरह जीवन यापन करें ?

कछु तो वेश्या में गयो, कछु राजकर माहीं,
बाकी सब व्योहार में गयो रह्यो कछु नाहिं ।[1]

अंग्रेजी बहुविध शोषण नीति से देश किस कदर पिसा जा रहा था और यहाँ के माल पर अंग्रेज किस तरह मजे उड़ा रहे थे । इसका प्रेमघन जी ने अपनी "होली की नकल या मोहर्रम की शक्ल" नामक कविता में बड़े रोचक ढंग से उल्लेख किया है । वे लिखते हैं -

"लूटि विलायत भारत खाय । माल तास बहुविध पैराय ।।
ताको मामूली लूटि जाय । जामें मागै माप दिखाय ।।
देसी माल न यहाँ बिकाय । घाटा भारत के सिर जाय ।।
रोओ सब .... । हाय हाय .... ।।
रहे विलायत जो हरखाय । भारत सो धन रोज कमाय ।
चैन करे जो मजे उड़ाय । जिनका टिकस भी घट जाय ।।
यह अचरज देखो तो भाय । शोषण बुद्धि विषम हो जाय ।।
रोओ सब ...... । हाय हाय .... ।।"[2]

---

1. ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रंथावली - भाग-2, पृ. 736
2. "प्रेमघन - सर्वस्व" - प्रथम भाग, द्वितीय वृत्ति, पृ. 126 - 27

डॉ. रामचन्द्र पुरोहित के प्रेमघन और उनका कृतित्व से उद्धृत ।

भारतेन्दु युगीन कवियों ने सामाजिक कुरीतियों पर जम कर व्यंग्य लिये -

> बावे जाय न मन्त्र कछु पढ़े लिखे है ताहिं ।
> धन पैसा अरु दच्छिना, इतनो बोलत जाहि ।।[1]

बाल विधवाओं की शोचनीय दशा पर करुणा प्रकट करते हुए श्रीधर पाठक इस प्रकार लिखते है -

> दुःखी बाल विधवाओं की जो है गती,
> कौन सके बतला किसकी है मती ।
> जिन्हें जगत की सब बातों से ज्ञान है,
> दुःख सुख मरना जीना एक समान है ।
> जिनको जीते जी ही गई तिलांजली
> उनकी कुछ हो दशा किसी को क्या पड़ी ।'[2]

इसी तरह मद्यपान आदि के बारे में भी कवियों ने लिखा । अंग्रेजी राज्य में पढ़े लिखे होने के बावजूद नौकरी नहीं मिलती । इसका उल्लेख बालकृष्ण भट्ट ने किया है -

> एफ॰ए॰, बी॰ए॰, एम॰ए॰ कालेज के पढ़ने वाले ।
> पहने है कोट बूट और ऐनकी धरी मगवाले ।
> रंग रंग के रोज रोज वो पट्टे गले में डाले ।
> फिरते है नौकरी को सर्टीफिकेट निकाले ।

- -

1. बालमुकुन्द गुप्त निबंधावली - प्रथम भाग, पृ॰ 590, भारतेन्दु युगीन साहित्य में राष्ट्रीय भावना - पृ॰ 85 से उद्धृत
2. श्रीधर पाठक -'मनोविनोद' -पृ॰ 76 को भारतेन्दु युग साहित्य में राष्ट्रीय भावना - पृ॰ 87 से उद्धृत

इनको भी कद कहीं नहीं मिलते हैं नौकर ।
ढूँढ़े से कद कहीं नहीं मिलती है नौकरी ।।[1]

कवि भारतवासियों की दुर्दशा को सुधारने के लिए सदैव चिन्तित है । कवि जनता को उनकी वास्तविक स्थिति से अवगत कराकर उसे सचेत करना चाहता है और उसी से उनमें नवजागरण का संचार करने का प्रयास करता है । भारतेन्दु ने अपनी भाषा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा -

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल ।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय के सूल ।।

इस युग में कविता क्षेत्र में ब्रजभाषा का प्रयोग होता रहा और गद्य क्षेत्र में खड़ी बोली का । भारतेन्दु तथा उस काल के अन्य कवियों ने खड़ी बोली में भी पद्य रचना करना चाहा, किन्तु वे उसमें सफल नहीं हुए । भारतेन्दु कालीन कविता में भाव, भाषा और छंद सभी में प्राचीनता का परिष्कार और नवीनता का समावेश हुआ । लोक प्रचलित गीतों- लावनी, कजली, झूमरी आदि को साहित्य में स्थान मिला । डा० राम विलास शर्मा भारतेन्दु युग का साहित्यिक मूल्यांकन करते हुए लिखते हैं, "प्रथम उत्थान नव युग का आरंभ मात्र था । इसलिए हमें इस समय की कविता में उस कलात्मकता के दर्शन नहीं होते जो कालांतर में सतत परिश्रम से प्रकट हुई । काव्य विषयों के सर्वथा नवीन होने के कारण इनकी कलापूर्ण अभिव्यक्ति के लिए समय की आवश्यकता थी ।"[2]

- -

1. पं० बालकृष्ण भट्ट - हिंदी प्रदीप, पृ. 35-37 सितंबर, अक्तूबर, नवंबर- 1896 को भारतेन्दु युगीन साहित्य में राष्ट्रीय भावना-पृ.89
2. डा० शिवकुमार शर्मा- हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ-पृ. 433

भारतेन्दुयुगीन नाटक :

भारतेन्दु काल राष्ट्रीय जागरण तथा नव सांस्कृतिक चेतना का उन्मेष युग है । इस युग में जहाँ एक ओर जन सामान्य में राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ वहाँ दूसरी ओर सामाजिक और धार्मिक जागरूकता आई । नव जागृति के संक्रमण काल में जन जीवन में राष्ट्रीयता और सांस्कृतिक चेतना के लिए नाटकों का माध्यम अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ । वहाँ दूसरी ओर सामाजिक और धार्मिक जागरूकता आई । नव जागृति के संक्रमण काल में जन जीवन में राष्ट्रीयता और सांस्कृतिक चेतना के लिए नाटकों का माध्यम अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ । लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय के शब्दों में --"बीसवीं शताब्दी साहित्य के हिंदी जीवन में जो स्थान उपन्यास साहित्य का है; या जो पूर्व आधुनिक कालों में महाकाव्य का स्थान था, वही स्थान भारतेन्दु युग में नाट्य साहित्य का था । उसमें जीवन के नवीन सत्यों की उपलब्धि और आत्म संस्कार का सार्वभौम एवं अभिनन्दनीय प्रयास है ।"[1] भारतेन्दु ने अपने नाटकों में जनजागरण, देश प्रेम और राष्ट्रीय भावना की पृष्ठभूमि तैयार की । राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने के लिए "भारत दुर्दशा" में भारतेन्दु ने भारत के अतीत का गौरवशाली तथा वर्तमान का दयनीय चित्र प्रस्तुत किया -

सबके पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनो ।
सबके पहिले जेहि सभ्य विधाता कीनो ।।
सबके पहिले जो रूप रंग रस भीनो ।

- -

1. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय -भारतेन्दु युगीन हिंदी नाटक [लेख]
डा० नगेन्द्र :सेठ गोविन्द दास अभिनन्दन ग्रंथ - पृ० 300

सबके पहिले विद्याफल जिन गहि लीनो ।।
सबके पीछे सोई परत लखाई ।
हा हा भारत दुर्दशा न देखी जाई ।।[1]

तत्कालीन साहित्यकारों ने अतीत के पराक्रमी वीर, महात्मा आदि के चरित्रों का उदाहरण दे देकर देश की जनता के सामने राष्ट्रीयता की भावना को जगाने का स्तुत्य प्रयास किया । यही भावना भारतेन्दु के अन्य नाटकों "सत्य हरिश्चन्द्र", "नील देवी" आदि में भी मुखरित हुई है । पं० प्रतापनारायण मिश्र ने अतीत का गौरव गान करते हुए "कलि कौतुक रूपक" में इसका सजीव चित्रण किया है । बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन ने "भारत सौभाग्य" में तथा राधाकृष्ण दास ने "महाराणा प्रताप" नाटक में भारत के अतीत का गौरव गान किया है । ब्रिटिश सरकार साम, दाम दंड और भेद की नीति में पटु थी । वह लोभ और भय के सहारे राज करती थी । अखबारों और किताबों पर सेंसर का सूत्रपात भी उसने किया । अतः सरकार का कोप भाजन बनने से बचने के लिए लेखकों और कवियों ने अंग्रेजी राज की प्रशंसा भी की । अम्बिकादत्त व्यास ने "भारत सौभाग्य" नाटक में अंग्रेजी राज्य के प्रति श्रद्धा की भावना प्रकट की है और अंग्रेजी राज्य को भारत के सौभाग्य का कारण माना है ।[2] भारत सौभाग्य नाटक में भारत दुर्भाग्य भयभीत होकर कहता है कि -हा आज अंग्रेजी राज्य क्या हुआ

- -

1. सं० शिवप्रसाद मिश्र -भारतेन्दु ग्रंथावली [नाटक] प्रथम खंड भारत दुर्दशा-पृ० 133
2. भारतेन्दु युगीन साहित्य में राष्ट्रीय चेतना -पुष्पा दोजा-पृ० 104

ज्ञात हुआ । मैंने दैवयोग से किसी न किसी उद्योग से एक बेर गदर करवा दी । पर हां । अब तीस तीन वर्ष बीते और कहीं स्वीकार का नाम नहीं ।"[1] इन शब्दों के द्वारा नाटककार अप्रत्यक्ष रूप से क्रांति का आह्वान करते है । अतः कुछ विद्वानों का मत है कि राजभक्ति के माध्यम से इन साहित्यकारों ने देश भक्ति का शंखनाद किया । "भारत दुर्दशा" में लेखक ने तत्कालीन परिस्थितियों का यथार्थ वर्णन किया । परस्पर वैमनस्य, कलह, आलस्य, बीमारी, महंगाई तथा टैक्स आदि के कारण भारतीयों में प्रेम भाव एवं एकता ही समाप्त हो चुकी है । "जब स्नेह ही नहीं तब देशोद्धार का प्रयत्न कहां"[2] भारत दुर्दशा की ये पंक्तियां इस बात की पुष्टि करती है - "अब हिन्दुओं को खाने मात्र से काम । देश से कुछ काम नहीं । राज न रहा पेनशन ही सही । रोजगार न रहा सूद ही सही ।"[3]

आर्थिक शोषण इस काल की प्रमुख समस्या थी । तत्कालीन आर्थिक स्थिति का वर्णन भारतेन्दु ने भी भारत दुर्दशा में की है -

अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी ।
पै धन बिदेश चलि जात इहै अति ख्वारी ।।
ताहू पै महंगी काल रोग बिस्तारी ।
दिन दिन दूने दुःख ईस देत हा हा री ।
सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई ।
हा हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई ।[4]

---

1. अम्बिकादत्त व्यास - "भारत सौभाग्य" - पृ. 4-5
2. सं. शिवप्रसाद मिश्र "रुद्र" काशिकेय - भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग- |भारत दुर्दशा| पृ. 3
3. -वही- पृ. 40
4. -वही- पृ. 134

भारतेन्दु ने "अंधेर नगरी और चौपट राजा" के माध्यम से तत्कालीन शासक की अन्यायपूर्ण नीति एवं अत्याचारों का व्यंग्यात्मक शैली में वर्णन किया है। सामाजिक कुरीतियों का उल्लेख व उनका खंडन करने का साहस व कर्त्तव्यनिष्ठता तत्कालीन लेखकों में थी। नाटक यथार्थ अभिव्यक्ति का माध्यम बना। सामाजिक चेतना को उभारने वाले नाटकों में "बाल विवाह", "दु:खिनी बाला", "बाल विवाह सन्ताप", "विवाह विडम्बन", "वृद्धावस्था विवाह", आदि का उल्लेख किया जा सकता है। बाल विवाह, अनमेल विवाह, विधवा विवाह वेश्यावृत्ति, मद्यपान, शिक्षा का अभाव एवं विदेशी अंधानुकरण आदि समस्याओं पर तत्कालीन साहित्यकारों ने नाटकों के माध्यम से प्रकाश डाला।

भारतेन्दु के नाटकों में नवजागरण का स्वर गूंजा था। देश भक्ति का सही उद्गार समाज सुधार के द्वारा ही संभव है। इस तथ्य को भारतेन्दु ने पहचाना। अत: अनमेल विवाह जैसी जटिल समस्या को लेकर "विषस्य विषमौषधम्" नामक नाटक की रचना की। भट्ट जी ने "शिक्षा दान" नामक सामाजिक नाटक के द्वारा राष्ट्रीय उन्नति का सपना देखा था।

प्रतापनारायण मिश्र के "कलि कौतुक" तथा भारतेन्दु के "वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवति" में सामाजिक कुण्ठाओं का वर्णन करते हुए उनके निराकरण पर जोर दिया था। "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" में योगी, सन्यासियों और ढोंगियों की कटु आलोचना की गई क्योंकि वे मांस मदिरा पान करते थे। नारी जागरण की भावना उद्दीप्त

करने वाले नाटकों में "नीलदेवी" सर्वोपरि है । नाटककार अपने उद्देश्य को इस प्रकार स्थापित किया है - जिस प्रकार अंग्रेज स्त्रियाँ सावधान होती है, पढ़ी लिखी होती है, घर का काम काज संभालती है और अपने सन्तान गन कोशिक्षा देती है, अपना स्वत्व पहचानती है, अपनी जाति और देश की सम्पत्ति विपत्ति को समझती है, उसमें सहायता देती है, उसी भांति हमारी गृह देवियाँ भी वर्तमान हीना-वस्था का उल्लंघन करके कुछ उन्नति प्राप्त करें, यही लालसा है । इस उन्नति पथ का अवरोध हम लोगों की वर्तमान कुल परम्परा मात्र है और कुछ नहीं ।"[1]

राधाचरण गोस्वामी की "सती चन्द्रावली" नारी जागरण की भावना को अभिव्यक्त करती है । इसी लेखक ने "पद्मावती" नाटक के द्वारा समाज में नारी के स्थान को प्रतिष्ठित बनाया । उनके इस नाटक से स्त्रियों में नव चेतना आई । "शिक्षा दान" जैसा काम वैसा परिणाम", "दुःखिनी बाला" आदि नाटकों में नारी की सामाजिक स्थिति तथा संबंधित समस्याओं पर ध्यान दिया गया तथा नारी के उत्थान संबंधी विचारों को प्रतिपादित करने का प्रयास किया गया । इस काल के कवियों में स्वाधीनता की भावना मुखर हो उठी है । राधाकृष्ण दास के "महाराणा प्रताप" में इसका उदात्त स्वर इस प्रकार मुखरित हो उठा है -

- -

1. सं. शिवप्रसाद मिश्र "रुद्र" काशिकेय। भारतेन्दु ग्रंथावली - प्रथम खण्ड [नील देवी] पृ. 102-103

पराधीन ह्वै कौन चहै जीवो जग माहीं ।
जो पहिरै दासत्व शृंखला निज पग माहीं ।
एक दिन की दासता अहै शत कोटि नरक सम ।
पल भर को स्वाधीन पाने स्वर्ग हु ते उत्तम ।[1]

भारतेन्दु युगीन हिंदी निबंध :

हिंदी में निबंध साहित्य का सूत्रपात राष्ट्रीय जागरण के उषा-काल अर्थात् भारतेन्दु युग से हुआ है । भारतेन्दु युगीन साहित्य का दायित्व निश्चित रूप से बहुमुखी था । एक तरफ तो सामाजिक सुधार व सांस्कृतिक विकास करना तो दूसरी तरफ राजनीतिक चेतना को जगाना । ऐसे में साधारणत: पत्र - पत्रिकाओं में किसी आन्दोलन का विवरण या किसी बात की चर्चा करने के लिए निबंध एक उपयोगी विधा साबित हुआ । तत्कालीन निबंधों के विषय में व्यापकता थी । राजनीतिक विचार, समाज सुधार या सांस्कृतिक विचार सभी विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए निबंध एक सफल व सशक्त माध्यम बना । इस युग के प्रमुख निबंधकार हैं --भारतेन्दु, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन, ज्वाला प्रसाद, तोताराम, अम्बिका दत्त व्यास और राधाचरण गोस्वामी आदि । धर्म, समाज, राजनीति आलोचना, खोज यात्रा, प्रकृति वर्णन, आत्म चरित और व्यंग्य विनोद आदि सभी विषयों पर भारतेन्दु ने निबंध लिखे हैं । भारतेन्दु ने 'भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है' निबंध में लिखा है --'चारों ओर

---

1. राधाकृष्ण दास - महाराणा प्रताप, पृ. 17

दरिद्रता की आग लगी हुई है । किसी ने ठीक कहा था कि दरिद्र कुटुम्ब इस तरह अपनी इज्जत को बचाता फिरता है जैसे लाजवती बहू फटे कपड़ों में अपने अंग छिपाए जाती है । वही दशा हिन्दुस्तान की है । मर्दुमशुमारी कीरिपोर्ट देखने से स्पष्ट होता है कि मनुष्य दिन दिन यहाँ बढ़ते जाते है और रुपया दिन दिन कमती होता जाता है । तो अब बिना ऐसा उपाय किए काम नहीं चलेगा कि रुपया भी बढ़े और वह रुपया बिना बुद्धि बढ़े न बढ़ेगा । भाइयों ! राजा महाराजों का मुँह मत देखो और न यह आशा रखो कि पंडित जी कथा में ऐसा उपाय बतलावेंगे कि देश का रुपया और बुद्धि बढ़े । तुम आप ही कमर कसो, आलस छोड़ो, कब तक अपने को जंगली, हूस, मूर्ख बोदे, डरपोकने पुकरवाओगे, दौड़ो, इस घुड़दौड़ में जो पीछे पड़े तो फिर कहीं ठिकाना नहीं है ।"[1]

प्रतापनारायन मिश्र भारतेन्दु के पदांक का अनुसरण करने वाले तत्कालीन प्रमुख लेखकों में एक थे । तत्कालिक काल के राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों से जनता का परिचय करवाया एवं स्वदेश प्रेम को जागृत किया । "स्वतंत्रता", "उन्नति की धूम", "देशी कपड़ा" "कांग्रेस की जय", "इनकम टैक्स", "भारत का सर्वोत्तम गुरु", "धरती माता की जय", आदि निबंधों में राष्ट्रीयता के पुष्ट दर्शन होते ही है । अन्य निबंधों जैसे "त", "ट", "दांत", "भौं", "स्वार्थ", "आप" "धोखा" आदि में भी उन्होंने प्रतीकात्मक रूप से भारतीयों को जगाने का कोशिश की है ।

- -

1. सं. ब्रजरत्न दास - भारतेन्दु ग्रंथावली [तीसरा खंड] भारत वर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है - पृ. 899

बालकृष्ण भट्ट ने भी देश प्रेम एवं स्वभाषा प्रेम से संबंधित विषयों पर निबंधों की रचना की । इनके "नवीन", "प्रताप पीयूष" तथा प्रताप समुच्चय" तीन निबंध संग्रह थे ।

बालमुकुन्द गुप्त प्रारंभ में उर्दू भाषा में लिखते थे । बाद में वे हिंदी क्षेत्र में आए । "शिवशम्भु का चिट्ठा" तथा "खत" जैसी व्यंग्यात्मक रचनाओं से हिंदी जगत में तहलका मच गया । इनके अतिरिक्त ज्वाला प्रसाद, तोताराम, राधाचरण गोस्वामी तथा अम्बिकादत्त व्यास निबंध लेखन में माहिर थे ।

भारतेन्दुयुगीन उपन्यास :

भारतीय संस्कृत साहित्य में हितोपदेश, पंचतंत्र, कथा सरित्सागर, बृहत्कथा, वेताल पंचविंशति, वासवदत्ता, दशकुमार चरित तथा कादंबरी आदि ग्रंथों में औपन्यासिक तत्व परिलक्षित परिमाण में प्राप्त होता है । कई विद्वान भारत में उपन्यास का विकास अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव और संपर्क से हुआ मानते हैं । ।कहीं कहीं के हिंदी उपन्यास का उद्भव और विकास अंग्रेजी साहित्य के परिणामस्वरूप हुआ, ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता । यह सोचा जाता है कि भारत के जो प्रदेश अंग्रेजी सम्पर्क में पहले आए, उनमें उपन्यासों का सृजन अपेक्षाकृत कुछ पहले हुआ। जो हो, यह तथ्य है कि बंगला में उपन्यासों की रचना हिंदी से पहले आरंभ हो गई । हिंदी में बंगला उपन्यासों और नाटकों के अनुवाद भी हुए । संभव है इस तरह से हिंदी उपन्यास साहित्य पर बंगला के अनेक लेखकों का प्रभाव पड़ा हो । यह ठीक है

कि आधुनिक उपन्यास का विकास यूरोप में हुआ, भारत में नहीं; किन्तु हिंदी में उपन्यासों का विकास, पाश्चात्य उपन्यास साहित्य के अनुकरण पर नहीं हुआ । हिंदी में उपन्यासों के पूर्व बंगला साहित्य में यह अंग काफी विकसित हो चुका था और कदाचित् बंगला साहित्य की देखा देखी हिंदी में भी उपन्यासों का सूत्रपात हुआ । प्रारम्भिक काल में बंगला के उपन्यासों का हिंदी में अनुवाद भी कोई कम नहीं हुआ ।"[1]

भारतेन्दु ने "पूर्ण प्रकाश और चन्द्र प्रभा" नामक उपन्यास का अनुवाद किया था । परन्तु हिंदी का सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास श्रीनिवास दास कृत "परीक्षा गुरु" है । अध्ययन की सुविधा के लिए डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने इस काल के उपन्यास साहित्य को चार भागों में बांटा है |1| सामाजिक उपन्यास - इनमें सुधार और नीति के साथ प्रेम और शौर्य का मिश्रण बताया है । |2| नीति और शिक्षा संबंधी उपन्यास इनमें सामाजिक उद्देश्य भी निहित है |3| तिलस्मी और जासूसी उपन्यास जो मनोरंजन के साधन मात्र है । |4| मौलिक उपन्यास - इनका उद्देश्य राष्ट्र प्रेम और सामाजिक सुधारों का प्रचार था ।"[2] डा० विजय शंकर मल्ल के मतानुसार -"भारतेन्दु, राधाचरण गोस्वामी प्रेमघन, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र आदि ने अपने निबंधों में पुरानी रचना रूढ़ियों को छोड़कर जिस स्वच्छता से समकालीन समाज को चित्रित किया उसने आधुनिक उपन्यास के आविर्भाव और विकास में परोक्ष रूप से सहायता दी ।"[3]

- -

1. शिवकुमार शर्मा : हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियां - पृ० 514
2. भारतेन्दु कालीन साहित्य में राष्ट्रीय भावना - पृ० 166
3. -वही- पृ० 166

रत्नचन्द प्लीडर का "नूतन चरित" बालकृष्ण भट्ट का "नूतन ब्रह्मचारी" तथा "सौ अजान और एक सुजान", राधाकृष्णदास का "निःसहाय हिन्दू", राधाचरण गोस्वामी और देवीप्रसाद शर्मा का "विधवा विपत्ति" किशोरीलाल गोस्वामी का "त्रिवेणी लता" और "कुसुम कुमारी"; बालमुकुन्द गुप्त का "कामिनी" आदि तत्कालीन उल्लेखनीय सामाजिक उपन्यास है । इसके अतिरिक्त किशोरी गोस्वामी, जगन्नाथ मिश्र और काशीप्रसाद आदि अनेक लेखकों ने प्रेमाख्यानक उपन्यास लिखे जिनमें प्रेम का वर्णन है । प्रेमचन्द के आगमन तक इन लेखकों ने बंगला से नई उपन्यासों का हिंदी में अनुवाद किया । स्वयं भारतेन्दु ने एक उपन्यास का अनुवाद किया था । प्रतापनारायण मिश्र और राधाचरण गोस्वामी ने बंगला के कई उपन्यासों का हिंदी में अनुवाद किया था । प्रताप-नारायण मिश्र और राधाचरण गोस्वामी ने बंगला के कई उपन्यासों का हिंदी में अनुवाद किया । प्रतापनारायण मिश्र द्वारा अनूदित कपाल कुण्डला प्रमुख अनूदित उपन्यासों में से एक था । गदाधर सिंह ने बंग विजेता और दुर्गेशनन्दिनी कार्तिक प्रसाद खत्री ने इला, प्रमिला, जया और मधुमालती तथा रामकृष्ण वर्मा ने चित्तौड़ चातकी आदि कई उपन्यासों के अनुवाद किये । जहाँ बंगला के उपन्यास लेखक - बंकिमचन्द्र, शरत्चन्द्र, राखाल दास तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि की कृतियों का अनुवाद हुआ । वहाँ उर्दू, मराठी, गुजराती तथा अंग्रेजी भाषा के उपन्यासों का भी अनुवाद किया गया ।

अंग्रेजी से हिंदी में रूपान्तरित उपन्यासों की संख्या में [illegible] [illegible] नहीं रही [illegible] कारण यह था कि लेखक [illegible] [illegible] उपन्यासों [illegible] हिंदी में रूपान्तरित करने की [illegible] [illegible] थे [illegible] [illegible] से

रोबिन्सन क्रूसो का इतिहास बंगाली से अनूदित किया । 1850 बनियन के पिलग्रिम्स प्रोग्रेस [Pilgrim's Progress: Bunyan] का गोपनीय पुरोहित ने वीरेन्द्र [1897] शीर्षक से अंग्रेजी से अनुवाद किया । पुरुषोत्तमदास टंडन ने शेक्सपीयर के पेरीक्लीस [Pericles] के आधार पर भाग्य का फेर [1900] उपन्यास लिखा जो हिंदी प्रदीप में प्रकाशित हुआ। रेनाल्ड [Reynold] के फाउस्ट [Faust] का नर पिशाच, रे हाउस प्लाट [Rye House Plot] का सत्यवीर अनुवाद कन्हैयालाल [1902] जोसफ विल्मट [Joseph Willmat] यशोदानन्द औदीच्य [1905][1] आदि ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि इस युग में राष्ट्रप्रेम का प्रचार तथा सामाजिक सुधार ही सभी साहित्यकारों का प्रमुख उद्देश्य था तथा इसकी अभिव्यक्ति साहित्य की विभिन्न विधाओं के द्वारा संभव हो पाती थी ।

भारतेन्दु युग में पत्रकारिता :

भारतेन्दु युगीन साहित्यकारों ने अपनी अनुभूतियों एवं विचारों को जनता के सामने लाने के लिए मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक और दैनिक पत्रों का स्वयं संपादन - प्रकाशन किया । सर्वप्रथम मासिक पत्रिकाएं निकलती थी । अधिक प्रचार हो जाने के बाद पाक्षिक एवं

- -

1. भारतेन्दुयुगीन साहित्य में राष्ट्रीय भावना - पृ॰ 166

साप्ताहिक पत्र भी प्रकाशित होने लगे । तत्कालीन पत्रिकाएँ आज के समान सूचना प्रधान नहीं होती थी बल्कि ये पत्रिकाएँ जीवन और साहित्य के बीच की खाई को सेतु के समान पाटने का प्रयास कर रही थी । वे दैनन्दिन घटनाओं के संक्षिप्त विवरण के साथ - साथ साहित्य के मसले को भी हल करती थी । इस तरह भारतेन्दु युग में साहित्य और पत्रकारिता के बीच कोई भेद नहीं होता था । पत्रकारिता के द्वारा भारतेन्दुयुगीन साहित्यकार आधुनिक मूल्यों का प्रचार प्रसार करते व सबसे महत्वपूर्ण राष्ट्रीय भावना या देश भक्ति की भावना को जनता के मन में जगाने का भरसक प्रयास करते थे ।

भारत में सर्वप्रथम समाचार पत्र अंग्रेजी भाषा में निकला था- "दि वीकली न्यूज" |1622| 1780 में कलकत्ता से जे.ए.हिकी द्वारा "दि बंगाली गजट" प्रकाशित हुआ । 23 मई 1818 में "समाचार दर्पण" और "दिग्दर्शन" क्रमशः मासिक थे जो सिरामपुर में प्रकाशित हुए थे । भारतीय नवयुवक जुगल किशोर शुक्ल के संपादन में "उदन्त मार्तण्ड" हिंदी का प्रथम महत्वपूर्ण पत्र था जो 1826 में प्रकाशित हुआ । 1829 को राजा राममोहन राय और द्वारकानाथ ठाकुर द्वारा "बंगदूत" तथा 1834 में "प्रजामित्र" साप्ताहिक प्रकाशित हुआ । 1844 में तारामोहन मित्र ने "बनारस अखबार" नाम से प्रसिद्ध "सितारे हिन्द" पत्रिका का सम्पादन किया । 1850 में काशी से ही "सुधाकर" नामक पत्र प्रकाशित हुआ । 1852 में सदासुखलाल ने आगरा से "बुद्धि प्रकाश" का और 1854 में कलकत्ता से "सुधा वर्षण" का श्यामसुन्दर सेन ने संपादन किया । 1861 में "प्रजा हितैषी" का सम्पादन किया । आगरा से लक्ष्मण सिंह ने और इसी वर्ष इटावा से "प्रजाहित" मासिक पत्र

का प्रकाशन हुआ । हिंदी में उन्नीसवी शती की महत्वपूर्ण पत्रिका "कवि वचन सुधा" एक नया युग लेकर आई । "कवि वचन सुधा" के संपादक भारतेन्दु ने 1867 में इस पत्र को निकाला । सम्पादकीय राजनीतिक व सामाजिक विषयों का लिखे जाते थे । 1870 में "अल्मोड़ा अखबार" [सम्पादक सदानंद सलवान] और 1871 में कलकत्ता से "हिंदी दीप्ति" को कार्तिक प्रसाद खत्री ने प्रकाशित किया । इसी वर्ष केशवराम भट्ट का "बिहार बिन्धु" भी प्रकाशित हुआ । 1872 में भारतेन्दु की मासिक पत्रिका "हरिश्चन्द्र मैगजीन" के नाम से प्रकाशित हुई । इस पत्रिका में देश भक्ति और समाज सुधार के भाव निहित थे । इस पत्रिका के आठ अंक प्रकाशित होने के उपरांत इसके नाम में परिवर्तन हुआ और यह "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" हुई । छः वर्षों के उपरांत भारतेन्दु ने इस पत्रिका का भार विष्णुराम पंड्या को सौंप दिया । उन्होंने इसे "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका और मोहन चन्द्रिका" के नाम से छापना आरंभ किया । 1884 में भारतेन्दु ने इसे "नवोदिता हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" के नाम से निकाला । भारतेन्दु ने 1874 में स्त्रियों के लिए "बाल बोधिनी" पत्रिका निकाली । इसी वर्ष श्रीनिवास दास ने "सदादर्श" पत्रिका, बाबू कालेश्वर ने "काशी पत्रिका" तथा 876 में अलीगढ़ से तोताराम ने "भारत बन्धु" पत्र का सम्पादन किया । 877 में बालकृष्ण भट्ट ने प्रयाग से "हिंदी प्रदीप" पत्रिका निकाली जो उस समय की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका थी । कन्हैयालाल का "मित्र विलास" और आर्य दर्पण भी इसी वर्ष प्रकाशित हुआ । "हिंदी प्रदीप" के बारे में रामविलास शर्मा जी का कहना है, "देश दशा की ओर से यह पत्र एक संकेत है । उसकी जिल्दों को पढ़ने से उस समय के राजनैतिक सामाजिक

और धार्मिक आन्दोलन आँखों के सामने सजीव हो उठते है ।"[1] प्रताप-नारायण मिश्र ने 1883 में "ब्राह्मण" पत्र का संपादन किया । हास्य और व्यंग्य के माध्यम से इस पत्रिका ने राष्ट्रीय भावना को जगाने का प्रयास किया । इसी वर्ष "दिनकर प्रकाश", "धर्म दिवाकर", "प्रयाग पत्र" का प्रकाशन हुआ । 1884 में अम्बिकादत्त व्यास ने "पीयूष प्रवाह" रामकुमार वर्मा ने "भारत जीवन", राधाचरण गोस्वामी ने "भारतेन्दु" और दिवाकर का "कवि कुल कुंज" प्रकाशित हुआ । 1885 में "भारतोदय" एवं "काव्यामृत वर्षिणी", 1887 में "आर्यावर्त" और "भारत भ्राता", 1889 में "राजस्थान समाचार पत्र" 1890 में "सहित और "हिंदी बंगवासी", 1893 में "नागरी नीरद" और 1894 में "साहित्य सुधानिधि" के पश्चात 1895 में नागरी प्रचारिणी पत्रिका का प्रकाशन हुआ । 1900 ई॰ में "सरस्वती" पत्रिका प्रकाशित हुआ । "भारतेन्दु काल के सभी लेखक अच्छे पत्रकार थे, जो देश की गतिविधियों से पूर्णतया परिचित थे । पत्र - पत्रिकाओं के माध्यम से वह जनता को तत्कालीन परिस्थितियों, भाषा और नागरी लिपि से परिचित कराकर उनमें देश के प्रति नवजागरण का संचार करने में सफल हुए ।

अध्ययन का निष्कर्ष :

तत्कालीन हिंदी व बंगला साहित्य में राष्ट्रीयता की भावना कूट कूट कर भरी हुई थी । वैदिक साहित्य का कुछ उद्देश्यमात्र कुमार

---

1. रामविलास शर्मा - भारतेन्दु युग - पृ॰ 31

व राष्ट्रीय भावना का प्रचार प्रसार करना था । हिंदी और बंगला भाषाओं का मूल संस्कृत होने से दोनों को विरासत में महान साहित्य की परम्परा प्राप्त हुई । हिंदी और बंगला के क्षेत्र भौगोलिक रूप से भी परस्पर निकट है । समान इतिहास, संस्कृति आदि के बावजूद उनमें मौलिकताएं भी है । दोनों में ही परस्परता और आदान-प्रदान स्वाभाविक रूप से होते रहे हैं ।

आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य का अनावश्यक रूप से कुछ लोग अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव दिखाते रहते हैं । इसे प्रकार स्वीकार भी किया जाता है जो हीन भावना का ही प्रदर्शन है । सच तो यह है कि उन्नीसवीं सदी और बीसवीं सदी के आरंभ में भारतीय भाषाओं में लिखा गया मौलिक साहित्य अंग्रेजी के प्रभाव से अछूता है ।

भारतीय भाषाओं को विश्व का श्रेष्ठतम साहित्य विरासत में प्राप्त हुआ है । अतः अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से भारतीय साहित्य को श्रेष्ठ बनाने की बात हास्यास्पद ही होगी । वेद, पुराण, उपनिषद, महाभारत, रामायण जैसे ग्रंथों से विश्व साहित्य प्रभावित, प्रेरित होता रहा है । भारतीय [हिन्दू] धर्म और संस्कृति की प्रकृति सामासिकता की रही है, इसमें संदेह नहीं । इसको इसमें अनेक गुणों का समावेश हुआ, उदारता और सहिष्णुता आयी । अपनी इस अद्वितीय समृद्ध परम्परा का आधुनिक भारतीय भाषाओं का साहित्य सदुपयोग कर रहा है ।

सभ्यता एवं संस्कृति का एक वाहक साहित्य है । और संस्कृति का उत्कर्ष तभी होता है जब वह सामासिक हो । अपनी संस्कृति की इतिहास अपनी बाहिर परन्तु उपयोगी हो, जो अपनाया जाए तब

संस्कृति में चार चाँद लग जाते है । रामधारीसिंह दिनकर ने भी संस्कृति के चार अध्याय में "सामासिक संस्कृति" को उत्तम संस्कृति माना है और कूपमण्डूकता के बदले "सामासिक संस्कृति" को महत्वपूर्ण माना है । जब संस्कृति सामासिक हो तो साहित्य क्यों नहीं । साहित्य में विविधता एवं सम्पूर्णता के लिए किसी अपनी समृद्ध परम्परा से प्रेरणा प्राप्त कर स्वदेशी साहित्य को विश्व के स्तर का साहित्य बनाना ही उत्तम साहित्य का परिचायक है तथा इसका एक उदाहरण रवीन्द्रनाथ टैगोर और उनकी स्वदेशी साहित्य को विश्व के स्तर का साहित्य बनाना ही उत्तम साहित्य का परिचायक है तथा इसका उदाहरण रवीन्द्रनाथ टैगोर और उनकी "गीतांजली" है - जिन्होंने सम्पूर्ण भारतीय मनीषा से प्रेरणा प्राप्त की और स्वयं का भी प्रेरक बनाया । इसी तरह राष्ट्रीयता या देश भक्ति को भारत के किसी एक प्रान्त तक सीमित नहीं किया जा सकता क्योंकि हमारे यहाँ "राष्ट्र" की व्यापक अवधारणा रही है ।

> यस्येमे हिमवंतो महित्वा, यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।
> यस्येमा: प्रदिशो यस्य बाहू, कस्मै देवाय हविषा विधेम [1]

ऋग्वेद की उक्त ऋचा में राष्ट्र वंदना के स्वर के साथ साथ भारतीय राष्ट्र का बाह्य एवं आंतरिक स्वरूप भी अपने सम्पूर्ण परिवेश के साथ उभरकर सामने आया है यह वन्दना ऋषियों के दीर्घकालीन चिंतन,

- -

1. 'ऋग्वेद - 2 4' - भारत की राष्ट्र[illegible] - हरि[illegible]
   पृ. 3 से उद्धृत

अनवरत साधना एवं प्रबुद्ध मनन से प्रसूत हुई है । यही कारण है कि इसमें जहाँ एक ओर राष्ट्र के उत्कर्ष के लिए जीवन न्योछावर करने की अंतःकामना निवेदित है, वहीं भारतीय राष्ट्र का स्वरूप भी प्रतिष्ठित किया गया है । भारतीय राष्ट्र के विराट व्यक्तित्व में समस्त विभिन्नताओं को आत्मसात करने की अद्भुत क्षमता है ।"[1]

राष्ट्र मूलतः एक भावना है, लोक मानस में निर्मित भावना ।

भारतेन्दु युगीन साहित्य में 1857 का उल्लेख प्रमुख रूप से लोक साहित्य में 1857 का उल्लेख हुआ था, प्रकाशित साहित्य में अंग्रेजों की दमन नीति के कारण संभव नहीं था। उसका सर्वप्रथम विवरण पुस्तक है - "कल्याण सिंह कुड़रा का लिखा "झांसी को रायसो" - लेखन समय 1857 के संग्राम के कुल बारह तेरह वर्ष बाद का है ।"[2]

झांसी के जन कवि भग्गी दाउजू "श्याम" 1857 के संग्राम के ही कवि है । इन्होंने "कटक" नामक गेय प्रबंध में झांसी की रानी लक्ष्मी बाई का नत्थेखाँ से हुए युद्ध के संबंध में विस्तृत रूप से वर्णन किया इसमें रानी की प्रशंसा की गई परन्तु अंग्रेजों से हुए युद्ध का वर्णन नहीं किया गया क्योंकि ऐसा करना खतरे से खाली नहीं था ।[3]

ननकऊसिंह का "झाँनामा" नामक काव्य ग्रंथ का परिचय अमृतलाल नागर ने अपने ग्रंथ "गदर के फूल में दिया है ।[4] झांसी के गंगाप्रसाद

- -

1. भारतीय की राष्ट्रीय एकता -पृ. 13
2. भगवान दास माहौर - 857 के स्वाधीनता संग्राम का हिंदी साहित्य पर प्रभाव -पृ. 70-7
3. -वही- पृ. 74
4. -वही- पृ. 76

सुभार का काव्य लक्ष्मीबाई के जीवन की झाँकी प्रस्तुत करती है। झाँसी के "क्तरेराजी" ने अपने काव्य में 1857 के वीरों का यशोगान किया।

भारतेन्दु युगीन साहित्य चूँकि ब्रिटिश प्रकाशित होने के लिए ही रचित था अतः भारतेन्दु आदि प्रसिद्ध साहित्यकारों की रचनाओं में 1857 की क्रांति का वर्णन स्वतंत्र रूप से हो नहीं सकता था। कभी कहीं अगर उल्लेख हुआ हो भी तो ये साहित्यकार खुले रूप में उसका समर्थन नहीं कर सकते थे; "प्रत्युत औपचारिक रूप में राजभक्ति प्रदर्शन की नीति को अपनाकर वे 1857 की क्रान्ति को प्रकट रूप में एक गलती और मूर्खता की बात ही कह सकते थे, और यही उन्होंने किया।"[1]

फिर भी इस युग के साहित्यकारों ने अप्रत्यक्ष रूप से 1857 का उल्लेख करने का प्रयास किया है। "भारत सौभाग्य" नाटक में प्रेमघन ने 1857 के "गदर" के लिए "गदरुद्दौला" नामक एक पात्र का प्रयोग किया।

1857 के स्वाधीनता संग्राम का उल्लेख भारतेन्दु मण्डल के साहित्यकारों की रचनाओं में कहीं कहीं अप्रत्यक्ष तो कहीं अन्योक्तिपरक ढंग से किया गया है। राधाचरण गोस्वामी, जिन्होंने यमलोक की यात्रा में 1857के विद्रोह का उल्लेख अद्भुत नीति से किया है। 1880 में "भारत सुधानिधि" में इसका छपना आरंभ हुआ। भारतेन्दु जी के "एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न" के समान ही यह रचना है जिसमें हास्य रस का सहारा लेकर वास्तु स्थिति को अप्रत्यक्ष ढंग से अभिव्यक्त किया गया।

- -

1. भगवान दास माहोर - 1857 के स्वाधीनता संग्राम का हिंदी साहित्य पर प्रभाव - पृ० 8

"विजयिनी विजय वैजयन्ती" में भारतेन्दु जी ने प्रश्नोत्तर शैली में राजभक्ति को दर्शाते हुए 1857 के सिपाही विद्रोह का उल्लेख किया था । इतनी बड़ी ऐतिहासिक घटना साहित्यिक उल्लेख के बगैर रह भी कैसे सकती थी ?

पण्डित प्रतापनारायण मिश्र जी ने "कानपुर महात्म्य" में 1857 का उल्लेख किया था । यह सन् 1884 के 15 अगस्त में "ब्राह्मण" पत्रिका में छपा था । "ब्रैडला स्वागत" में मिश्र जी ने 1857 का उल्लेख करते हुए भारत की दुर्दशा को अभिव्यक्त किया - परन्तु यह इस तरह से लिखा गया मानो यह अंग्रेजी नेता चार्ल्स ब्रैडला के स्वागत में हो । 1857 के संबंध में पं० बालकृष्ण भट्ट के मासिक "हिंदी प्रदीप" मार्च, 1885 में उल्लेख मिलता है। रसराज बाबू बिहारी सिंह ने "भारतेश्वरी भूषण" में रानी विक्टोरिया को आशीष देते हुए गदर का उल्लेख किया है । 1890 में भी राधाकृष्णदास का उपन्यास "निस्सहाय हिन्दू" में एक स्थल पर 1857 का स्मरण किया गया । इस युग की उर्दू शायरी में भी यत्रतत्र 1857 का उल्लेख मिल जाता है ।

इस काल के बंगला साहित्य में 1857 का प्रत्यक्ष उल्लेख प्रचुर मात्रा में उपलब्ध नहीं होने का कारण भी अंग्रेजी सत्ता द्वारा लागू किये गए निषेधात्मक नियम कानून थे । बंगला रचनाकार भी इसे एक अराजक घटना ही मानते हैं - यही बात हिंदी साहित्य के साहित्यकारों में भी दिखाई देती है । कारण 1857 के इस विद्रोह में जहाँ उनके निजी क्षेत्र मेरठ अंचल सिपाहियों में जान एवं माल की हानि हुई वहाँ रानी विक्टोरिया को आशीष देना व अंग्रेज सरकार के लिए काव्य के माध्यम से प्रशस्तियाँ मानो निश्चित रूप से उनकी मजबूरी का ही द्योतक हो

सकता है । परन्तु हिंदी व बंगला साहित्य के लेखकों ने रानी लक्ष्मी-बाई, तात्या टोपे, कुंवरसिंह आदि की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है । "विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ने अपनी 17 वर्ष की अवस्था में अर्थात् 1878 में "भारती" नामक पत्रिका में 1857 के वीरों की प्रशस्ति लिखी, उनके प्रयत्न को व्यर्थ कहते हुए भी उन्होंने उनकी, विशेषतः रानी लक्ष्मी बाई, तात्या टोपे और वृद्ध कुंवर सिंह की, वीरता और देश प्रेम की प्रशंसा की ।"[1]

"श्री रजनीकांत गुप्त का प्रसिद्ध इतिहास ग्रंथ "सिपाही युद्धेर इतिहास" 1876 में प्रकाशित हुआ ।...रजनीकांत गुप्त ने अपनी "वीर महिमा" [1885] में सत्तावनी क्रान्ति के दो वीरों रानी लक्ष्मी बाई और अमरसिंह के जीवन का अध्ययन प्रस्तुत किया और स्वातंत्र्य प्रेम और तदर्थ शौर्य और बलिदान की प्रशंसा की ।"[2] 1888 में चंडीचरण सेन ने "झांसीर रानी" नामक उपन्यास की रचना की । रवि बाबू की कहानी "दुराशा" 1898 में प्रकाशित हुई जिसमें सत्तावनी क्रांति के संदर्भ को ही विषय बनाया गया ।

बंगाली साहित्य में 1857 के विद्रोह का उल्लेख तत्कालीन समाचार पत्रों और जीवनियों में कहीं कहीं अल्प विस्तार रूप में मिल जाता है। श्री हरिश्चन्द्र मुखर्जी के प्रमुख पत्र "हिन्दू पैट्रियट" में सरकार की

- -

1. रिबेलियन 1857 [अंग्रेजी]: संपादक पी.सी.जोशी-पृ. 268-269 को 1857 के स्वाधीनता संग्राम का हिंदी साहित्य पर प्रभाव पृ. 481 से उद्धृत.
2. 1857 के स्वाधीनता संग्राम का हिंदी साहित्य पर प्रभाव-पृ.481 से उद्धृत

सलाह दी कि वे दमन नीति को अपनाते समय नर्मी से काम ले । श्री रामगोपाल सान्याल ने "हरिश्चन्द्र मुखोपाध्यायेर जीवनी" में सत्तावनी युद्ध का उल्लेख किया है । इसका प्रकाशन सन् 1887 था । श्री राजनारायण बसु ने 1888 में "आत्मचरित" लिखा जिसमें विप्लव कालीन परिस्थिति को बताया गया । महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी आत्म जीवनी में सत्तावनी युद्ध का उल्लेख किया तथा 1898 में इसको प्रकाशित किया । श्री शिवनाथ शास्त्री ने "रामतनु लाहिड़ी ओ तत्कालीन बंग समाज" में सत्तावनी युद्ध का उल्लेख किया है । इसके अलावा बंकिमचन्द्र के "आनन्द मठ" पर जिसकी प्रकाश्य वस्तु 1778-79 का सन्यासी विद्रोह है, 1857 के विद्रोह का प्रभाव रहा होगा । यही प्रभाव "वीर बाहु वध" काव्य |1864|, "वृत्रसंहार काव्य" |1875-77| "भारत संगीत" |1870| और हेमचन्द्र की अन्य कविताओं में भी उपलक्षित रहा है ।[1]

उन्नीसवीं शताब्दी के बाद भी 1857 के विप्लव पर हिंदी कथा साहित्य में सैकड़ों कृतियाँ लिखी गई है और आज भी लिखी जा रही है ।

- -

1. पी.सी.जोशी - रिबेलियन - पृ. 26 का 1857 के स्वाधीनता संग्राम का हिंदी साहित्य पर प्रभाव - पृ. 45 से उद्धृत

परिशिष्ट [1]

1· रामकमल सेन विरचित शब्द कोश [जिसमें 5,800 अंग्रेजी शब्दों के बंगला अर्थ हैं]

2· राम किशन का शब्द संग्रह -अंग्रेजी, लैटिन व बंगला, 1821

3· ताराचन्द की एंग्लो - बंगाली डिक्शनरी जिसमें 75,000 शब्दों के अर्थ दिये गये है।

4· जय गोपाल का शब्द कोश

5· लक्ष्मीनारायण का शब्द कोश

6· गात्रड़ा कल्प तरंगिणी - जगन्नाथ मल्लिक

उपर्युक्त तीनों पुस्तकें, 1838 में प्रकाशित हुई जिसमें व्यावहारिक में प्रयुक्त होने वाले फारसी शब्दों के बंगला रूपांतर दिये गये है ।

7· जय नारायण शर्मा शब्द कोश जिसमें 16,000 शब्दों के अर्थ है । [1838 ई·]

8· रत्न हामदार का बंगाभिधान जिसमें 6,224 शब्दों के अर्थ मौजूद है । [1839 ई·]

· राधानाथ दे एवं कम्पनी का एंग्लो बंगाली शब्द कोश [830ई]

10· जयगोपाल विरचित पारसिकाभिधान या फारसी एवं बंगला शब्द कोश [1840ई·]

व्याकरण से संबंधित ग्रन्थों की रचना

12· गंगा किशोर भट्टाचार्य कृत "व्याकरण"

13· मथुरा मोहन दत्त द्वारा "मुग्धबोध" का बंगला में अनुवाद" प्रकाशन सन् 1919 ई·

14. "भाषा व्याकरण" 1823

15. राम मोहन राय कृत "व्याकरण" 1833ई॰

16. ब्रज किशोर शर्मा कृत "बंगला व्याकरण" 1845 ई॰

17. भगवान चन्द्र का "बंगला व्याकरण" 1845

18. देवेन्द्रनाथ टैगोर कृत "बंगला में संस्कृत व्याकरण" "तत्वबोधिनी सभा" द्वारा प्रकाशित 1845 ई॰

19. श्यामचरण विरचित अंग्रेजी - बंगला व्याकरण (408 पृष्ठों का)

इतिहास से संबंधित पुस्तकें

20. 1836 में गोविंद चरण सेन कृत भारत वर्ष का इतिहास

21. 1840 में मार्शमैन के इतिहास का अनुवाद - बंगाल का इतिहास

22. 1849 में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर कृत "बंगला इतिहास" -इसमें प्लासी के युद्ध से विलियम बैन्टिक के प्रशासन तक का इतिहास मौजूद है ।

23. राज नारायण बैनर्जी कृत पंजाब का इतिहास

24. के॰एम॰बैनर्जी कृत "रोम पुरावृत्त" -इसमें 61 पृष्ठ है ।

25. 1848 में वैद्यनाथ बैनर्जी कृत "भारतवर्षीय इतिहास" । इसमें मार्शमैन के ब्राह्मण विरोधी एवं ईसाई धर्म बैमनस्य वाले दृष्टिकोण की कटु आलोचना की गयी है । मनु, याज्ञवल्क्य, रामायण, महाभारत, राजावली, आदि से प्रेरणा ग्रहण करते हुए वैद्यनाथ ने एक प्रकार से हिन्दुओं को पुलकित करने का प्रयास किया है ।

26. 1840 में गोपाल लाल मित्र का "भारतवर्षीय इतिहास" ।

27. 1845 में श्यामाधन मुखर्जी कृत "राजावली"

जीवनी लेख

28• महान नेता एवं चन्द्रिका नामक साप्ताहिक पत्र [1021 ई] के संपादक श्री भवानी चरन की जीवनी ।

29• 1830 में "सत्य इतिहास" [पृ.सं.239] इसमें मैनिसनिज, सैलोस्किस, होमर, लाइकरगस, मरेडेटिस, प्रोटेसिलाज तथा अक्षेन्द्र की जीवनियाँ है ।

30• 1849 में ईश्वरचन्द्र शर्मा कृत जीवन चरित । इसमें कोपरनिकस, गैलिलियो, न्यूटन, हर्शेल, ग्रोशियस, लिनियस, ड्यूवल, थामस जेनकिन्स एवं एम•डब्ल्यू जोन्स आदि की जीवनियाँ है ।

नैतिक गाथाएं एवं अन्य विषयों से संबंधित कृतियाँ

31• 1838 में रैमनाथ भाचार्य कृत - "अज्ञान तिमिर नाशक"

32• 1 42 में कृष्ण मोहन देव कृत प्राणि प्रकाशिका

33• रामेश्वर बेनर्जी ने पत्र लेखन शैली पर "पत्र कौमुदी" नामक ग्रंथ की रचना की ।

34• 18 2 में रामाराम बसु कृत लिपि माला ।

35• आर सी मित्र कृत पारदर्शी

3 • 834 में आर सी मित्र कृत पारसी विज्ञान

3 • 847 में पी•सी• मित्र कृत पदार्थ विद्या

3 • 21 में ज्ञानोदान तर्कालंकार , "रचना"

3 • 847 में विविध पद ।

4 • 34 में राजा काली किशन कृत "बालताल्लुका"

4 • 8 8 में गौर मोहन दे कृत स्त्री शिक्षा इस ग्रंथ में हिन्दू नारी का शिक्षा संबंधी अनेक प्रमाण प्रदर्शित किये गए है

42. 1840 में "स्त्री दुराचार" ।

43. पुनास्ति के राजकिशोर को लेकर 100 नैतिक कथाएं - "हित कथा" में प्रकाशित हुई ।

44. 1842 में प्रेमचन्द राय का "ज्ञान रत्न" -जिसमें नैतिक एवं कर्तव्य बोध कराने का वाली गाथाएं लिखी गई है ।

45. 1838 में गोपाल मित्र कृत ज्ञान चन्द्रिका

46. रामकमल सेन विरचित "नीति कथा" इसमें भी अनेक नीतिपूर्ण कहानियां लिखी गई है ।

47. 1819 में ताराचन्द दत्त कृत "मनोरंजन इतिहास"

भूगोल से संबंधित

48. 1826 में राजा कालीसिंह की -"ए जिओग्राफी आफ एन आरेंगी"

49. 1836 में "भूगोल एवं ग्रह" राजा कालीकिशन कृत ।

50. 1840 में तत्व बोधिनी सभा द्वारा प्रकाशित "प्राथमिक भूगोल" ।

51. 1840 में क्षेत्र मोहन दत्त की "भूगोल"

52. रेव के एम बैनर्जी कृत "एशिया एवं यूरोप का भूगोल ।

53. 1821 में मी मोन्टेग के निर्देश से काशीनाथ कृत "मैप आफ द वर्ल्ड ।

ज्यामिती या जिओमेट्री

54. 1846 में के.एम.बैनर्जी का जिओमेट्री ।

55. 846 में ही कृष्ण मोहन द्वारा "भूमान परिमाण विद्या"

अन्यान्य विषय

56. 1849-50 में के.एम.बेनर्जी द्वारा "डिसोल्विंग व्यूज" [दर्शन सम्बन्धी ग्रंथ]

57. 1850 में राधा वल्लभ दास कृत फ्रेनोलोजी

58. 1836 में उदय चरन कृत "ब्राह्मी वक्तृता" अथवा ब्राह्मोज स्पीकेज

59. 1849 में राजकृष्ण मुखर्जी कृत बाल्य रचा

60. 1835 में ईश्वरचन्द्र भट्टाचार्य कृत द्रव्य गुण

61. 1849 में मधुसूदन गुप्त कृत "औषध कल्पावली"

62. 1850 में प्रेमचन्द चौधरी कृत "ज्वर चिकित्सा" [हिन्दू वैद्य शास्त्र पर आधारित]

उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध में प्रकाशित होने वाली प्रमुख बंगला पत्रिकायें व मैगजीन

1. 1818 - श्रीरामपुर मिशनरी का "दिग्दर्शन"
2. 1823 - गोस्पेल मैगजीन्स
3. 1821 राम मोहन राय कृत ब्राह्मनिकल मैगजीन
4. 185 - शास्त्र प्रकाश
5. 183 - आर.सी.मित्तर द्वारा प्रकाशित ज्ञानोदय
6. 832 - रसिक मल्लिक कृत ज्ञान सिन्धु तरंग
7. 1833 - चार आना मैगजीन
8. 1834 - विज्ञान सार संग्रह
9. 934 - अक्षय कुमार दत्त विरचित विद्यादर्शन
10. "विद्या दर्शन - प्रसन्न कुमार घोष
11. 846 मैत्राज नारायण मित्र कृत "कौस्तुभ किरण"

12. 1846 में हिन्दू कालेज के विद्यार्थियों की "जगत् बन्धु पत्रिका"
13. 1846 में श्यामा चरण बोस कृत "सत्य संचारिणी"
14. 1846 में "कायस्थ किरन"
15. 1846 को त्रैमासिक पत्रिका "दुर्जन दमन नवमी" निकलता था संपादक थे ठाकुर दास बोस
16. हरि नारायण गोस्वामी कृत "हिन्दू धर्म चन्द्रोदय"
17. 1847 – ज्ञान संचारिणी – रूढ़िवादी संप्रदाय का पत्र भी था ।
18. 1847 – हिन्दू कालेज के विद्यार्थियों द्वारा संपादित काव्य रत्नाकर ।
19. 1848 – कालीकान्त भट्टाचार्य द्वारा संपादित "मुक्तावली"
20. 1849 – रामनिधि कृत "भक्ति मुक्ता"
21. 1849 – यदुनाथ पाल कृत "रस रत्नाकर"
22. 2449 – गोविंद चन्द्र गुप्त कृत "श्रृंगार रस"
23. 1850 – द्वारिकानाथ मजूमदार कृत "दीप्तिमालिका"
24. 1850 – "धर्म मर्म प्रकाशिका" – [कोन नगर से निकलता था]

प्रमुख समाचार पत्र

1. 1816 – में गंगाधर भट्टाचार्य द्वारा संपादित "बंगाल गजट"
2. 1818 – द श्रीरामपुर दर्पण
3. 1819 – राममोहन राय एवं भवानी बैनर्जी द्वारा संपादित "कौमुदी"
4. भवानीचरन कृत "चन्द्रिका" । कई वर्षों तक यह "टाइम्स आफ कलकत्ता" के नाम मशहूर का स्थानीय समाचार पत्र रहा ।

5. 1823 - कृष्ण मोहन दास ने "तिमिर नाशक" नामक समाचार पत्र निकाला ।

6. 1825 - नीलरत्न हालदार ने "बंग दूत" नामक अखबार निकाला ।

7. 1830 - प्रेमचन्द राय कृत "सुधाकर"

8. 1830 - ईश्वरचन्द्र गुप्त ने "प्रभाकर" का संपादन किया ।

9. 1821 - मौलवी अलीमुल्ला कृत "सभा राजेन्द्र"

10. 1831 - हिन्दू कालेज के छात्र रसिक मल्लिक एवं टीका मुखर्जी से ज्ञानन्वेषण ।

11. 1831 - ब्रज मोहन मित्रा कृत "रत्नाकर"

12. 1831 - बेनी माधव दे कृत "सार संग्रह"

13. 1832 - जगन्नाथ मल्लिक "रत्नावली"

14. 1835 - काली शंकर दत्त : "सुधांशु"

15. 1837 - गंगा नारायण बोस : "दिवाकर"

16. 1838 - कालीचन्द्र दत्त : "सौदामिनी"

17. 1838 - पार्वती दत्त : "मृत्युंजय"

18. 1839 - गौरीशंकर भट्टाचार्य : "रसराज"

19. 1839 - जगन्नारायण मुखर्जी : "अन्नोदय"

20. 1840 - द मुर्शिदाबाद पत्रिका

21. 1840 - भजन दास "ज्ञान दीपिका"

22. 1840 - गोविंद चन्द्र गुप्त : "सुजन रंजन"

23. 841 - श्यामाचरण बेनर्जी : "भारत बंधु"

24. 1841 - नीलाम्बर दास "निशाकर"

25. नील कमल दास "श्री दूत"

26. 1844 – गंगा नारायण बोस : "राजा रानी"

27. 1846 – मौल्वी अली : "ज्यादा टीकु"

28. 1846 – मार्तण्ड

29. 1846 – उमाकान्त भट्टाचार्य : ज्ञान दर्पण

30. 1846 – ईश्वरचन्द्र गुप्त : "पमन्द किरन"

31. 1847 – नील रतन मुखर्जी : "रंगपुर वार्तावह"

32. 1847 – "ज्ञान संचारिणी"

33. 1847 – ईश्वरचन्द्र गुप्त "मुठी रंग"

34. 1847 – द्वारकानाथ मुखर्जी : "दिग्गज"

35. 1847 – "आक्कान गुडुम" – जगन्नाथ

36. 1847 – चैतन्य चरण अधिकारी : ज्ञानांजन

37. 1847 – निमाइ चन्द्र दे : "ग्यान बन्धु"

38. 1847 – 1847 – जी॰सी॰ दे: मनोरंजन

39 1848 – शिवचन्द्र घोष : "ज्ञान रत्नाकर"

40. 1848 – "दिनमणि"

41. 1848 – माधव चन्द्र घोष : "रस वर्धन"

42. 1848 – रामगोपाल बैनर्जी : "रस सागर"

43. 1848 – पंचानन बैनर्जी : "अरुणोदय"

44. 1849 – देव मोहन बैनर्जी : "रस मुद्गर"

45. 1849 – जय काली बोस : "महाजन दर्पण"

46. "सत्य धर्म प्रकाशिका" – [इसाई धर्मावली का एक अंग]

47. वाराणसी चन्द्रोदय – साप्ताहिक [वेदान्त सिद्धान्त] – उमाकांत भट्टाचार्य

45· 1849 – "भैरवानन्द" – संपादक [नित्यहीन उज्जन] – जगमोहन भट्टाचार्य

49· 1850 – रामनारायण भट्टाचार्य : वर्धमान चन्द्रोदय

50· 1850 – "वर्धमान संवाद"

51· 1858 – हिन्दू कालेज के भूतपूर्व विद्यार्थी का "गुणाकर" ।

- -

• उपर्युक्त सूची बंगाली सेलेक्शन्स एण्ड क्रिटिसिज्म" – पृ. से २ तक लिया गया है । इसके लेखक – श्री दिनेश चन्द्र सेन है ।

अध्याय - ६

६. स्वाधीनता और उपनिवेशवाद के प्रश्न तथा हिंदी और बंगला साहित्य

अध्याय - 4

4. स्वाधीनता और उपनिवेशवाद के प्रश्न तथा हिंदी और बंगला साहित्य

भूमिका - भारत में नवजागरण का अंग्रेजी उपनिवेशवाद से संबंध क्या है ?

अपनी अंधकारपूर्ण असहाय यथास्थिति के विरुद्ध सक्रिय होने वाले परिवर्तनकारी सामाजिक सांस्कृतिक आन्दोलन को नवजागरण कहा जा सकता है । ऐसे आन्दोलन के अन्तर्गत सामाजिक विषमताओं को दूर करना सामाजिक कुरीतियों को जड़ से उखाड़ कर फेंकना लेकिन, धार्मिक सुधार, वर्ग - वर्ण वैभिन्न्य के विरुद्ध जनमत इत्यादि आदि बातें होती हैं, साहित्य, कला, संगीत आदि को विकसित और समृद्ध करने का प्रयास किया जाता है । शिक्षा का प्रसार, विधवाओं एवं दलितों का उत्थान इत्यादि इसके अंतर्गत होते हैं । शिक्षा से सम्पन्न स्वावलम्बी बनता है तथा उसका स्वाभिमान जागृत हो उठता है और वह अपने राष्ट्रीय गौरव की रक्षा करने का भरसक प्रयत्न करता है उसका स्वाधीन चिंतन

आत्माभिव्यक्ति के रूप में साहित्य बनता है । उसके फलस्वरूप विचार यदि स्वतन्त्र होते है और वह आत्मनिर्भर, निर्भीक जीवन जीना पसन्द करता है । स्वाधीनता, निर्भीकता आदि नवजागरण के अनिवार्य तत्व या घटक है । बाहरी गुलामी के विरुद्ध प्रतिक्रिया संसार का कोई भी प्राणी व्यक्त करता है, फिर मनुष्य तो मनुष्य है । राजनैतिक दासता के खिलाफ आन्दोलनों के उदाहरण विश्व इतिहास में भरे पड़े हैं । स्वाधीनता आन्दोलन देश जागरण का एक प्रमुख भाग होता है । भले ही उसका पर्याय नहीं होता हो । स्वाधीनता और जागरण एक दूसरे को प्रेरित करते तथा एक दूसरे से प्रेरित होते है । पर एक दूसरे का स्थान नहीं ले सकते । सन् 1920 - 21 में चलाये गये असहयोग आन्दोलन से हिंदी प्रदेश में पर्दा प्रथा का उन्मूलन होने लगा था । इस तरह भारत में नवजागरण विभिन्न क्षेत्रों में प्रकट होकर सक्रिय था । धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, क्षेत्र में बुद्धिजीवियों तथा समाज धर्मियों को स्वाधीनता, आत्मालोचन, आत्म परिष्कार, जन चेतना आदि की दिशाओं में अग्रसर होने की प्रेरणा मिली ।

भारत में बहुजातीय राष्ट्रीयता का विकास हुआ है समूचे भारत में फैले व्यापक भक्ति आन्दोलन बहुजातीय बहुराष्ट्रीय आन्दोलन का सुन्दर उदाहरण . था । परन्तु जिस प्रकार भक्ति आन्दोलन समूचे भारत में एक साथ नहीं उपस्थित हुआ उसी प्रकार नवजागरण भी देश के किसी अंचल में पहले आया और किसी अंचल में कुछ समय बाद घटित हुआ यदि पुरातनता के विरुद्ध राजनैतिक एवं सामाजिक संघर्षों को ही आधुनिकता और नवजागरण का प्रमुख आधार मान लिया

बाद तक सबसे पहले नवजागरण का आगमन हुआ बंगाल में। कुछ इतिहासकारों का यह कहना है कि 1757 में बंगाल में आधुनिक काल का उदय हुआ और मध्य काल का अन्त। यह ठीक है कि 1757 में अंग्रेज प्लासी के युद्ध में विजयी हुए और बंगाल अंग्रेजों के अधीन हो गया। इससे अंग्रेजों को वृहत्तर भारत में प्रवेश के लिए मुख्य द्वार खुल गया। अंग्रेजों को अपने साम्राज्य का ही विस्तार के लिए नये उपनिवेश की सख्त जरूरत थी क्योंकि इस वक्त तक अमेरिका, जो उनका सबसे बड़ा उपनिवेश था, उनके हाथ से निकल चुका था। 1757 के बाद से अंग्रेजों को भारत को लूटने का मानो निर्बाध अधिकार प्राप्त हो गया।

लेकिन 1757 को समग्र भारत के संदर्भ में आधुनिक काल का उदय और मध्य काल का अन्त कहना अतिशयोक्ति है। इस वर्ष के बाद से भारत वर्ष का इतिहास तो अंग्रेजों के विश्वासघात, षड्यंत्र, शोषण, दमन उत्पीड़न आदि बातों से भरा पड़ा है। भारत की जनता को जिस अपमान अमानुषिक अत्याचारों से गुजरना पड़ा उससे भला कौन परिचित नहीं होगा।

भारतीय समाज में फिर भी सामाजिक सांस्कृतिक आन्दोलनों की लहर से रूप से नव प्रतिभाएं पैदा होती रही, जिन्होंने दलित जन जीवन को बहुत सहारा दिया। 18वीं सदी के अंत से लेकर उन्नीसवीं सदी के अन्त तक ऐसी भारतीय मनीषा के आविर्भाव की निरन्तरता दिखाई पड़ता है। इस दृष्टि से इस काल को आधुनिक चेतना या नवजागरण के उन्मेष की दृष्टि से रेखांकित किया जा सकता है।

रामगोपाल ने अपनी पुस्तक "भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास (कुसुम प्रकाशन, 17 अशोक मार्ग, लखनऊ) में 1757 से 1857 के बीच अंग्रेजों के विरुद्ध देश के विभिन्न हिस्सों में होने वाले अनेक विद्रोह का नाम गिनाया है - 1757 पलासी युद्ध । 1806 वेल्लोर में सैनिक विद्रोह (दाढ़ी मूँछ मुड़ाने के आदेश के खिलाफ) 1824 बैरकपुर कलकत्ता छावनी के सिपाहियों का विद्रोह (समुद्र पार जाने की आज्ञा के विरुद्ध) 1832 मानभूम का भूमिज विद्रोह (18 6 - कोली विद्रोह 1817 उड़ीसा का पाइक विद्रोह, 183 कोल विद्रोह) 1844 कोल्हापुर का गडकरी विद्रोह (लगान के खिलाफ) आदि । महाराष्ट्र 1818 में अंग्रेजों से पराजित हुआ 1856 में अवध अंग्रेजी राज्य का अंग बना । 1857 में अंग्रेजों के विरुद्ध प्रथम स्वाधीनता संग्राम विस्फोटक दिखाई दिया । हिंदी प्रदेशों में नवजागरण या आधुनिक युग का आरंभ 1857 से माना गया । लेकिन इससे पूर्व बंगाल में नवजागरण का आरंभ हो चुका था । क्या भारत की इस आधुनिकता का श्रेय अंग्रेजी उपनिवेशवाद को दिया जाय ? जिस प्रकार भक्ति आन्दोलन के संबंध में कुछ लोगों द्वारा यह प्रश्न उठाया जाता था कि यदि मुसलमान न आए होते तो भक्ति आन्दोलन न हुआ होता

इसी तरह कुछ लोग यह मानते हैं कि भारत में अंग्रेज न आए होते तो आधुनिकता न आता । सच तो यह है कि यह आधुनिकता और नवजागरण ऐतिहासिक प्रक्रिया के अंग हैं और यदि मुसलमान और अंग्रेज न भी आते तो भी उन्हें आना ही था हाँ, अंग्रेजी उपनिवेशवादी शोषण और दमन ने इस प्रक्रिया की रफ्तार जरूर बदल दी भारतीय संस्कृति की

यह कोशिश रही है कि वह निरन्तर हिन्दू विदेशी घुसपैठों से जूझती रही और इतना ही नहीं वह अपनी अस्मिता की पहचान को बनाये रखने में पूरी तरह सफल रही । पिछले तीन हजार वर्षों में अक्सर भारत पर यवनों, म्लेच्छों, शकों, हूणों, कुषाणों, मुगलों आदि ने आक्रमण किये । उसके बाद ईसाई मिशनरियों और यूरोपीय (पुर्तगाल, फ्रांसीसी अंग्रेज आदि) जाति भारतीय पराधीनता तथा उसके प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न होने वाली जागृति के आधार पर भारतीय समाज में जागरण के दो पर्व लक्षित किये जा सकते हैं - पहला है भक्ति काल जिसे डा० रामविलास शर्मा लोक जागरण का नाम देते हैं तथा दूसरा उन्नीसवीं सदी का नवजागरण ।

नवजागरण में दो विचारधाराओं का विकास :

आधुनिक युग के इस भारतीय नवजागरण में दो विचारधारायें विकसित हुईं । एक धारा भारतीय परम्पराओं पर साम्राज्यवादी मान्यताओं एवं परम्पराओं के प्रभुत्व को नवनिर्माण के बहाने स्थापित करने की रही है तथा इन साम्राज्यवादी मान्यताओं से टकराने की रही है । दूसरी धारा के लोग अपनी जड़ों से अलग न होते हुए वर्तमान के संघर्ष तथा सुनहले भविष्य से जुड़ना चाहते थे । अंग्रेज कुछ को भारत का शुभ चिंतक और अभिभावक बताते थे, जबकि भारत का दोहरा शोषण कर रहे थे । यहाँ से कच्चा माल लूट रहे थे और भारत को अपने तैयार माल का बाजार बना रहे थे । स्पष्ट था कि अंग्रेजों के पिट्ठू लोग आधुनिकता के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण नहीं रख पा रहे थे द्वितीय धारा के चिंतक अपने अतीत के वैभव एवं गौरव से भी परि

परिचित थे, उनको वर्तमान स्थिति का भी उन्हें बोध था और भविष्य को लेकर वे चिन्तित थे। इस प्रकार अपनी [illegible] संस्कृति से वे आधुनिकता का हार्दिक स्वागत करते थे। अंग्रेजी शिक्षा के फलस्वरूप ऐसे इतिहासकार भी थे, जो अंग्रेजों का इरादा भाँप कर स्थिति तैयार करते थे। वे अंग्रेजी उपनिवेश के लिए उचित आधार भूमि तैयार करने के लिए लालायित थे। ऐसे लोगों के लिए भारतीय अतीत अंधकारपूर्ण था और अंग्रेज ही एकमात्र प्रकाश स्तंभ थे। जो भी हो, भारतीय नवजागरण को यदि पैनी दृष्टि से देखा जाय तो प्रतीत होता है कि यद्यपि एक खेमे के लोग भारत की प्राचीन विरासत से अलगाव और विच्छिन्नता बोध को प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त तथा व्याख्या-यित कर रहे थे तो दूसरी ओर दूसरे खेमे के लोग अतीत से अन्ध लगाव की संकीर्ण समझ में आबद्ध होकर आधुनिकता को ठोकर मार रहे थे। संतोष की बात यह थी कि चिन्तकों का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण खेमा मौजूद था जिसके पास अपनी सांस्कृतिक विरासत को पहचानने का विवेक था, आत्म निरीक्षण और आत्मालोचन की क्षमता थी और नये को स्वीकार करने का साहस था। पहले दोनों खेमे के लोग अपनी जातीय व राष्ट्रीय चेतना के विकास के नाम पर आपस में लड़ रहे थे और इस तरह अंग्रेजों का ही उद्देश्य पूरा कर रहे थे। यह तो तीसरा खेमा ही था जिसने पृथक पृथक विचारधाराओं से मोती निकाल कर भारतीय नवजागरण का एक अनोखा प्रारूप तैयार किया। तभी भारतीय नवजागरण विभिन्न आन्दोलनों, संगठनों और कई संस्थाओं को जन्म देने वाली ऐसी व्यापक चेतना बना जिससे राष्ट्र प्रेम की धारा निरन्तर बह रही है।

साहित्य में राजभक्ति एवं देश भक्ति का अंकन :

राष्ट्र प्रेम की भावना से [illegible] साहित्यकारों अपना सार्थकता

के लिए संवर्धित थे। साहित्य में स्वाधीनता आन्दोलन और राष्ट्र प्रेम की इन्हीं आयामों की प्रतिबिम्बित हो रही। परन्तु कहीं-कहीं राजभक्ति ने ब्रिटिश उपनिवेशवादियों के दमन चक्र से बचाव के लिए परिस्थितियाँ तैयार की। जहाँ सारी राजभक्ति अंग्रेजों की अंधस्तुति के रूप में प्रकट हुई है वहाँ अवश्य ही वह इतिहास बोध एवं इतिहास चेतना के स्थान पर इतिहास हीनता तथा ऐतिहासिक बोध की शून्यता का परिणाम है, अन्यथा राष्ट्र भक्ति के मूल तत्व के ऊपर राजभक्ति मुलम्मा बनकर आयी है। ये दो भावनाएँ हिन्दी एवं बंगला साहित्य के पिछली सदी के कवियों में थी। इसे स्वीकार करना कठिन है, जहाँ यह देखा गया कि एक ही कवि देश भक्त होने के साथ कभी कभी राजभक्त भी दिखाई देता है तो इस अन्तर्विरोध एवं द्वन्द्व के असल कारण को पहचानना अधिक नहीं। देश भक्त कवि ने भले ही सक्रिय रूप से राजनैतिक आन्दोलन नहीं चलाया हो तब भी कलम के बलबूते पर उसने अंग्रेजों के खिलाफ अपने मन की भावना निकाली और जनता को आगाह और सचेत किया। यह प्रवृत्ति हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु युग से लेकर छायावादोत्तर युग देखी जा सकती है।

भारतेन्दु युग में देश भक्ति एवं राजभक्ति :

भारतेन्दु युग में देश भक्ति और राज भक्ति दोनों साथ साथ चलती रही है। एक उदाहरण इस प्रकार है -

अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी

इन पंक्तियों में विदेशी शासन के प्रति रोष प्रकट है यह कहने की आवश्यकता नहीं । दूसरा उदाहरण :-

भीतर भीतर सब रस चूसै, बाहर से तन मन धन मूसै ।
जाहिर बातन में तेज, क्यों सखि ! साजन, नहिं अँग्रेज ।।

भारतेन्दु युग के साहित्यकारों की यदा कदा अँग्रेजों के प्रति प्रशंसात्मक उक्तियों को देखकर उसे राजभक्ति समझ लेना भूल होगी । उनकी राष्ट्रीयता की भावना के प्रति शंका करना अनुचित है । 1857 की क्रान्ति क्रान्ति के बाद जो व्यापक दमन चक्र चलाया गया था उसने साहित्यकारों को लगभग मूक बना दिया । परन्तु इंग्लैण्ड में कोई ऐसी पाबन्दी नहीं थी । इसलिए इस ऐतिहासिक घटना को लेकर इंग्लैण्ड में अनेकों रचनाएं हुईं । डा० सुरेन्द्रनाथ सेन का कहना था, "इंग्लैण्ड ने घटना के तुरन्त बाद जो साहित्य भण्डार प्रस्तुत किया उसकी तुलना में भारत ने केवल कुछ लोगों की भावनाएं की प्रकट की बहुत की थोड़ी व्याख्या और कारणों का विश्लेषण किया । कुछ विद्रोह के समर्थकों ने उसको कम किया ।"[1] जहाँ तक शिक्षित वर्ग का प्रश्न है -- सन् 1857 की घटना के प्रति कोई सहानुभूति नहीं रखता था । उसने उदार और सुधारवादी सरकार का पक्ष लिया और प्रतिगामी लोगों व नेताओं का विरोध किया । उन्हें डर था कि इससे प्रतिक्रियावादी शक्तियों को बल मिलेगा और वे सुधार का मार्ग अवरुद्ध कर देंगी । इस डर की अभिव्यक्ति किशोरीचन्द मित्र ने की और कहा कि 1857 का "सैनिक विद्रोह से अधिक कुछ नहीं है । भारत की जनता ने इसको कुछ भी

- -

1. 1857 : सेनानी सोहनीर, पृ० 25 - अठारह सौ सत्तावन और रुजगन्नरन - इन्द्र सक्सेना - पृ० 23 से उद्धृत

लेना देना नहीं है । शम्भुचन्द्र मुखोपाध्याय ने समकालीन समाचार पत्रों से एक पूरी सूची तैयार कर दी और यह दिखाया कि विद्रोह जिन क्षेत्रों में तीव्र और लोकप्रिय है वहाँ भी काफी "गड़बड़" है ।"[1] डा० शिवकुमार शर्मा भारतेन्दुकालीन साहित्य के अध्ययन का निष्कर्ष इस प्रकार देते है --"भारतेन्दु और उनके समकालीन लेखक हिंदी और हिन्दू जाति के उद्धार के लिए साहित्य रचा ।"[2] डा० गणपति चन्द्र गुप्त भारतेन्दु के संबंध में इस प्रकार लिखते है, "वस्तुतः भारतेन्दु की व्यापक राष्ट्रीयता में सभी धर्मों और सभी भाषाओं को सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त था । ······1857 के अनन्तर राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रथम प्रवर्तक नेता भारतेन्दु थे । यह देश का दुर्भाग्य था कि उनका देहान्त 34 वर्ष की अल्प अवस्था में ही हो गया । यदि वे कुछ वर्ष और भी जीवित रहते तो कांग्रेस का आरंभिक स्वरूप कुछ और ही होता ।"[3]

बंगला साहित्य में देश भक्ति एवं राज भक्ति :

बंगला साहित्य में राममोहन राय के जमाने से लेकर माईकेल मधुसूदन दत्त तक हिन्दू पुनरुत्थानवाद, देशप्रेम, ईसाई धर्म के आलोचना तथा राजभक्ति आदि प्रवृत्तियाँ चलती हुई दिखाई देती है । एक अजीब द्वन्द्व व असमंजस बंगला साहित्य को घेरा पड़ रहा था । आनन्द

- -

1. 1857: सैटेनरी मोन्यूमेंट पृ० 25 - अठारह सौ सत्तावन और सत्तावन -प्रदीप सक्सेना, पृ. 231 से उद्धृत।
2. हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ -शिवकुमार शर्मा-पृ. 4 8 [ऐसे आलोचक भारतेन्दु के "अंधेर नगरी" आदि नाटक तथा खड़ी बोली में लिखी कविताओं का सही मूल्यांकन नहीं कर पाते कविता की दृष्टि से भारतेन्दु का ब्रजभाषा काव्य कमई होन नहीं प्रताप नारायण मिश्र आदि के गद्य का भी साहित्यिक मूल्य कम नहीं
3. हिंदी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ -डा० शिवकुमार शर्मा-पृ.4 8

इसलिए कि भारत और यूरोप के सम्बंध एक ऐसे बिन्दु पर पहुँच गये थे जहाँ स्वीकार और इन्कार साथ साथ थे। स्वीकार इसलिए कि अंग्रेज विश्व में एक ऐसी भौतिक समृद्धि के उत्कर्ष पर पहुँचे हुये थे कि अविकसित देश उस स्थान को प्राप्त करने के लिए स्वाभाविक ही लालायित हो जाते। भारत एक एशियाई उपनिवेश की भूमिका में था एवं अंग्रेज एक शासक की भूमिका में थे एक ऐसा शासक जिसके साम्राज्य में सूरज कभी डूबता नहीं था, जो भौतिक एवं बौद्धिक शक्ति और समृद्धि को वहन करने वाला था। परन्तु जब वह इन शक्तियों के आधार पर भारत जैसे अविकसित देश को दीन, हीन, तुच्छ, असभ्य, लाचार एवं बेबस जानकर उसका क्रूरतापूर्ण दमन एवं शोषण कर रहा था तब उसके इस विकृत रूप से भारतवासी घृणा करने लगे। नवजागरण के फलस्वरूप सामाजिक उत्कर्ष, सांस्कृतिक उत्थान आदि भारतीय समाज की विशेषताओं के पनपने से साम्राज्यवाद व उपनिवेशवादी ब्रिटिश लोलुपता के विरुद्ध असन्तोष तीव्र हुआ।

अंग्रेजी औपनिवेशिक नीतियों के प्रति जागरूकता :

भारत में ब्रिटेन के आर्थिक शोषण तथा उपनिवेशवादी दृष्टिकोण को समझने एवं समझाने वाले प्रधान रूप से तीन व्यक्ति थे। इन्होंने औपनिवेशिक साम्राज्यवादी नीतियों का अधिक विश्लेषण किया थे थे - दादाभाई नौरोजी, न्यायाधीश महादेव गोविन्द रानाडे, तथा रमेश चन्द्र दत्त। दादा भाई नौरोजी एक सच्चे न्यायवादी थे जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन एवं सम्पत्ति भारत में राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने के लिए लुटा दी। महादेव गोविन्द रानाडे ने भारतीय पीढ़ी को

आधुनिक औद्योगिक विकास का मार्ग अवरुद्ध हुआ। रमेशचन्द्र दत्त जो सेवानिवृत्त आई०सी०एस० अधिकारी थे। जिन्होंने "द इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया" को प्रकाशित किया, जिसमें 1757 के बाद से उपनिवेश शासन के आर्थिक पहलू - पहलू का विस्तार से विश्लेषण किया। इन तीनों के अलावा रजनीपाम दत्त, जी०वी०जोशी, जी सुब्रमण्य अय्यर, जी०के०गोखले, पृथ्वीश चन्द्र राय तथा अनेकों राजनैतिक कार्यकर्ता व पत्रकार अंग्रेजों की उपनिवेशवादी नीतियों का परीक्षण कर रहे थे। इन लोगों ने अंग्रेजी शासन की प्रकृति व उद्देश्य से संबंधित प्रश्न उठाये। अंग्रेजों की औपनिवेशिक नीति, भारतीय आर्थिक विनाश में जिसका बड़ा हाथ था, उसे अनेक क्रान्तिकारियों, विचारकों, नेताओं और इतिहासकारों ने विश्लेषित किया। यदि नवजागरण की मूल विशेषताओं पर ध्यान दें तो यह तथ्य रेखांकित किया जा सकता है कि धार्मिक सुधारों के आवरण में सामाजिक सांस्कृतिक पक्ष को अधिक उजागर हुए थे और फिर लोगों राजनीतिक चेतना थी, उसमें शामिल हुई। 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम से जो क्रान्तिकारी चिन्ताधारा नवजागरण के रूप में विकसित हुई उसके बुनियादी प्रश्न आर्थिक चिन्तन से जुड़े थे।

अंग्रेजी उपनिवेशवाद और भारतीय नवजागरण :

अंग्रेजी उपनिवेशवाद के प्रभाव में भारत ने क्या खोया - पाया जानना आवश्यक है। औपनिवेशिक शासन ने भारत की आर्थिक बुनियाद ही मिटा दी थी और अर्थव्यवस्था के ढांचे पर भी अनेक परिवर्तन किये आर्थिक क्षेत्र में पूंजीवादी व्यवस्था का बीज बोया गया और उसे एक नए वर्ग, मध्य वर्ग का उदय होने लगा ... एक ऐसा वर्ग है जो सामाजिक और आर्थिक विकास में कोई महत्वपूर्ण योगदान नहीं देता

परन्तु इस वर्ग की उपेक्षा भी नहीं किया जा सकता। यह वर्ग पूंजीवादी व्यवस्था के पनपने एवं औद्योगिक विकास से उत्पन्न होता है और व्यक्तिवादी होता है। अंग्रेजों की उपनिवेशवादी आकांक्षाओं ने जिस मध्य वर्ग का जन्म हुआ था उसका मूल उद्देश्य था उपनिवेशवाद को मजबूत करना तथा उसके सहारे अपनी रोजी रोटी और मान प्रतिष्ठा के साधन जुटाना। इस मध्य वर्ग ने साहित्यकारों का ध्यान आकृष्ट किया और परवर्ती काल के साहित्यकारों ने इस मध्य वर्ग पर कविता व कथा साहित्य की रचना की। इस मध्य वर्ग की अंग्रेजी राजभक्ति भारतीय उपनिवेशवादी इतिहास में तमाम राष्ट्रीय भावनाओं और सामाजिक सुधारों के बावजूद कहीं न कहीं ब्रिटिश उपनिवेशवादी सत्ता की मान्यता का समर्थन करती है। नवजागरण के पुरोधाओं में से एक राजा राममोहन राय हिन्दू पुनरुत्थानवाद के लिए सक्रिय रूप से कार्य करते हुए अंग्रेजों की प्रशंसा भी करते हैं। । 23 में वे लिखते हैं "पिछले मुसलमान शासकों के राज्य में इस देश के निवासियों की सम्पत्ति बलात् छीन ली जाती थी। उनके धर्म का अपमान होता है और बलात् उनका धर्म बदला जाता -आखिर ईश्वर ने हमारी पुकार सुन ली और अंग्रेज जाति को भेजा जिसने इन अत्याचारियों की गुलामी से छुड़ा कर भारतवासियों को सुरक्षा प्रदान की। ।...... व्यापारी वर्ग तथा नवजागरण नेताओं को पसन्द आने वाले कानून बनाकर अंग्रेजी सरकार ने नवजागरण को अपने हितों के अनुकूल मोड़ने का भी कार्य किया। सती विरोधी, बाल्य विवाह विरोधी कानून बनाने की मांग नवजागरण के नेता करते थे जो पूरी हुई। यह अकारण नहीं कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के लिए अंग्रेज भक्त आर्य हो गए।"[1] परन्तु, नवजागरण की सुधारात्मक भूमिका

- -

• रमेश रावत द्वारा प्रकाशित "नवजागरण और इतिहास लेखन" -विशेषांक सम्पादक - सुरेन्द्र सक्सेना - पृ. 95

उपलब्धियाँ भी है। भारत में उद्योगीकरण का आरंभ एवं तत्संबंधी भौतिक समृद्धि नवजागरण की ही देन है। राष्ट्रीकरण एवं आधुनिकीकरण के बीच द्वन्द्व में कई बार आधुनिकीकरण तथा इंडस्ट्रीकरण की वाहक शक्तियाँ राष्ट्रीय न होकर औपनिवेशिक दिखाई देती थी। इस तरह नये वातावरण एवं पारम्परिक मूल्यों के बीच तनाव उत्पन्न हो रहा था। फिर भी इस तथ्य से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता कि विज्ञान की संस्कृति के प्रति जागरूकता नवजागरण की ही देन है। ऐसा जा सकता है कि जिस आधुनिकीकरण के कारण व्यापार व्यवसाय का विकास हुआ था। वह अंग्रेजों की उपनिवेशवादी हितों के अनुरूप था जिसने भारतीय कला, शिल्प तथा कारीगरी का समूल नाश करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। धर्मपाल ने अपनी शोधपूर्ण पुस्तक 'Indian Science and Technology in the Eighteenth Century : Some contemporary European Accounts' में बताया है कि भारत में प्राचीन से हर क्षेत्र में विज्ञान और तकनीक का जो प्रचलन था उसके पुरोहित लोग वंचित थे। अंग्रेजों ने इसके संदर्भित कागजात "इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी" तथा ब्रिटेन के अन्य पुरातात्विक गृहों में रख छोड़े है जहाँ 1600 तथा 1784 से 1947 तक की वैज्ञानिक तकनीकी स्थिति का विवरण उपलब्ध है। धर्मपाल के शोध में उनका उपयोग नहीं हुआ है फिर भी धर्मपाल की पुस्तक आँखे खोल देने वाली है।

लेकिन भारत के विषय में अंग्रेजों ने जानबूझ कर इसे "कृषि प्रधान देश" और उस की मौसम और भाग्य पर निर्भर होने का भ्रम तमाम पुस्तकों के सहारे फैलाया। डॉ० धर्मपाल स्वयं तथा अन्य इतिहासकारों ने मुगल काल में भारतीय कृषि तथा उद्योग के क्षेत्रों में व्यवस्थित विज्ञान और तकनीक के विषय में गंभीर तथा महत्वपूर्ण शोधकार्य किया है।

निम्न जातियों के प्रति विशेष रूप से नम्रता, सहिष्णुता, उदारता, करूणा आदि भावों को प्रदर्शित करके वर्ग भेद को अधिक गहरा नहीं तो बरकरार रखा जाता है । ऐसे लोग आवेश अथवा वैचारिक वेग में गौतम बुद्ध, भक्त कवियों अथवा गांधी जी जैसों के सामाजिक आन्दोलनों के साथ न्याय करना तो दूर उन्हें सही परिप्रेक्ष्य में रखकर समझने की भी चेष्टा नहीं करते और इस तरह उनकी भ्रामक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं । परिणामस्वरूप वे राष्ट्रीयता और औपनिवेशिकता में घालमेल कर देते हैं ।

हिंदी साहित्य में यद्यपि भारतेन्दु एवं उनके अनुयायियों में देश भक्ति के साथ राजभक्ति का भी प्रदर्शन मिल जाता है। लेकिन उसको सही परिप्रेक्ष्य में रखते ही वास्तविकता उजागर हो जाती है कि वहाँ राजभक्ति देश भक्ति पर मुलम्मे के समान थी । बंगला में ईश्वरगुप्त जैसे आधुनिक कवि जब 1857 के स्वाधीनता संग्राम की निंदा व अंग्रेजों का समर्थन करते है तो इसे भी तत्कालीन परिप्रेक्ष्य में रखकर देखने की जरूरत है ताकि नवजागरण की स्थानिकता का वैशिष्ट्य सामने आ सके ।

द्विवेदी युग : औपनिवेशिकता के प्रति प्रतिक्रिया :

कई विद्वान मानते है कि सन् 1857 का स्वाधीनता संग्राम, हिंदी प्रदेश के नवजागरण की पहली मंजिल है, दूसरी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का युग है तथा तीसरी महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके सहयोगियों का कार्य काल है । "द्विवेदी जी अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाने के प्रबल विरोधी थी । वह बुद्धिवाद और वैज्ञानिक विचार पद्धति के समर्थक थे और रहस्यवाद के विरोधी थे । वह भारत के उद्योगीकरण के पक्षपाती थे । चरखे करघे के आधार पर भारतीय अर्थ तंत्र पुराने ढंग

से गठित हो इसके वहकायल न थे । उनके लेखन के अध्ययन से विदित होता है कि हिंदी नवजागरण की अपनी विशेषताएं है, वह बंगाल या गुजरात के नवजागरण से भिन्न है ।[1] यहां यह प्रश्न उठता है कि क्या द्विवेदी जी द्वारा रखे गये आदर्शों से तत्कालीन हिंदी साहित्य परिचालित हुआ ? हम पाते है कि मैथिलीशरण गुप्त जैसे राष्ट्रीय भावधारा के कवियों तथा अन्यान्य लेखकों का द्विवेदी जी ने मार्गदर्शन किया था । वे हिंदी साहित्य की अत्यंत समृद्ध परंपरा को लेकर गर्वित होने वाले अतीत जीवी नहीं थे, बल्कि वर्तमान में इसके भंडार को भरने के लिए वे भारतीय तथा विदेशी साहित्य से अनुवाद तथा मौलिक लेखन दोनों पर पर्याप्त बल देते थे । उन्होंने स्वयं संस्कृत, मराठी, अंग्रेजी आदि भाषाओं से अनुवाद किये तथा दूसरों से विभिन्न भाषाओं से हिंदी में अनुवाद करवाये । बहुत से मौलिक कवि लेखकों को भी सामने लाने में उनकी कोई सानी नहीं थी ।

परन्तु सुधाकर चट्टोपाध्याय जी का कहना है कि "जब तक बंगला साहित्य संबंधी ज्ञान को प्राप्त न किया जाय तब तक हिंदी साहित्य की गति या प्रकृति को समझना असंभव है । वे विशेषकर भारतेन्दु की मौलिकता पर प्रश्न चिह्न लगाते है चूंकि स्वयं भारतेन्दु का कहना है कि -

अपनी सम्पत्ति शालिनी ज्ञानवृद्ध बड़ी बहन बंग भाषा के अक्षय रत्न भंडार की सहायता से हिंदी भाषा बड़ी उन्नति करें ।[1]

---

1. प्राचीन हिंदी नाटक : भारतेन्दु -पृ० 8
भारतेन्दु ने संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला आदि से अनेक नाटकों के अनुवाद/छायानुवाद हिंदी में प्रस्तुत किये, मगर इससे उनके मौलिक लेखन की मौलिकता पर प्रश्न चिह्न नहीं लगाया जा सकता । उन्होंने अनेक मौलिक नाटक, कविताएं, प्रहसन, निबंध, भाषा वर्णन लिखे जिनका ऐतिहासिक एवं साहित्यिक महत्व बहुत है ।

बंकिम और माईकेल अनेक देशी और विदेशी भाषाओं के ज्ञाता थे जिनमें संस्कृत, फारसी, तमिल, लैटिन, फ्रेंच, अंग्रेजी आदि प्रमुख थे। इस तरह तत्कालीन बंगला साहित्य को अनेक देशी – विदेशी भाषाओं के साहित्यिक संपर्क का लाभ मिला था। हिंदी के रचनाकारों में भी दुनिया की अनेक भाषाओं के साथ भारतीय भाषाओं में गतिथी। 1903 से 1920 तक की "सरस्वती" पत्रिका की फाइल में ऐसे सैकड़ों नमूने मिलते है। भारतेन्दु तथा द्विवेदी युग में संस्कृत के अलावा जिन भारतीय भाषाओं के साहित्य से घनिष्ठतम संपर्क अनुवाद के माध्यम से रहा उनमें मराठी बंगला, उर्दू, गुजराती प्रमुख थी। अतः यह कहना गलत है कि बंगला साहित्य, अंग्रेजीसाहित्य का अनुकरण है अथवा हिंदी साहित्य बंगला और अंग्रेजी साहित्य का अनुकरण है। आधुनिक भारतीय भाषाओं में साहित्य की उन्नति अंग्रेजी साहित्य के अनुकरण से हुई है – यह मानना औपनिवेशिक मानसिकता का प्रत्यक्ष उदाहरण है।

जो लोग यह मानते है कि "द्विवेदी युग में राष्ट्रीय काव्य की जो आशातीत अभिवृद्धि हुई, उसका हेतु द्विवेदी जी न होकर उस युग के अन्य प्रतिभा सम्पन्न साहित्य है"[1] वे उथले विचारक है। उनके अनुसार यह सत्य है कि द्विवेदी जी का महत्व ऐतिहासिक अधिक है, साहित्यिक कम। हिंदी साहित्य में द्विवेदी युग एक ऐसा परिवर्तन काल है जिसमें द्विवेदी जी को भाषा में परिष्करण व परिमार्जन करने का सम्पूर्ण श्रेय दिया जा सकता है। परन्तु महावीर प्रसाद द्विवेदी के महान कार्य को अनदेखा नहीं किया जा सकता। अब तो उनकी ग्रंथावली भी छप गयीहै – जिसके खंडों को देखकर भी बहुत कुछ अनुमान लगाया जा सकता

---

1. हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियां – डा० शिवकुमार शर्मा–पृ० 439

है । द्विवेदी युग गद्य और काव्य दोनों का युग रहा है । इस क्षेत्र में हिंदी भाषा फलने फूलने लगी और इसमें बंगला का भी सहयोग था । सुधाकर चट्टोपाध्याय के निम्न कथन से इस बात की पुष्टि होती है, "आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रथम पर्व {1868-1893} ने बंगला के नेतृत्व को स्वीकार किया । कभी कभी अनुवाद होने लगे - यह भी स्वीकृति ही थी । आधुनिक हिंदी साहित्य के द्वितीय पर्व {1893-1918} में बंगला से अनुवाद करने का उपक्रम जोर शोर से शुरू हुआ ।"[1] आधुनिक युग में जब बंगला से हिंदी में अनुवाद कार्य जोर शोर से चल रहा था तब निश्चय ही बंगला साहित्य महत्वपूर्ण रूप से विकसित हो रहा था । बंगला ने इस श्रेष्ठता को प्राप्त करने के लिए जिन साहित्यों से प्रेरणा प्राप्त की थी, उनमें अंग्रेजी साहित्य भी था । श्री आलोक राय "बांगाली कविर काव्य चिन्ता उनिश शतक" में लिखते हैं - "श्रेष्ठ काव्य या विशुद्ध काव्य का अर्थ बांगाली कवियों ने अंग्रेजी रचनाओं आदर्श माना है । ऐतिहासिक विषय के अवलम्बन से छन्दोबद्ध रोमान, पौराणिक कहानियों के नवीन तात्पर्य लेने से साहित्यिक महाकाव्य सामयिक विषयों के अवलम्बन से व्यंग्य कविता एवं आत्मकथात्मक उपादानों की सहायता से छोटी कविताएं हर एक काव्य धारा का बंगाली कवियों द्वारा अनुशीलन हुआ ।"[2] इन सभी काव्य प्रकारों को अंग्रेजी का सीधा प्रभाव ग्रहण नहीं समझा जाना चाहिए । कवियों में से अनेक

---

1. आधुनिक हिंदी साहित्ये बांग्लार स्थान - सुधाकर चट्टोपाध्याय-पृ. 10 11

2. बांगाली कविर काव्य चिन्ता - उनिश शतक - आलोक राय, पृ. 66
"श्रेष्ठ काव्य बा विशुद्ध काव्य बलते बांगाली कवि इंग्ली रचना के आदर्श मने करे छेन । ऐतिहासिक विषयावलम्बने Metrical Romance
पौराणिक काहिनीर नवतर तात्पर्य अवलम्बने Literary Epic
सामयिक प्रसंगावलम्बने Satirical Poem एवं आत्म जैवनिक
उपादानेर साहाय्ये Smaller Poems एक एकटि काव्यधारा
बांगाली कविर द्वारा अनुशीलन हयेछे ।"

अंग्रेजी साहित्य रूपों से परिचित थे । वे परंपरागत भारतीय साहित्य रूपों से भी अच्छी तरह परिचित थे । अपने अनुशीलन {अनुकरण नहीं} के द्वारा उन्होंने अपने लिए अलग राह निकाली थी ।

ब्रिटिश उपनिवेशवादी चाल :

आधुनिक भारतीय भाषा साहित्य में उपनिवेशवादी मानसिकता को जगाने तथा उसे और भी अधिक व्यापक बनाने के लिए तथा अंग्रेजी शिक्षा और साहित्य की "श्रेष्ठता" को बताने के लिए तत्कालीन अंग्रेज लेखकों ने यहां की प्रान्तीय भाषाओं विशेषकर बंगला में अनेक विषयों पर ग्रंथों की रचना की एवं अपने समर्थ भाषा ज्ञान का परिचय दिया । कुछेक उदाहरण इस अध्याय के पीछे परिशिष्ट एक में दी जा रही है ।

इस प्रकार अंग्रेजों ने क्षेत्रीय भाषाओं में ग्रंथों की रचना करने का प्रयास किया । वे इस प्रयास में कहां तक सफल हुए यह विवेच्य नहीं है । परन्तु इस प्रयास के पीछे उनके अपने स्वार्थपूर्ण उद्देश्य थे, वे यहां की क्षेत्रीय भाषा को सीखकर अपने मंतव्य का प्रचार करना चाहते थे -अपना देश, देशवासी, अपनी सभ्यता संस्कृति आदि की श्रेष्ठता स्थापित करना चाहते थे तथा "श्रेष्ठता" के इस संदेश को आम जनता तक पहुंचाना चाहते थे । यह साम्राज्यवादी उपनिवेशवादी प्रवृत्ति का अंग ही था ।

दूसरा उद्देश्य अपनी सामर्थ्य को बढ़ा चढ़ाकर प्रदर्शन करके भारतीयों में हीन भावना भर देना, भारत को उसके अतीत की अक्षुण्ण परम्परा के मोह से मुक्त करना एवं भारतीय मानस पटल में अंग्रेजियत

का भाव भर देने का प्रयास करना था । इस संदर्भ में सन् 1853 में "न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून" में प्रकाशित अपने एक लेखमें कार्ल मार्क्स ने लिखा है -

"यह सच है कि हिन्दुस्तान में सामाजिक क्रान्ति लाने के लिए ब्रिटेन ने जो कुछ किया था उसके पीछे उसके निकृष्ट स्वार्थों की पूर्ति का लक्ष्य निहित था । इसके लिए उसने जो तरीका अपनाया वह दुष्टतापूर्ण था । पर प्रश्न यह नहीं है । प्रश्न यह है कि क्या मनुष्य जाति एशिया की मौलिक व्यवस्था में सामाजिक क्रान्ति हुए बिना अपने लक्ष्य तक पहुँच सकती है ? यदि नहीं तो इंगलैण्ड ने जो अपराध किये है इस क्रांति को लाने में वह अनजाने इतिहास का हथियार बन गये है ।"[1]

हिंदी व बंगला प्रांत में उपनिवेशीकरण की स्थिति :

प्रेस और समाचार पत्रों के कारण जानकारी तथा वैचारिक स्वातंत्र्य को बढ़ावा मिला और इन्हीं माध्यमों के द्वारा बुद्धिजीवियों ने अंग्रेजों के अत्याचारों के विरुद्ध आवाज भी उठायी । तब अंग्रेजों ने अनेक आज्ञा पत्र जारी किये तथा वैचारिक स्वातंत्र्य पर तरह तरह के प्रतिबंध लगाये । कुछ दमन के कारण से तथा कुछ गुलाम मानसिकता तथा खुशामदी होने से कतिपय भारतवासी भी इनके प्रशंसक बन गये । द्विवेदी युगीन कवि भी इससे छुटकारा न पा सके । कुछ लोगों का यह मानना है कि मानसिक दासत्व से मुक्ति पाने का उपनिवेश विरोधी चेतना

---

1. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास : बच्चन सिंह -पृ. 296 पर उद्धृत

जाग्रत करने का श्रेय पाश्चात्य शिक्षा को ही दिया जा सकताहै । परन्तु वस्तु स्थिति इससे भिन्न थी । भारतीयों को दिमागी तौर पर गुलाम बनाने के लिए अंग्रेजी शिक्षा की नींव डाली गयी थी ।इस शिक्षा में भारतीय भाषा, संस्कृति तथा जीवन के लिए स्थान नहीं था और विलायती रहन सहन और सोच को ही यहां श्रेष्ठ बताया जाता था । इसीलिए आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन आदि अनेक संस्थाओं ने भारतीयता पर आधारित शिक्षा व्यवस्था लाने की चेष्टा की । यह अवश्य है कि अंग्रेजी शिक्षा पाये हुए अनेक लोगों में भी राष्ट्रीयता तथा क्रांतिकारी चेतना दिखायी दी । किन्तुअंग्रेजी शिक्षा का मकसद स्थायी दास, कर्मचारी वर्ग तैयार करना था और इसमें अंग्रेज कामयाब हुए ।

अंग्रेजों ने जिस तरह से भारत की उद्योग व्यवस्था को नष्ट कर दिया था वैसे ही पारम्परिक शिक्षा व्यवस्था को भी । डा० रामविलास शर्मा ने "भारत में अंग्रेजी राज तथा मार्क्सवाद" और धर्मपाल ने "द ब्यूटीफुल ट्री" में विस्तार से इस पर चर्चा की है । परम्परागत भारतीय शिक्षामनुष्य को समाज से जोड़ती थी, अंग्रेजी शिक्षा काटती है ।

आजादी के बाद गठित "शिक्षा आयोगों" [एजुकेशन कमीशन] के अध्यक्ष क्रमशः डा० सर्वेपल्ली राधाकृष्णन एवं प्रो० दौलतसिंह कोठारी ने अपनी रिपोर्टों की भूमिका में अंग्रेजी शिक्षा की खामियों को उघाड़ कर रख दिया है ।

1835 के पहले रिपोर्ट में विलियम एडम् ने पाया था कि 1830 मेंबिहार और बंगाल के गांवों में कोई एक लाख स्कूल मौजूद थे । जी०एल प्रेन्डरगास्ट ने उससे पहले पाया था कि बम्बई प्रेसिडेंसी में कोई छोटा

या बड़ा गांव ऐसा न था जिसमें कम से कम एक स्कूल न हो - बड़े गांवों में ज्यादा स्कूल थे । 1812-13 में टामस मनरो ने बताया था कि 'Every village had a school.' पंजाब में 1850 में डा॰पी॰ डब्ल्यू॰लैटनरने ऐसी ही रिपोर्ट दी थी ।अगर अंग्रेजों ने आम जनता के लिए शिक्षा की व्यवस्था की तो 20 अक्तूबर, 1931 को लन्दन में गांधी जी ने क्यों कहा था कि "India today is much more illiterate than it was before fifty or hundred years ago." अंगेजों ने भारतीय शिक्षा व्यवस्था संस्कृति आदि की जड़ खोद डाली । धर्मपाल के शब्दों में - 'They scratched the soil and began to look at the root, and left the root like that, and the beautiful tree perished.'

18वीं सदी में भारत में विशेषकर मद्रास प्रेसिडेंसी का अध्ययन कर धर्मपाल ने बताया है कि भारत की अपनी शिक्षा व्यवस्था इंग्लैण्ड की तुलना में कमजोर नहीं थी - चाहे जनसंख्या के अनुपात में स्कूल की संख्या हो, छात्रों की संख्या हो, विद्यालय का समय हो, छात्रों की प्रतिभा और अनुशासन हो, शिक्षकों की योग्यता हो, निम्नवर्ग का प्रतिशत हो, पाठ्य विषय का विस्तार हो आदि ।

उस जमाने की श्रेष्ठ प्रतिभाओं का संस्कृत ज्ञान गहरा था । राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, दयानंद सरस्वती, विवेकानन्द, वीरेशलिंगम पंतुलु - ये सभी अद्भुत प्रतिभाशाली समाज सुधारक संस्कृत की देन थे ।

स्वत्वबोध की भावना तथा निज भाषा के प्रति प्रेम :

कुछ विद्वानों की राय ये थी कि जनता को वास्तविकता से अवगत कराने के लिए आवश्यक नहीं कि शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही हो । "बंगाल में अंग्रेजों के प्रति अधिक उत्साह था किन्तु उसी बंगाल में सन् 1838 में उदयचन्द्र ने बंगला भाषा में एक लेख लिखा था । उसका अभिप्राय यह था कि इस देश के लोग अपनी भाषा का अध्ययन करके ही वह क्षमता प्राप्त कर सकते है । जिससे वे अपनी गुलामी की बेड़ियां काट सके । बंकिम अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त लोगों को नकलत् और विवेकानंद रीढ़ हीन कहते थे ।"[1] चित्तरंजन दास ने "काव्येर कथा" नामक अपनी किताब में अफसोस करते हुए इस प्रकार लिखा है -

"यूरोपीय साहित्य में मन को डुबोकर हम अन्त में क्या बंगला कविता का जो प्राण है उसे ही खो देंगे ?"[2] आगे भी लिखा है, "बंगाल में पश्चिम के नव आगमन से, उसके आलोक में उसकेहृदय की भावनाएं सूखने लगी, बंगाल का दीपक बुझने लगा । बंगाल ने सदा पूर्व दिशा में ही सूर्य को उदित होते देखा है, परन्तुअकस्मात पश्चिम के आकाश में बिजली की कौंध के समान आलोक को देखकर उसके नयनों में चका चौंध हो गई ।बंगाल एकदम मुह्यमान हो पड़ा ।"[3]

- -

1. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास -बच्चनसिंह -पृ॰ 299
2. चित्तरंजनदास - काव्येर कथा पृ॰ 13 "यूरोपीय सहित्ये मन डुबाइया दिया आमरा कि शेषेबांगला कवितार जे प्राण ताहाइ हाराइया फेलबो?
3. -वही- पृ॰ 57 -"बांगलाय प्रतीच्येर नव आगमने, ताहार. आलोके, ताहार बुकेर सलिता शुखाइया गेल, बांगलार दीप निभिया आसिलो, बांगला चिर दिन पूर्व दिकेइ सूर्य उठिते देखियाछे, अकस्मात परिचम आकाशे बिजली आलकेर मत आलोक ताहार नयने, धांधा लागिल, बांगला एके बारे मुह्यमान हइया पड़िल ।"

इस तरह भारत में विशेषकर बंगाल में ब्रिटिश उपनिवेशवादियों के चंगुल में फंसना, प्रभावित होना तथा उसके विरूद्ध आवाज उठाना तीनों ही स्थितियां देखते हैं । सत्रह नवम्बर 1937 में बाम्बे क्रॉनिकल में छपा था - It has often been a charge made against the British in India that they have been neglecting civilization and culture of the Indian people by giving western training and thus to a large extent denationalising the people as well." 1

परन्तु बंगला साहित्य में जहाँ अनेक लोग पश्चिमी चकाचौंध से घबरा कर अंधे हो गये थे, वहीं बंकिम और रवीन्द्रनाथ जैसे महान रचनाकारों के कारण बंगला साहित्य में मौलिकता की परम्परा को बनाए रखा जा सका । इस बात की पुष्टि प्रियरंजन सेन करते हैं - "It was fortunate that there were persons at the helm in her course onward at the critical juncture, persons who were imbued with strong patriotism, sturdy common sense, abundant critical spirit and sufficient grounding in the culture of the country - specially Bankim and Rabindranath who saved her from mere slavish imitation and guided her to beneficial assimilation." 2

हिंदी साहित्य में भारतेन्दु काल में विषय मोटे तौर पर रूढ़ियों के विरोध तथा समाजसुधार तक सीमित था, परन्तु बाद में साहित्य में नाना आदर्शों की सृष्टि उन्मुक्त एवं स्वच्छन्द भाव से होने लगी । द्विवेदी काल में इस स्वच्छन्द भावना का विकास हुआ ।

- -

1. Western influence in Bengali literature - Priya Ranjan Sen - Page 275.

2. -वही- पृ. 278

साहित्य में राष्ट्रीय आदर्श की भावना से ऐतिहासिक एवं पौराणिक घटनाओं तथा पात्रों को समाविष्ट किया जाने लगा। ऐसे पात्रों को साहित्य में स्थान मिलने लगा, जो रूढ़ियों से उपेक्षित थे। राष्ट्रीय पुनर्जागरण के आन्दोलनों का देश और उसके साहित्य पर जो व्यापक प्रभाव पड़ा उसके फलस्वरूप साहित्य में मध्य वर्ग के साथ - साथ निम्न वर्ग का भी चित्रण होने लगा। हिंदी साहित्य में आत्म गौरव की भावना, अतीत के प्रति गर्व एवं वर्तमान में अपनी अस्मिता को खोजने का प्रयास हो रहा था। अतीत गौरव और स्वाभिमान की पुनः प्रतिष्ठा करने का दृढ़ संकल्प द्विवेदी युग के प्रत्येक कवि में प्रबल रूप से विद्यमान था।

द्विवेदी युगीन साहित्यकारों पर संकीर्णता का आरोप :

द्विवेदी युगीन कवियों को किसी किसी आलोचक के द्वारा संकीर्ण नजरों से भी देखा गया। इस युग की राष्ट्रीयता को संकीर्ण एवं साम्प्रदायिकता बताने वाले डा० शिवदान सिंह चौहान का कहना है -" आश्चर्य की बात तो यह है कि उन्नीसवीं शताब्दी में ही नहीं बीसवी शताब्दी के पहले दो दशकों तक अर्थात छायावादी काव्य धारा के फूटने से पहले तक के हिंदी कवि [महावीर प्रसाद द्विवेदी, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध और मैथिलीशरण गुप्त] इस संकीर्ण घेरे का अतिक्रमण करने का साहस नहीं कर पाए। जातिगत, सम्प्रदाय गत और भाषागत स्वार्थों से ऊपर उठकर वे अपनी वाणी में राष्ट्रीय

एकता का वह उदात्त स्वर नहीं फूंक पाए जिसने रवीन्द्रनाथ ठाकुर और इकबाल (पाकिस्तान की माँग से पहले के इकबाल) के कंठ से निकल कर सारे देश में नया स्पन्दन भर दिया था ।"[1] द्विवेदी युग पर संकीर्णता का आरोप लगाने वाले मानते है कि इस युग की राष्ट्रीय भावना जातीयता पर आधारित थी । डा० केसरीनारायण शुक्ल इस संबंध में कहते है --"इस समय जो राष्ट्रीय जागरण हुआ वह एक प्रकार से हिन्दू जागरण था, क्योंकि इस जागरण में हिन्दू इतिहास और परम्परा का आश्रय या अवलम्बन प्रधान था । गौरव की भावना भी हिन्दुओं में ही जगी और हिन्दू ही अतीत के समान वर्तमान और भविष्य को सुधारने तथा समुज्ज्वल बनाने को सचेष्ट हुए । इस प्रकार यह राष्ट्रीय जागरण और हिन्दू पुनरूत्थान दोनों बना, फिर भी इन सब परिस्थितियों का सबसे बड़ा और शुभ परिणाम यह हुआ कि जनता में हीनता की भावना दूर हुई और पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध कम हो गई ।"[2] परन्तु राष्ट्रीय जागरण को हिन्दू पुनरूत्थानवाद कहना अनुचित होगा । ब्रिटिश उपनिवेशवादी संस्कृति से टक्कर लेने के लिए हिन्दू - मुस्लिम एकजुट हो गये थे । वह काल सांस्कृतिक नवजागरण का भी काल था ।

- -

1. हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ -शिवकुमार शर्मा -पृ० 421 पर उद्धृत (शिवदान सिंह चौहान जो आरोप हरिऔध, गुप्त आदि पर लगा रहे है, वही आरोप अधिक तीव्रता से इकबाल (खासकर "बाल-ए-जिब्रील") पर भी लगाया जातारहा है । दरअसल राष्ट्रीयता को भीहिन्दू मुस्लिम खेमें में बांट देना अँग्रेजों की चाल थी जिसे क्रांतिकारी बखूबी समझते थे ।

2. हिंदी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ -शिवकुमार शर्मा, पृ० 444 शिवदान सिंह और केसरी नारायण शुक्ल दोनों के ही चिंतन अतिवादी है और सही परिप्रेक्ष्य को नकारते है । हिंदी तथा उर्दू का तत्सामयिक साहित्य एवं सामाजिक, राजनीतिक चेतना में हिन्दू मुसलमान दोनों ही वर्गों का योगदान था । अगर पृथ्वीराज चौहान, शिवाजी जैसे नायकों की प्रशंसा को कोई राष्ट्रीयता के बदले हिन्दूवाद समझ ले तो इसे समझ का फेर ही कहा जा सकता है ।

द्विवेदी युगीन जातीय प्रेम में कोईसाम्प्रदायिकता या संकीर्णता नहीं है । यह जातीय प्रेम देशी - विदेशी देश प्रेम भी है । इस नवजागरण में देशी - विदेशी सांस्कृतियां आपस में टकराती है और दोनों ही अपनी पहचान को एक दूसरी से श्रेष्ठ बनाने पर तुली हुई थी । उपनिवेशवादी अंग्रेज भारतीय संस्कृति को हेय की दृष्टि से देखते थे । आर्थिक दृष्टि से भारत भले ही पिछड़ा था परन्तु वह अपनी संस्कृति का सामाजिक एवं मूल्यगत महत्व को जान चुका था । भारत के अतीत के गौरव गान में शामिल होने वाले केवल भारतीय नहीं बल्कि मैक्सूलर एवं विलियम जोन्स जैसे यूरोपीय लोग भी थे । यह सच है कि इस देश के कुछ लोग पहले पहल अंग्रेजी सभ्यता से प्रभावित हुए परन्तु कालांतर में उनकी औपनिवेशिक मानसिकता से परिचित हो गए । वे अपनी गौरवमय सांस्कृतिक इतिहास के प्रति उत्सुक होने लगे थे । भारतीय नवजागरण से सम्बद्ध महापुरूषों ने अपनी अस्मिता की प्रतिष्ठा तथा जनता की जागरूकता के लिए संस्कृति का आधार ग्रहण किया । राजा राममोहन राय ने उपनिषदों का सहारा लिया तो विवेकानंद ने अद्वैत वेदान्त का । स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेद का । इनके आधार पर धार्मिक भेद भाव, ऊंच - नीच, छूआछूत, बाह्याडंबर, जाति-पाति का जमकर विरोध किया । उनके इन विचारों को नई दिशा देने का काम अंग्रेजी उपनिवेशवाद तथा तत्कालीन समाज की ज्वलंत समस्याओं ने किया ।[1]

- -

1. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - बच्चन सिंह - पृ. 301/302

द्विवेदी युगीन नवजागरण का अंर्तविरोध :

स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदी का राष्ट्रीयता संबंधी मानसिक विकास को देखना रोचक है । "सरस्वती" ने राष्ट्रीय भावना को जाग्रत किया । उसमें कुछ अंशों तक हिन्दू पुनरूत्थानवादी रचनाएं भी प्रकाशित होती थी । "सरस्वती के प्रकाशन के आरंभिक वर्षों में द्विवेदी जी कुछ भी ऐसा छापने को तैयार न थे जिसमें अंग्रेजी सरकार के विरोध की गंध आती हो । यही नहीं वर्षों तक उसमें प्रतिक्रियावादी लेख छपते रहे । राजभक्ति के समर्थन में उन्होंने जो लिखा - लिखवाया, उसकी नींव तो भारतेन्दु के समय में ही पड़ गई थी । सन् 1904 की "सरस्वती" में महारानी लक्ष्मीबाई पर एक लेख छपा, । उसमें उन्हें इसलिए अच्छा कहा गया है कि उन्होंने 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में अंग्रेजों की सहायता का वचन दिया था । उसी लेख में तात्या टोपे को नृशंस हत्यारा कहा गया था । इसके लेखक स्वयं द्विवेदी जी थे । सन् 1905 की सरस्वती में, जिस वर्ष बंग - भंग हुआ, सन् 1857 के एक ऐसे राजा की प्रशस्ति छपी जिसने अंग्रेजों की सहायता की थी । सन् 1908 की "सरस्वती" में संपत्तिशास्त्र की भूमिका छपी । इसकी भूमिका के प्रकाशन के बाद से "सरस्वती" का रुख राष्ट्रीय हो गया ।"[1] इस राष्ट्रीयता के उत्थान की पृष्ठभूमि में तत्कालीन स्वाधीनता आन्दोलनों के प्रभाव को देखा जा सकता है । 1904 में जैसे जापान ने रूस को हराया एशियावासियों के मन में गोरे जातियों को उच्च मानने की भावना

---

1. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास - बच्चन सिंह - पृ. 333

विनष्ट हो गई । सन् 1905 में बंग - भंग से अंग्रेजी शासन के विरूद्ध असंतोष फैला तथा स्वदेशी आन्दोलनों का रूख क्रांतिकारी हो गया । इन भावनाओं और अन्तर्विरोधों का प्रतिफलन साहित्य में प्रतिफलित हुआ ।

द्विवेदी युगीन समाज की आर्थिक स्थिति :

अंग्रेजों ने भारत के पुराने आर्थिक ढांचे को बदल दिया था । "जमींदारी और इस्तमरारी बन्दोबस्त के कारण जमीन को क्रय विक्रय करने की खुली छूट मिल गई । वह व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप में बदल गई । व्यावसायिक खेती को बढ़ावा मिला । कच्चा माल प्राप्त करने के लिए अंग्रेजों ने कपास, पटसन, जूट और नील की खेती को प्रोत्साहन दिया । लोगों को नील बोने के लिए बाध्य किया जाता था । जो, गेहूं, धान के स्थान पर डर के मारे किसान नील बोते थे । इससे खाद्यान्न कम पड़ जाता था । बंगाल में इसका विरोध हुआ । चंपारन में महात्मा गांधी का सत्याग्रह आन्दोलन भी मुख्यतः नील की खेती के विरोध में ही हुआ था । कच्चा माल विलायत भेजा जाता था और वहां से पक्के माल के रूप में बदलकर भारत के बाजारों में पहुंच जाता था ।"[1]

आर्थिक स्थिति का सीधा प्रभाव समाज पर पड़ा जिससे सामाजिक संरचना में भी परिवर्तन आया । भारतीय सामाजिक ढांचे के तीन प्रमुख घटक है - वर्ण और जाति व्यवस्था, परिवार व्यवस्था और

1. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास - बच्चन सिंह - पृ. 296/297

ग्रामीण समुदाय । औद्योगिक समाज के आने से वर्ण व्यवस्था शिथिल पड़ गई । परन्तु वर्ण एवं जाति से मुक्तहोकर उद्योग धन्धों व पेशे की रचना नहीं हुई । शिक्षा प्राप्त करने के कारण ऊंची जातियों का पश्चिमीकरण एवं नागरीकरण हो रहा था । परन्तु निम्न जाति के पास आधुनिक जगत में प्रवेश करने के लिए न तो साधना थी और न प्रेरणा । इस युग के कवि को समाज की सर्वांगीण उन्नति अभीष्ट थी । जिस प्रकार बंगाल में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर तथा आंध्र के वीरेशलिंगम ने विधवाओं के उद्धार हेतु कार्य किया उसी प्रकार हिंदी साहित्य में श्रीधर पाठक जैसे कवियों ने विधवाओं की दीन दशा के अत्यंत करूण चित्र अंकित किये । हरिऔध ने अछूतोद्धार, सामाजिक कुरीतियों और कुलीनता आदि पर व्यंग्यात्मक कविताएं लिखी । स्त्री शिक्षा एवं विधवा विवाह पर मैथिलीशरण गुप्त ने भी कई कविताओं की रचना की । विद्यासागर ने जहां नारी के स्तर को ऊंचा उठाने का प्रयास किया । वहां मैथिलीशरण गुप्त ने पौराणिक कथाओं के उपेक्षित नारियों के प्रति हमदर्दी जतायी । इस युग में केवल नारियों के प्रति ही सहानुभूति की भावना को ही नहीं दर्शाया गया अपितु निम्न जाति के लोगों, विशेष कर भारतीय किसान व समाज के पिछड़े हुए वर्गों के प्रति भी करूणा भावना देखी गई । यह सब तत्कालीन बदलते हुए परिप्रेक्ष्य के प्रभाव का प्रत्यक्ष प्रतिबिंब है ।

बदलते युग का साहित्यिक परिवेश :

साहित्य में भी कवियों ने बदलते हुए युग की भावनाओं को आत्मसात किया तथा आधुनिक युग में उद्भूत होने वाले नवीन

विचारों को काव्य रूपों में स्थान दिया । उनकी शैली में वैयक्तिकता तो है, परन्तु ऐसा गुण नहीं जिससे रचना, मौलिक, उत्तम और विशिष्ट बनती हो । अनेक कृतियाँ अनूदित भी थी । इस काल खंड में कविता देश - दशा, समाज - सुधार, स्वदेशप्रेम, आर्थिक असंतोष के अलावा जीवन के कुछ अन्य नवीन पक्षों की ओर भी यह उन्मुख हुई । काव्य में उदारता, सहिष्णुता, त्याग, वीरता आदि को ऐतिहासिक एवं पौराणिक दृष्टांतों के द्वारा प्रचारित किया गया । साथ ही जन्मभूमि प्रेम, स्वाभिमान, आत्म गौरव, स्वजाति प्रेम आदि भावनाओं को आम जनता में जाग्रत करने का प्रयास किया गया । रवीन्द्र की कविताओं में लोक सेवा, विश्व प्रेम, लोक रक्षा आदि भावनाएं प्रबल थी तो बंकिम के कथा साहित्य में कर्त्तव्य, त्याग संघटन व उन्नयन आदि भावनाएं प्रतिपादित हुईं । हिंदी साहित्य में प्रेमचन्द का योगदान अतुलनीय है जिन्होंने आदर्शवादी विचार धारा को सामाजिक यथार्थ-वादी जामा पहनाकर हिंदी साहित्य को तिलस्मी व ऐय्यारी किस्म की कहानियों से मुक्त किया । जिस प्रकार माईकेल मधुसूदन दत्त ने अमित्राक्षर छन्द का सफल प्रयोग किया । उसी प्रकार मैथिलीशरण गुप्त ने घनाक्षरी के आधार पर अतुकान्त छन्द का प्रयोग किया । हिंदी साहित्य को पाश्चात्य संस्कृति के कुप्रभाव से बचने के लिए यथा साध्य अपने अतीत के गौरव का गान किया गया है -

> यह पुण्य भूमि प्रसिद्ध है, इसके निवासी आर्य है ।
> विद्या, कला, कौशल सभी के, जो प्रथम आचार्य है ।
> है वह गये यद्यपि हमारे, गीत आज रहे सहे ।
> पर दूसरों के वचन भी साक्षी हमारे हो रहे ।।[1]

- -

1. "भारत - भारती" -श्री मैथिलीशरण गुप्त -पृ॰ ।।
(मुद्रक: श्री सुमित्रानंदन गुप्त, मानस मुद्रण झांसी, बत्तीसवां संस्करण 2029 वि॰ मूल्य-10/-

अतीत गौरव गान करने वाले मैथिलीशरण गुप्त को आलोचना का शिकार होना पड़ा । कतिपय आलोचक उनके पक्ष में भी सामने आये । एक आलोचक के अनुसार '.. उनका अतीत प्रेम और हिन्दुत्व उनकी मानसिक संकीर्णता का द्योतक न होकर परिस्थिति की परवशता और दुर्बलता का परिचायक है ।इसलिए काव्य की इन प्रवृत्तियों को प्रतिबिम्बित करते हुए भी वे इनके लिए उत्तरदायी नहीं हैं, क्योंकि कुछ कवि समय के साथ साथ आगे बढ़ते गये ।'[1] मैथिलीशरण गुप्त का काव्य विकास भी रोचक रहा है ।

छायावादी युग की राजनीतिक पृष्ठभूमि :

साहित्य में समाज का प्रतिबिम्ब होता है और तत्कालीन समाज राजनीतिक आन्दोलनों से अछूता नहीं था । यही कारण है कि भारतवासी अब अठारह सौ सत्तावन की तरह सशस्त्र संघर्ष में अंग्रेजों से भिड़ने की जगह कई मोर्चों पर लड़ रहे थे जिसमें बुद्धिवादी लड़ाई भी शामिल थी । हालांकि क्रांतिकारी लोग शास्त्र: का भी कारोबार चला रहे थे । मगर दूसरी ओर समूचा देश एक होकर एक सुसंगठित राजनैतिक लड़ाई लड़ने के लिए तैयार हो गया था । आधुनिक युग के आगमन के साथ ही 1885 में कांग्रेस की स्थापना हुई । आरंभ में कांग्रेस का कार्य केवल प्रशासकीय कार्यों में सरकार के साथ सहयोग करना था परन्तु बाद में बालगंगाधर तिलक जैसे नेता के प्रविष्ट होने से यह

---

1. हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ - डा० शिवकुमार शर्मा - पृ० 449

स्वाधीनता के लक्ष्य के लिए लड़ने वाली संस्था के रूप में कार्य करने लगी। बंग भंग के कानून से भारतीय स्वाधीनता की भावना और अधिक तीव्र हुई। उधर गुप्त रूप से अंग्रेजी राज्य की तख्ता पलटने के लिए क्रांतिकारी संस्थाओं का निर्माण एवं विकास भी होने लगा। इन संस्थाओं में सक्रिय रूप से भाग लेने वाले प्रमुख नेता थे . तिलक, हरदयाल, अरविंद घोष, राम बिहारी बोस, शचीन्द्रनाथ सान्याल, भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, राम प्रसाद बिस्मिल, सुखदेव, अशफ़ाक, राजगुरु आदि। परन्तु "प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व राष्ट्रवादी ब्रिटिश उपनिवेश विरोधी चेतना प्रबल नहीं हो पाती। गांधी जी ने एक समय अंग्रेज भक्ति का प्रदर्शन किया। महारानी विक्टोरिया, ड्यूक आफ एडिनबरा, प्रिंस आफ वेल्स आदि की प्रशंसा नवजागरण केनेताओं ने की - यह ऐतिहासिक वास्तविकता है। भारतेन्दु और उनके युग के रचनाकारों की अनेक उपलब्धियों के बावजूद अंग्रेजी राजभक्ति को गौरवान्वित नहीं किया जा सकता। 1899 ई. में इण्डियन नेशनल कांग्रेस ने महारानी विक्टोरिया को बधाई देने का प्रस्ताव पास किया।"[1] द्विवेदी युग प्रथम विश्व युद्ध का समय भी था।

1914 में प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ा और 1919, में यह युद्ध समाप्त हुआ। इस युद्ध में भारत से सहयोग प्राप्त करने के लिए अंग्रेज सत्ता ने देशी नेताओं को नाना रूप से प्रलोभित किया। लेकिन 1919 में रोलट एक्ट पास करके अंग्रेजी शासन ने भारतीयों के साथ विश्वासघात

---

1. नवजागरण और इतिहास - चेतना -"पहल द्वारा प्रकाशित" संपादक - प्रदीप सक्सेना - पृ. 193

किया । लगभग इसी समय जलियाँवाला बाग का निर्मम हत्याकाण्ड हुआ । खिलाफत आन्दोलन भी इसी समय चलाया गया । सन् 1920 से गाँधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस अपना कार्य करने लगी । गाँधी जी ने हिन्दुओं व मुसलमानों को एकजुट करके असहयोग आन्दोलन चलाया । परन्तु कांग्रेस का ही एक अंश "स्वराज्य पार्टी" नामक संस्था के रूप में कार्य करने लगा । "स्वराज्य पार्टी" को इस असहयोग नीति में विश्वास न था । इस स्वराज्य पार्टी के प्रवर्त्तक मोतीलाल नेहरू व चित्तरंजन दास थे । कांग्रेस मुसलमानों को संतुष्ट करने लगी जिससे मदनमोहन मालवीय तथा लाजपतराय जैसे कुछ नेताओं ने हिन्दू सभा का साथ दिया । उधर मुहम्मद अली जिन्ना कांग्रेस छोड़कर मुस्लिम लीग में शामिल हो गए । अंग्रेजों का दमन चक्र भी कठोर हो रहा था । मुस्लिम लीग की संकीर्णता के कारण भी भारत को अंग्रेजी कूटनीति का शिकार होना पड़ा । इस कूटनीति के फलस्वरूप हिन्दू मुसलमानों में साम्प्रदायिक अलगाव हिन्दी उर्दू भाषा संबंधी विवाद जैसी कुछ समस्याएं विकराल रूप धारण करने लगी । इस भयावह साम्प्रदायिकता का परिणाम है 1930 का वह दंगा जिसमें गणेशशंकर विद्यार्थी जैसे साधक को शहीद होना पड़ा । बंटवारे के साथ ही भारत को आजादी प्राप्त हुई । 1931 - 35 तक का समय कमीशनों, पैक्टों और सन्धियों का समय था । 1937 के निर्वाचन में अधिकतर प्रान्तों में कांग्रेस के मन्त्रिमण्डल बने परन्तु 1939 में ही सब ने त्यागपत्र दें दिया क्योंकि अंग्रेजों ने भारतीयों से सम्मति लिये बिना ही द्वितीय महायुद्ध में भारत के सम्मिलित होने की घोषणा कर दी थी । यहां तक जो राजनीतिक संघर्ष चला है उसका सीधा असर समाज पर हुआ है ।

भारतीय समाज के बड़ी संख्या में लोग आबाल वृद्ध जोर शोर से स्वाधीनता आन्दोलनों में भाग ले रहे थे । यह सत्य है कि इन आन्दोलनों का सफल होना तभी संभव हुआ जबकि तत्कालीन भारतवासी अंग्रेज़ों के उपनिवेशीकरण के विरूद्ध डट कर खड़े हो पाये थे ।

छायावादी साहित्य पर पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव - मतभेद :

द्विवेदी युग की प्रवृत्तियों के साथ, समानान्तर और बाद में चलने वाली प्रवृत्ति छायावाद की थी, जो अपनी मृदु मसृण अनुभूतियों, कोमल कल्पनाओं और मधुर शब्दावली के लिए प्रसिद्ध है । छायावाद हिंदी साहित्य की परम्परा की एक महत्वपूर्ण कड़ी है । परन्तु इस बात से आश्चर्य होता है कि एक ओर जहां समाज में स्वाधीनता आन्दोलन के लिए तरह तरह की हलचल पैदा हो रही थी वहां दूसरी ओर तद्युगीन साहित्यकार अपने कल्पना लोक में विचरण कर रहे थे । द्विवेदी युग की राष्ट्रीयता के बाद साहित्य में छायावाद का प्रादुर्भाव का पलायनवादी दृष्टिकोण था, या (जैसा कि कुछ लोग समझते है) पाश्चात्य साहित्य का अनुकरण ? इस प्रश्न का हल ढूंढने का प्रयास कुछ विद्वानों ने किया है । छायावादी कवियों में जो व्यक्तिवादी मानसिकता है उसे तत्कालीन औद्योगिकता से प्रेरित बताते हुए डा० शिवदान सिंह चौहान लिखते है - "यह कहना जैसे गलत होगा कि फ्रांसीसी धारा, जर्मन धारा के अनुकरण पर चली या अंग्रेजी धारा फ्रांसीसी धारा की अनुवर्तिनी थी, उसी तरह यह कहना भी गलत होगा कि हिंदी की

छायावादी कविता पाश्चात्य धारा की नकल है और यदि फैशन की नकल की जाती है तो तत्कालीन समसामयिक फैशन की; सौ वर्ष पुराने फैशन की नहीं ।"[1]

बंगला के आलोचक बंगला के स्वच्छन्दतावाद को अंग्रेजी रोमाण्टिसिज्म से प्रभावित बताते है हालांकि बंगला साहित्य में प्रतीकात्मक अध्यात्मवादी रचनाओं की भरमार है । हिंदी में ऐसी रचनाओं को छायावादी कहा जाता है । दोनों प्रवृत्तियां समसामयिक ही थी । इस बात के उदाहरण है कि हिंदी साहित्य में बंगला की इस रोमाण्टिक धारा से छायावाद ने प्रभाव ग्रहण किया । इस संदर्भ में श्री सुधाकर चट्टोपाध्याय का कहना है कि "आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रथम दो पर्वों में हिंदी साहित्यकारों ने बंगला से अनुप्रेरणा पायी जरूर है परन्तु तीसरे पर्व में छायावादियों ने रवीन्द्रनाथ से अनेक स्थलों पर भाव और भाषा सीधे सीधे ग्रहण करके हिंदी साहित्य को सम्पूर्ण नूतन सज्जा से सज्जित किया है ।"[2]

इस काल में रवीन्द्रनाथ का छायावादी कवियों पर प्रभाव सीधा और गहरा है इसमें संदेह नहीं । परन्तु कुछ विद्वानों का मत है

- -

1. हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियां - शिवकुमार शर्मा-पृ. 452
2. आधुनिक हिंदी साहित्येर प्रथम दुन्टि पर्वे हिंदी साहित्यिकेरा बांगलार काछ थेके अनप्रेरणा पेयछेन बटे किन्तु तृतीय पर्वे छायावादीरा हिंदी साहित्य के सम्पूर्ण नूतन साजे सज्जित करेछेन रविन्द्रनाथ हते अनेक स्थले भाव ओ भाषा सरासरि ग्रहण करे -"सुधाकर चट्टोपाध्याय, आधुनिक हिंदी साहित्ये बांगलार स्थान" -पृ. 8

छायावाद युग के कवि एक ओर रवीन्द्र तथा अंग्रेजी कविताओं से प्रभावित थे तथा दूसरी ओर व्यक्तिवाद से । इसलिए वे इतनी शीघ्रता और सफलता से द्विवेदी युग की चेतना से विच्छिन्न होकर हिंदी काव्य धारा को सर्वथा भिन्न दिशा में मोड़ सके । उस युग के काव्य में नयी सौन्दर्य चेतना, नयी प्रेम चेतना और नयी नैतिक चेतना है । इस नवीनता को हम आधुनिकता के नाम से भी कथित कर सकते है । वह आधुनिकता जो यूरोप में पुनर्जागृति [रिनेसां] के समय से क्रमशः प्रतिष्ठित हो रही थी और जो मध्यकालीन पौराणिक धर्म भावना की विरोधिनी थी ।"[1] इस तरह छायावाद को द्विवेदी युग की सरलता और इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में खड़ा करते है, कारण उनका यह मानना है कि "द्विवेदी युगीन कवियों में सुधार और नैतिकता की भावना तीव्र थी । फलतः वे जीवन के सुकुमार पक्ष के प्रति न्याय नहीं कर सके । कथात्मक काव्यों में उन्होंने वैसे चरित्रों एवं व्यापारों का जयगान किया जो लोक चेतना का व्यावहारिक पथ प्रदर्शन कर सके । किन्तु इससे भी बड़ी उनकी एक दूसरी कमी थी - उनकी चेतना आधुनिक नहीं थी । हिन्दुओं की पौराणिक सभ्यता जो द्विवेदी युग के काव्य में प्रतिफलित हुई है, ह्रास युग की सभ्यता है, वह आधुनिक मस्तिष्क को, ग्राह्य नहीं हो सकती । कोई भी आधुनिक पाठक सहज भाव से अवतारवाद और देवी चमत्कारों को ग्रहण नहीं कर सकता । अपेक्षाकृत निम्न सांस्कृतिक धरातल पर रहने वाले पाठक ही "वाचक प्रथम सर्वत्र ही जय जानकी जीवन कहो "जैसी पंक्तियों को स्वीकार करके चल

- -

1. "छायावाद - उत्थान, पतन पुनर्मूल्यांकन - डा0 देवराज -पृ. 80

सकते है ।"[1] आधुनिक मनोवृत्ति का केन्द्र बिन्दु मूलतः मनुष्य होना चाहिए जैसे सिद्धांतों में विश्वास रखते हुए वे लिखते है -"द्विवेदी युगीन सांस्कृतिक चेतना, धार्मिक और परलोक तथा ईश्वरकेन्द्रित है, इसलिए वह नई पीढ़ी के लोगों को, जो अंग्रेजी साहित्य के वातावरण में पले थे, संतोष न दे सकी । यदि हम द्विवेदीयुगीन काव्यों की माईकेल मधुसूदन दत्त के "मेघनाद वध" से तुलना करें तो इस अन्तर को स्पष्ट देख सकेंगे, तब यह भी स्पष्ट हो जायेगा कि प्रथम की अग्राह्यता का हेतु कथात्मकता नहीं है ।"[2]

परन्तु महावीर प्रसाद द्विवेदी के संबंध में डा० रामविलास शर्मा की धारणा किंचित भिन्न है, "निराला की साहित्य साधना में वे लिखते है, "जैसे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ध्यान रखते थे कि पड़ोसी प्रदेश बंगाल में क्या हो रहा है, उसी तरह महावीर प्रसाद द्विवेदी वहाँ की साहित्यिक गतिविधि पर नजर रखते थे । अपने दरबे में बन्द रहकर बड़प्पन की डींग मारना उन्हें पसन्द न था । पड़ोसियों से सीखो, अंग्रेजी से ही नहीं, दूसरी भारतीय भाषाओं से भी सीखो, ऐसी उनकी नीति थी ।"[3] द्विवेदी जी के उदार व्यक्तित्व का परिचय मिलता है उनके "कवि कर्त्तव्य" नामक लेख से जो 1961 में सरस्वती पत्रिका में छपा था । इस लेख का महत्व ऐतिहासिक दृष्टि से भी है जिसमें वे ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली के व्यवहार पर जोर देने की बात

- -

1. डा० देवराज - "छायावाद -उत्थान, पतन, पुनर्मूल्यांकन -पृ० 77
2. -वही- पृ० 77
3. "निराला की साहित्य साधना" -रामविलास शर्मा - पृ० 27

कहते है । इसी लेख में अतुकान्त छन्द की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा था, "मधुसूदन के समय तक बंगला में अमित्राक्षर छन्द नहीं लिखे जाते थे । हमारे दोहा, चौपाई, छप्पय और घनाक्षरी आदि के समान उसमें विशेष करके पयार, त्रिपदी, चतुष्पदी आदि ही छन्द प्रयोग किये जाते थे । लोगों का यह अनुमान था कि बंगला में अमित्राक्षर छन्द हो ही नहीं सकते । इस बात को माईकेल ने निर्मूल सिद्ध कर दिया ।"[1] इस लेख के द्वारा वे हिंदी के कवियों को अमित्राक्षर छन्द में लिखने के लिए प्रेरित कर रहे थे । आगे चलकर जयशंकर प्रसाद ने अमित्राक्षर छन्द का प्रयोग किया और सफल भी हुए । शर्मा जी के अनुसार द्विवेदी युग में भाषा और साहित्य के लिए अनुकूल जमीन तैयार हो रही थी और छायावाद इसकी अगली कड़ी था । लेकिन डा० देवराज इस परिवर्तन को विकास नहीं मानकर, प्रतिक्रिया मानना पसन्द करते है । उनके तर्क के अनुसार -"आधुनिकता का अर्थ अनैतिकता या धर्म विरोधिता नहीं है, किन्तु उसकी नीतिऔर धर्म मनुष्य केन्द्रित है । आज का युगपुरूष गांधी लोकसेवा को ही सबसे बड़ा धर्म समझता है, आज के नेताओं का सबसे बड़ा कर्त्तव्य जीवन स्तर सुधार है । . . . यदि हम छायावाद युग की अन्य शक्तियों पर दृष्टि डाले तो हम देखेंगे किस प्रकार उस युग में पौराणिकता का रूपान्तर हो रहा था । रामकृष्ण को महा-पुरूष कह कर लौकिक बनाया जा रहा था । "रंग भूमि" में सूरदास जैसे पात्रों की सृष्टि हो रही थी । प्रसाद के नाटकों में अलौकिक भीष्म और अर्जुन के बदले लौकिक वीरों का विरूद गाया जा रहा था । सामान्यत: भारतवासी पौराणिक अतीत के बदले ऐतिहासिक अतीत

---

1. "निराला की साहित्य साधना" - रामविलास शर्मा - पृ० 3

की ओर, धार्मिक जातीयता से राजनीतिक राष्ट्रीयता के प्रति भागवत् आदि के बदले उपनिषदों और गीता की ओर उन्मुख हो रहे थे । विवेकानन्द ने वेदान्त का जयघोष किया, भागवत भक्तिवाद का नहीं । रवीन्द्र ने रामकृष्ण संबंधी गीतों का रूपान्तर न करके कबीर के पदों का अनुवाद किया । कारण यह था कि अब धार्मिकता का रूप अग्राह्य हो चला था ।"[1] वस्तुत: इस परिवर्तित और विकसित चेतना के पीछे कुछ लोग पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव महसूस करते है । यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि हमने परम्परागत मर्यादा, गौरव और आत्माभिमान का पाठ विदेशियों से सीखा था, तुलसीदास की महत्ता का परिज्ञान हमें डा० ग्रियर्सन ने कराया था और डा० मैक्समूलर ने हमें उपनिषदों में निहित ज्ञान राशि से परिचित कराया था । विगत युगों की समृद्धि के परिज्ञान से राष्ट्रीयता का आंदोलन होने लगा और भारतीय यह महसूस करने लगे कि अपनी प्राचीन श्रेष्ठता और गरिमा की प्राप्ति का पथ समसामयिक परम्पराओं, रूढ़ियों, सामाजिक, अन्धविश्वासों और साम्प्रदायिक संकीर्णता के विनाश से ही निर्मित हो सकता है । इसके लिए बहुमुखी प्रयत्न किये जाने लगे ।"[2] डा० नरेन्द्र देव वर्मा जैसे लोग समझते है कि भारतीय नवजागरण के विकास के मूल में पाश्चात्य प्रभाव ही कार्य कर रहा था । तभी वे वे कहने में हिचकिचाते

- -

1. डा० देवराज : छायावाद - उत्थान, पतन, मूल्यांकन - पृ. 78
डा० देवराज के इस आवेग को तर्क में संपूर्ण वास्तविकता को अनदेखा करते हुए उसे एकांगी बनाकर देखा गया है । वेदान्त का जयघोष करने वाले विवेकानन्द बड़े भक्त थे और अपने गुरु से भक्ति की शिक्षा पायी थी । राम और कृष्ण जैसे पौराणिक चरित्र छायावादियों के भी प्रेरक रहे थे, "राम की शक्ति पूजा" निराला की श्रेष्ठ नहीं है ? क्या कामायिनी के उपजीव्य पुराणादि नहीं है ?

2. डा० नरेन्द्रदेव शर्मा : हिंदी स्वच्छन्दतावाद - पृ. 14

नहीं कि "भारतीय ज्ञान की अशेष राशि पर अज्ञान का जो सर्वग्रासी आवरण पड़ा हुआ था, उसे पश्चिमी विज्ञान के आलोक ने नष्ट कर दिया । विदेशियों की कृपापूर्ण दृष्टि से और उनके द्वारा भारतीय ज्ञान की तिमिराच्छन्न सम्पदा के उद्घाटन से हमने स्वयं को पहचानना सीखा ।"[1] परन्तु वस्तुस्थिति इससे भिन्न थी । रामविलास शर्मा जी ने अपनी कई किताबों में इस बात का पुष्ट प्रमाण दिया है कि किस प्रकार भारतवासी भक्तिकाल से ही जगे हुए थे अतः भक्तिकाल के लोक जागरण के पश्चात यह आधुनिक काल का नव जागरण था । अंग्रेजों ने भारतीय अतीत की महिमा को नीचा दिखाने के कम प्रयास नहीं किये थे । अंग्रेजों की नीयत महान भारतीय अतीत के प्रति साफ नहीं थी । भारतेन्दु और बंकिमचन्द्र दोनों ने ही इस बात को महसूस किया था । "भारतेन्दु की तुलना में बंकिम अंग्रेजों की खोजों के विरुद्ध अधिक आक्रमक मुद्रा में दिखाई पड़ते है । "रामायनेर समालोचना" में एक विलायती समालोचक की इस अवधारणा को उन्होंने आड़े हाथों लिया है जिसमें कहा गया है --"भारतीय स्त्रियां स्वभाव से ही असती होती है । यह सीता को देखकर समझा जा सकता है जो घर से बाहर निकलते ही राम का साथ छोड़कर लंका का राज्य भोगने चली गई ।"[2] बंकिमचन्द्र पाश्चात्य पंडितों की भारतीय इतिहास संबंधी धारणा को लेकर कहते है कि, "इसी जाति के एक पंडित [फर्गुसन] भग्न अट्टालिका के प्राचीर पर कुछ विवस्त्रा स्त्री मूर्तियां देखकर इस

- -

1. डा० नरेन्द्र देव वर्मा - हिंदी स्वच्छन्दतावाद - पृ० 14

2. हंस -नवंबर, 98, संपादक - राजेन्द्र यादव -लेख -भारतेन्दु और वंकिमचन्द्र की भाव भूमियां, लेखक मारंग कुमार -पृ० 95 [रूपा गुप्ता की पुस्तक "भारतेन्दु और वंकिम अनु" से

इस सिद्धांत पर पहुंचे कि प्राचीन भारतवर्ष में स्त्रियाँ कपड़े नहीं पहनती थी - सीता, सावित्री, द्रौपदी, दमयंती आदि श्वसुर जेठ के सम्मुख नग्नावस्था में विचरण करती थी । इसलिए कह रहा था - इन सब पंडितों का रचनापाठ करने से बड़ा महापातक साहित्य संसार में दुर्लभ है ।"[1]

दरअसल छायावादी कविता के साथ रोमांटिक कविताओं के बहुत सारे लक्षण मिलते जुलते है । अतः अनायास ही लोगों को यह भ्रम होता है कि छायावाद रोमांटिसजम का अनुकरण मात्र है । जैसे रोमांटिक कविता या नव्य श्रेण्यिक काव्य में परम्परा का विरोध, प्रकृति चित्रण, आदर्शात्मक विद्रोह, सौन्दर्यवाद, मद, अवसाद, अलौकिक तत्व तथा अतीत का काल्पनिक मनोरम चित्रण आदि विशेषताएँ पाई जाती है । इसी तरह छायावादी कविता में प्रकृति प्रेम, वैयक्तिकता, राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक भावना, रहस्यवाद, विद्रोह की भावना, नारी के प्रति नवीन दृष्टिकोण, वेदना और करुणा की विवृतितथा मानवतावाद आदि विशेषताएं मिल जाती है ।

छायावाद में रहस्यवाद को देखने वाले भी कम नहीं है । परन्तु इस रहस्यवाद में छिपे अलौकिक पक्ष या अध्यात्मवादी विचार को लेकर भी काफी मतभेद हैं । कुछ लोग इसे अलौकिक कविता मानने को बिल्कुल तैयार नहीं है तो कुछ लोग अध्यात्म के तत्वों को पाश्चात्य दार्शनिक हेगेल की ही देन हैं ।

- -

1. हंस - नवम्बर, 93 - पृ. 95।

छायावाद और अध्यात्म के संबंध पर नन्द दुलारे वाजपेयी ने लिखा था - मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौंदर्य में आध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार में छायावाद की सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है । {हिंदी साहित्य - बीसवीं शताब्दी -पृ॰ 163}

छायावाद और अध्यात्म के बारे में श्री नगेन्द्र का विचार था कि अध्यात्मिक छायावादी कवियों की स्वानुभूति का अंग नहीं था । "सर्वात्मवाद का बुद्धि द्वारा ग्रहण तो सहज संभव है परन्तु उनकी अनुभूति के लिए उस समय छायावाद के किसी भी कवि को चैलेंज किया जा सकता था ।" {विचार और अनुभूति -पृ॰ 57} कवि दिनकर ने दो टूक शब्दों में कहा कि "सबसे बड़ी गलती छायावाद को रहस्यवाद सिद्ध करने में हुई ।...... जनता का विरोध साहित्य के धार्मिक भाव से नहीं था वह सिर्फ यह जानना चाहती थी कि छायावाद में सच्ची धार्मिकता है या नहीं । ...... इस संशय की वृद्धि इस बात से भी होती थी कि कालिज और स्कूल से निकलने वाला प्रत्येक नवयुवक अचानक अध्यात्म की उच्च भूमि में पहुंच जाता था तथा नईधारा के अग्रणी कवियों में से किसी को भी अपने व्यक्तिगत जीवन में धार्मिक होने की प्रसिद्धि प्राप्त नहीं थी । "मिट्टी की ओर" में इतिहास के दृष्टिकोण से आलोचकों के द्वारा जो छायावादी कविता में अलौकिकता को रहस्यवाद को आरोपित किया जा रहा था, अथवा इस पर आध्यात्मिकता का आरोप लगाया जा रहा था, उसका मकसद इसके ऊपर अंग्रेजी काव्य और ईसाई धर्म का प्रभाव बताना था । हरिकृष्ण पुरोहित जैसे लोग छायावादी आध्यात्मिकता का स्रोत ईसाई संतों की रहस्यवादी भावना में ढूंढते हैं । वे कहते है "योरुपीय रोमांटिक प्रत्यावर्तन की

पृष्ठभूमि में ईसाई संतों की रहस्य भावना है ।"[1] पर सच तो यह है कि अंग्रेजी रोमांटिक काव्य में जिस ईसाई धर्म और दर्शन का प्रभाव मानते है । उससे बहुत पहले भक्तिकाल में भारतीय साहित्य पर सिद्धों नाथों और सूफी सन्तों का प्रभाव पड़ा था । सही मायने में यदि रहस्यवाद के उत्स को खोज निकाले तो वह कबीर की वाणी में ही मिल जाता है और कबीर के दोहों एवं पदों का प्रभाव रवीन्द्रनाथ ठाकुर में देखा जा सकता है । क्योंकि रवीन्द्रनाथ ने कबीर के पदों का अनुवाद किया था । इसके विपरीत स्वयं हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का कहना है, "यह कहना तो ठीक नहीं कि छायावादी कवि ईसाई संतों के नीरवतावाद से प्रत्यक्षतः प्रभावित थे परन्तु यह सत्य है कि योरूप में पुनर्जागरण के समय मध्य युग के ईसाईसंतों की रहस्यवादी भावना ने उसी श्रेणी केएक अर्द्ध आध्यात्मिक नीरवतावाद को जन्म दिया था जो भारतीय पुनर्जागरण के समय दिखाई पड़ा । इसका प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर पड़ा था और उस काल के साहित्य मे इस का वह प्रभाव बंगला व हिंदी के आधुनिक साहित्य में पाया था । बंगला में भी इसका विरोध हुआ और हिंदी में तो हुआ ही ।"[1]

दूसरा अभिमत यह है कि "रवीन्द्रनाथ काव्य यूरोप के उस विकासानुप्राणित अध्यात्मवाद से प्रभावित हुआ जिसकी पूर्ण अभिव्यक्ति हेगेल के दर्शन में हुई थी ।....अवश्य ही उपनिषदों में भी इस प्रकार के अध्यात्मवाद के बीज है, पर उसका विकास/भारतवर्ष में नहीं हुआ ।

---

1. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी :छायावाद की प्रेरणा भूमि" लेख "अवन्तिका", छायावाद अंक पृष्ठ-21। को डा० हरिकृष्ण पुरोहित की किताब "आधुनिक हिंदी साहित्य की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव" पृ० 254 से उद्धृत

यह देखने की बात है कि रवीन्द्र के विश्वासों और गीतांजलि का निर्माण प्रायः प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व हुआ था, जब सभ्य जगत में हेगलिक अध्यात्मवाद का बोलबाला था।"[1] सच तो यह है कि छायावादी कवि या छायावादी काव्य पर किसी विदेशी धर्म या दर्शन विशेष का वैसा प्रभाव नहीं पड़ा जैसा पुराणों, उपनिषदों, शैव, शाक्त, वैष्णव, आर्यसमाजी, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, अरविंद, टेगोर, गांधी आदि के विचारों और दर्शनों का व्यापक प्रभाव पड़ा। कालिदास (जो सौंदर्य एवं कल्पना के कवि है) के संबंध में निराला का कहना है - वे मेरे दैहिक मानसिक दोनों प्रकार के सर्वोत्तम भोज्य है।"[2]

छायावाद निर्विवादतः हिंदी साहित्य की एक सशक्त धारा है जिसने अल्प समय में ही भाषा, भाव तथा छन्द के क्षेत्र में रूढ़ियों को तोड़कर आधुनिकता का परिचय दिया, साथ ही राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय भावना तथा अतीत के प्रति सांस्कृतिक चेतना की लहर उठाकर समूचे हिंदी क्षेत्रों को स्पंदित किया। छायावाद और रोमान्टिक प्रवृत्तियों में साम्य अवश्य दिखाया जा सकता है। यह साम्य बंगला कविता में भी देखा जाता रहा है। साहित्य में प्रवृत्तियों का साम्य मिलना न तो बुरी बात है, न आश्चर्य ही।

- -

1. डा० देवराज दर्शन शास्त्र के प्रोफेसर भीथे किन्तु रवीन्द्रनाथ के बारे में यह कहना कि उन पर हेगेल का प्रभाव था और उपनिषदादि का नहीं, वस्तुस्थिति से दूर जाना है। रवीन्द्रनाथ के संस्कार का निर्माण संपूर्ण भारतीय ऐतिह्य से हुआ था। उनकी रचनाओं में वाल्मीकि, व्यास, कालिदास से लेकर कबीर तक को आत्मसात कियागया है। वाल्मीकि प्रतिभा" के लेखक को "हेगलिक विश्वासों" से प्रभावित बताना किसी भी प्रकार उचितनहीं जान पड़ता। छायावाद -उत्थान, पतन, मूल्यांकन-पृ. 78/79

2. निराला की साहित्य साधना - 3, रामविलास शर्मा -पृ. से उद्धृत

हिंदी एवं बंगला साहित्य में रोमाण्टिक प्रवृत्तियाँ :

भारतीय साहित्य में विशेषकर हिंदी एवं बंगला साहित्य में रोमाण्टिक प्रवृत्तियों का होना अस्वाभाविक नहीं। विश्व भर के साहित्य में भी भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य जिसके अपवाद नहीं। कतिपय प्रवृत्तिगत विशेषताओं में समानता दिखाई देती है। जिस प्रकार "अंग्रेजी रोमांटिक कवि ने नव्य श्रेण्यिकाव्य की परम्परागत नियमबद्धता तथा पतनोन्मुखी सामन्तवादी व नवोदित स्वार्थलिप्त पूंजीवादी समाज की संकीर्णताओं का विरोध किया तथा कवि की वैयक्तिक अनुभूति एवं कल्पना विलास के द्वारा मुक्त कर दिये" [उसी प्रकार] "छायावादी कविता की व्यक्तित्व प्रधान काव्य है। जिसने रीतिकालसे चली आने वाली संस्कृत की ह्रासयुगीन साहित्यिक मान्यताओं का विरोध किया तथा द्विवेदी युगीन अतिशय नैतिकता की संकीर्णता के विरुद्ध नवीन सौंदर्य चेतना के द्वार खोल दिये।"[1] अतः "प्राचीन रूढ़ियों के प्रति विद्रोह मानवता, वैयक्तिक प्रेम की अभिव्यंजना, रहस्यात्मकता, सौंदर्य का सूक्ष्म चित्रण, प्रकृति में चेतना का आरोप, गीतिशैली एवं व्यक्तिवाद ये सभी प्रवृत्तियाँ हिंदी एवं बंगला कविताओं में मौजूद है। वस्तुतः रोमांटिसिज्म का आरंभ अठारहवीं शती में सेम्युअल रिचर्डसन, हेनरी फील्डिंग, स्टर्न और गोल्डस्मिथ से माना जा सकता है। इस धारा को आगे बढ़ाने वर्ड्सवर्थ, शैली, कीट्स, बायरन, कूपर आदि थे। प्रस्तुत है इन्हों कवियों में से एक आध कवियों की कविताओं के "प्रभाव" के उदाहरण जो छायावादी कवियों की कविताओं में देखे जा सकते हैं।

---

1. "आधुनिक हिंदी साहित्य की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव" "डा० हरिकृष्ण पुरोहित -पृ० 182

वर्ड्सवर्थ की दृष्टि से जो ज्ञान मानव समाज के बड़े - बड़े ज्ञानी और पण्डित भी नहीं दे सकते वह प्रकृति के साहचर्य मे प्राप्त होता है -

One impube from the vernal wood,
Can teach you more of man
Of moral evil and of Good,
Than all the sages can.

पंतजी की प्रकृति के साथ इस तादात्म्य को अनुभव करते है -

वन की सूनी डाल पर
सीखा कलि ने मुस्काना
मैं सीख न पाया अब तक
दुःख से सुख को अपनाना ।[1]

यहाँ स्पष्ट परिलक्षित किया जा सकता है कि विचार साम्य किसी भी भाषा के किसी भी कवि के काव्य में मिल सकता है ।

नारी सौन्दर्य का वर्णन जिस प्रकार वर्ड्सवर्थ की "थ्री ईयर्स शी ग्रूय" कविता में लूसी के अंगों को प्रकृति सौंदर्य प्रदान करती है उसी प्रकार पंत की "भावी पत्नी" का शृंगार स्वयं प्रकृति करती है । वर्ड्सवर्थ लिखते हैं -

- -

1. सुमित्रानंदन पंत: "गुंजन" पृ. 23 - उद्धृत किया है-आधुनिक हिंदी साहित्य की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव-पृ. 292 एवं 293 से

The floating clouds their state shall lend
To her, for her the willow bend,
Nor shall fail to see,
Even in the motion of the storm
Grace that shall mould the maiden's form
By silent sympathy,
The stars of midnight shall be dear,
To her and she shall lean her ear,
In many a secret place.

Where riverlets dance their way ward round
And beauty born of murmuring sound
Shall pass into her face.

पंत की भावी पत्नी में प्रकृति नारी अंगों को सौंदर्य प्रदान करती है । आँखों की सुन्दरता का वर्णन करते हुए पंत लिखते हैं :-

प्रथम स्वर्ण किरणों ने प्रात
प्रथम खिलाए वे जलजात
नील व्योम ने दल अज्ञात
उन्हें नीलिमा दी अवदात
... ...
चाकुल लहरों ने तत्काल

उनम चचलत। दी डाल
नील नीलन सी है वे आंखे ।[1]

ध्यातव्य है कि कालिदास की शकुन्तला के सौंदर्य वर्णन में इस साम्य को गहराई से महसूस किया जा सकता है ।

पंत की "अप्सरा" कविता रवीन्द्रनाथ की "उर्वशी" कविता से प्रभावित हुई जो स्वयं स्विनबर्न की "एटलेण्टा इन केलिडोन" से प्रभावित है । उर्वशी "स्विनबर्न" की "एटलेण्टा इन केलिडोर" में चित्रित यूरोपीय कामना की देवी "एफ्रोडाइट" के सदृश सौन्दर्य व वेदना की देवीहै । यदि एफ्रोडाइट का जन्म "हंसी और आंसू के बीज" से होता है तो उर्वशी दाहिने हाथ में अमृत पात्र व बायें में विष भांड लिये सागर को मथित कर उदित होती है ।

आदिम वसंत पाते उठेछिलो मन्थितो सागरे
डान हाथ सुधा पात्र विषभांड निये वाम करे। रवीन्द्रनाथ [2]

पंत की "अप्सरा" का जन्म पद्म के समान बतलाते है जो जल में विकसित होता है :-

खिलीपृथम सौंदर्य पद्म सी
तुम जग में नवजात {गुंजन -पृ॰ 98}

- -

1. पंत -गुंजन पृ॰ 41 उद्धृत आधुनिक हिंदी साहित्य की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव -पृ॰ 217
2. आधुनिक हिंदी साहित्य की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव -पृ॰ 222/223 मे उद्धृत॰ {रवीन्द्रनाथ की "उर्वशी" पूरी तरह भारतीय वैसा ही है जैसे स्विनबर्न की "एफ्रोदिते" पूरी तरह पाश्चात्य । दोनों में साम्य तो दिखाया जा सकता है पर अनुकृति कहना अनुचित है ।

What hast thou to do being born
Mother when winds were at ease
As a flower of the foam of the seas -

Sinburn

वृन्तहीन पुष्पसम अपनाते आपनि विकशि
कबे तुमि उठिले उर्वशी - रवीन्द्रनाथ ।[1]

"एफ्रोडाइट" की नृत्य मुद्रा का आभास सूर्य के चक्र के प्रकाश में उसके सौंदर्य की प्रतिच्छाया तथा हवा में विकीर्ण सौन्दर्य की लपटों के वर्णन में मिलता है :

But thee
Who shall discern and declare
In t he uttermost ends of the seas
The light of thine eyelids and hair
The light of the borom in fire
Between the wheel of the sun
And the flying glances of the air. 2

इसी प्रकार रवीन्द्रनाथ की "उर्वशी" का समुद्र की लहरों के मध्य नृत्य चित्रित किया गया है ।

छन्दे छन्दे नाचि उठे सिन्धु माझे तरंगर दल
शस्य शीर्ष शिहरिया काँपि उठे भरार अंचल ।[3]

- -

1. आधुनिक हिंदी साहित्य की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव पृ॰ 223
2. -वही- पृ॰ 224
3. -वही- पृ॰ 224

पंत की "अप्सरा" समुद्र के बदले इन्द्र सभा में नृत्यलीन है ।

इन्द्रलोक में पुलक नृत्य तुम
    करती लघुपद भार ।
तड़ित चकित चितवन से चंचल
    कर सुर-सभा अपार
नग्न देह में सतरंग सुर धनु
    छायापट सुकुमार
खोंस नील नभ की वेणी में
    इंदु कुंद - द्युति स्फार ।[1]

रोमांटिसिज्म के इस प्रभाव साम्य के विरुद्ध आवाज भी उसी युग में उठायी गई । "निराला की काव्य कला" निबंध में जानकी वल्लभ शास्त्री ने निराला के गीत "कौन तुम शुभ्र किरण वसना" मे रवीन्द्रनाथ की "अँचल आलोके कराछो दाडाए" आदि पंक्तियों की तुलना करते हुए लिखा था, "पश्चिमी भावों के मिश्रण का पाप दोनों के सिर पर लदा है । इसलिए भारतीय दृष्टि से दोनों की चित दूषित है ।"[2] अंग्रेजी कविताओं में फ्रांसीसी क्रान्ति के कारण समता, स्वतंत्रता और बन्धुत्व का प्रभाव था परन्तु छायावादी कविता की पृष्ठभूमि में देश की असफल राष्ट्रीय आन्दोलनों की स्मृति थी । इसलिए जहाँ प्रसाद जैसे कवि एक ओर राष्ट्रीयता के स्वरों को गुंजित करने वाली कविता ("हिमाद्रि तुंग श्रृंग से, प्रबुद्ध शुद्ध भारती! स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती") की रचना कर रहे थे । वही दूसरी तरफ 1911 में एडवर्ड

- -

1. पंत - गुंजन -पृ. 94 - आधुनिक हिंदी साहित्य की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव - पृ. 224 मे उद्धृत.
2. निराला की साहित्य साधना - 3 रामविलास शर्मा -पृ. 60 मे उद्धृत

सप्तम की मौत पर "शोकोच्छ्वास" नामक कविता लिखकर श्रद्धा सुमन चढ़ाने का भान कर रहे थे।

अंग्रेजी रोमांटिक कविता के रचनाकाल में विज्ञान का ध्वंसात्मक रूप प्रकट नहीं हुआ था परन्तु छायावादी कविता की भूमिका में प्रथम विश्व युद्ध की दुःख पूर्ण स्थिति थी। साथ साथ युद्ध के उपरांत भारत में होने वाले आर्थिक संकटों का कटु अनुभव भी था। इसलिए छायावादी कविताओं में वेदना एवं अवसाद के रंग अधिक दिखाई देते हैं। इसी से वह अंतर्मुखी या व्यक्तिवादी हो गया। परन्तु उसके इस व्यक्तिवाद में समष्टिवाद निहित था। उसके "स्व" में "सर्व" की भावना थी। तभी निराला लिखते हैं -

"मैंने "मैं" शैली अपनाई
देखा एक दुखी निज भाई
दुःख की छाया पड़ी हृदय में
झट उमड़ वेदना आई।"[1]

अंतर्मुखी होते हुए भी वह सामाजिक समस्याओं के प्रति जागृत है। निराला जी ने विधवा का चित्रण करते हुए लिखा है - "वह इष्ट देव के मन्दिर की पूजा सी।" छायावादी कवियों ने नारी को सदैव उच्च आसन पर बिठाये रखा। हिंदी के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने भी नारी को "देवी, माँ, सहचरि, प्राण" कहकर सम्मान दिया। बंगला में देवेन्द्रनाथ सेन स्वच्छन्दतावादी कवि थे जिन्होंने नारी को यथेष्ट सम्मान दिया। गोविन्दचन्द्र दास स्वच्छन्दतावादी कवि होते हुए भी दाम्पत्य प्रेम के कवि थे।

- -

1. हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ - शिवकुमार शर्मा - पृ. 459

"मैं उसेहाड़ - मांस सहित प्रेम करता हूँ ।"[1]

इसी तरह निराला जी लिखते हैं -

"दोनों हम भिन्न वर्ण, भिन्न जाति, भिन्न रूप,
भिन्न धर्म भाव, पर केवल अपनाव से प्राणों से एक थे ।"[2]

छायावादी कवियों में केवल निज भाषा प्रेम की भावना न थी । उनके लिए प्रेम की परिधि अत्यन्त ही व्यापक था । वे संसार से प्रेम करते हैं क्योंकि विश्वमानवता की प्रतिष्ठा करना ही उनका ध्येय है । बिहारीलाल चक्रवर्ती के "साधेर आसन" में भी यह सार्वजनिक प्रेम दिखाई देता है -

"मैं नर नारियों से प्रेम करता हूँ
मैं चराचर से प्रेम करता हूँ
मैं अपने आप से प्रेम करता हूँ और आनन्दमान रहता हूँ ।"[3]

ये सारी रोमांटिक प्रवृत्तियाँ छायावादी काव्य में भी मिल जाती है । अतः छायावादी काव्य के साथ इन कविताओं के साम्य को नकारा नहीं जा सकता ।

जिस प्रकार हिंदी के छायावादी कवियों में प्रमुख थे प्रसाद, पंत और निराला इसी तरह बंगाल में स्वच्छन्दवादियों के दल का नेतृत्व

- -

1. बंगला साहित्य का इतिहास" -सुकुमार सेन -पृ. 240
2. हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ -पृ. 461
3. बंगला साहित्य का इतिहास - सुकुमार सेन -पृ. 240

कर रहे थे बिहारीलाल चक्रवर्ती । कई बार ऐसा कहा जाता है कि बिहारीलाल चक्रवर्ती से प्रेरणा प्राप्त करने वाले रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी थे । चक्रवर्ती का सबसे प्रसिद्ध काव्य है "शारदा मंगल" । इस "शारदा मंगल" की तुलना प्रसाद की "कामायनी" से की जाती है । पहले सर्ग में कवि वाल्मीकि के उस अनुभव को फिर से जताता है जब व्याध के बाण ने नर पक्षी को मारकर ऋषि के हृदय में छिपी करुणा और काव्य के स्रोत को प्रवाहित कर दिया था । दूसरे सर्ग में कवि खोए हुए प्रेम अर्थात आनन्द को ढूंढता है । तीसरे सर्ग में अंतर्द्वंद्व की अनुगूंज है । पाँचवे और अंतिम सर्ग में यह खोज हिमालय के ऊंचे शिखरों की ओर दौड़ती है जहाँ आनन्द की स्थिति थी । इसका रचना काल 1879 है । भाव और शैली की दृष्टि से अपने आप में उत्कृष्ट कृति कहलायी ।

यद्यपि इन छायावादी कवियों पर रोमांटिसिज्म और रवीन्द्रनाथ का प्रभाव देखा जाता हो परन्तु इनकी मौलिकता पर संदेह नहीं किया जा सकता । माना कि ये लोग कल्पना के आकाश में ऊंची उड़ाने भरते हैं । परन्तु धरती पर घटने वाली घटनाओं से वे अनभिज्ञ न थे । इस समय राष्ट्रीय भावनाओं से युक्त अनेकानेक कविताएं लिखी गईं । कुछ कवि ऐसे वीरों के प्रति अत्यंत श्रद्धालु हैं जो इस देश के लिए शहीद हो गए है । सच्चे रोमैंटिक कवि माखनलाल चतुर्वेदी की देशभक्ति से ओत प्रोत इन पंक्तियों को देखी जा सकती है ।

मुझे तोड़ लेना वनमाली
उस पथ पर देना तुम फेंक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ पर जावे वीर अनेक ।

छायावाद विषय और अभिव्यक्ति दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण काल था इसलिए कुछ आलोचकों ने इसे आधुनिक - काल का स्वर्ण युग तक कह दिया ।

छायावादोत्तर साहित्य में उपनिवेशवाद विरोधी प्रवृत्ति :

वैज्ञानिक और औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप भारतीय जीवन शैली में बदलाव आने लगा । विश्व युद्धों केकारण संसार भर के मनुष्य परेशान और त्रस्त रहने लगे । मनुष्य एवं उसके परिवेश की तथा उनसे जुड़ी हुई समस्याओं का नये सिरे से आकलन आवश्यक हो गया । ऐसे में छायावादी कोमल कल्पना के विरूद्ध प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक ही था । छायावाद के इस अवसान काल में यथार्थ के प्रति आग्रह प्रबल हो उठा । नवीन विचार-धाराओं की अभिव्यक्ति होने लगी । साहित्य में भाव, भाषा, दर्शन आदि में परिवर्तन होने लगे । इस परिवर्तन के अंतर्गत तत्कालीन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं साहित्यिक पृष्ठ-भूमि पर एक सरसरी नजर डालना आवश्यक है जो उस युग को आधुनिकता के इस नये साँचे में ढाल रही थी । यह सच है कि आधुनिकता का प्रारंभ यथार्थपरक दृष्टिकोण और देश भक्ति से जुड़ा है । देश प्रेम का प्रश्न तबतक नहीं उठता जब तक शासक शासित के हित में काम करें । परन्तु अंग्रेजी राज के विरुद्ध भारतीयों के असंतोष का प्रधान कारण है, हमारे देश का आर्थिक शोषण । हमारा देश जो कभी सोने की चिड़िया कहलाता था, आज बेकारी, अशिक्षा तथा असंतोष की भावना से भर रहा है । भारत का धन केवल इंग्लैण्ड नहीं जा रहा था बल्कि अपने साम्राज्य विस्तार के लिए जिन युद्धों को वह लड़ता था उसका भार

भी भारत को ही उठाना पड़ता था । इस साम्राज्यवादी शोषण या आर्थिक शोषण पर सबसे पहली आवाज भारतेन्दु युग के लेखकों ने उठायी । हिंदी साहित्य में तथा बंगला साहित्य में ईश्वरचन्द्र गुप्त -दीनबन्धु मित्र व बंकिम चन्द्र ने । कभी कहीं टैक्स के बारे में, कहीं भारत में चौपट होती हुई उद्योग व्यापार के बारे में, तो कहीं गरीबी व महंगाई का चित्रण किया । इस संदर्भ में भारतेन्दु का बलिया वाला भाषण महत्वपूर्ण है । द्विवेदी युग में भी अंग्रेजों के इस साम्राज्यवाद का विरोध हुआ क्योंकि द्विवेदी युग में शोषण का स्वरूप और अधिक स्पष्ट हो गया था । अतः छायावाद के उत्तरार्द्ध में ही काव्य गत आदर्श समाप्त होने लगे थे । सन् 1917 में ही रूस की समाजवादी क्रांति हुई थी ।

रूस की अक्तूबर, (1917) क्रान्ति की सफलता के समाचार 1918 तक भारत में पहुंचने लगे । 1917 में गांधी जी ने बिहार के चम्पारन जिले में सत्याग्रह का प्रयोग किया । 1918 में औद्योगिक मजदूरों के देशव्यापी आन्दोलन का सूत्रपात हुआ । 19121 में असहयोग आन्दोलन का प्रचण्ड रूप परिलक्षित होता है । 1920-21 में लखनऊ, बम्बई, कलकत्ता, अहमदाबाद तथा आसाम आदि के चाय बागानों में बड़ी - बड़ी हड़ताले हुई । 30 अक्तूबर, 1920 को अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के पहले अधिवेशन में लाला लाजपत राय ने अध्यक्षता निभाई । 1922-23 में भारत के औद्योगिक केन्द्रों में साम्यवादी समूह तैयार होने लगे । प्रमुख केन्द्र था बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, कानपुर तथा लाहौर । 1927 में बारदोली आन्दोलन प्रारंभ हुआ । इसी वर्ष साइमन कमीशन की नियुक्ति हुई जिसे भारतवासियों ने बहिष्कार किया । 26 जनवरी, 1930 को पूरे देश में पूर्ण स्वराज्य मनाने का

निश्चय किया गया । 12 मार्च, 1930 को गांधी जी ने अपने चुने हुए कुछ अनुयायियों के साथ नमक कानून तोड़ने के लिए दांडी प्रस्थान किया । 1936 में पहली बार भारत के किसानों ने मजदूर किसान एकता की परंपरा को स्थापित करने के लिए मई दिवस के कार्यक्रम में भाग लिया । इस प्रकार 1936 तक आते आते भारत में साम्यवादी यथार्थ विचार धारा तेज रफ्तार से फैल चुकी थी तथा उसकी जड़ें मजबूत होने लगी ।

साहित्य में धीरे धीरे प्रगतिशील आन्दोलन जोर पकड़ने लगा । भारतीय जनता में विशेषकर दलित वर्ग साहित्य में स्थान पाने लगे । गुप्त जी का "किसान काव्य एवं अध्यापक पूर्णसिंह का निबंध "मजदूरी और प्रेम" इसी कोटि का है । प्रेमचन्द का "सेवासदन" में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद है, प्रेमाश्रम [1922] में किसान जागरण की कहानी है तो गोदान में वे सही मायने में यथार्थवादी बन जाते है । निराला, बहुत पहले यथार्थवादी बन गये थे । प्रसाद भी कल्पना के आकाश को छोड़कर यथार्थ के धरातल पर आधारित "कंकाल", "तितली" जैसी औपन्यासिक कृतियों की रचना कर रहे थे । पंत के गुंजन में भी यथार्थवादी भाव उभर आता है तथा "युगान्त" के साथ ही वे छायावाद के अन्त की घोषणा करते है । भारत में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना 1936 ई॰ में लखनऊ में हुई जिसके सभापति थे प्रेमचन्द । 1938 में इस संघ का दूसरा अधिवेशन कलकत्ता में हुआ जिसके सभापति थे रवीन्द्रनाथ ठाकुर । इस घोषणा पत्र में तत्कालीन आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक परिस्थितियों पर विचार किया गया । इस प्रगतिशील आन्दोलन की भूमिका तैयार करने में हिंदी की जिन पत्रिकाओं ने योग दिया

उनमें प्रमुख है "हंस", "जागरण", "रूपाभ", "विशाल भारत", "नये हस्ताक्षर", "नया देश" आदि ।

बंगला साहित्य में भी रवीन्द्र की काल्पनिक उड़ान के अनुशीलन में शिथिल होती हुई कविताओं पर विद्रोह का स्वर उठाया मोहितलाल मजूमदार, यतीन्द्रनाथ सेनगुप्त, काजी नजरूल इस्लाम, आदि ने । वासंती कुमार मुखोपाध्याय का मत है —"मोहितलाल, यतीन्द्रनाथ - नजरूल आधुनिक कविता के प्रस्तुति पर्व के कवि है । परवर्ती आधुनिक कविता ने मोहितलाल से निर्भीक देहवाद, यतीन्द्रनाथ से संशय मकुल नेतिवाद और नजरूल से उद्धत यौवन की मादकता का मंत्र ग्रहण किया । समग्रत: इन तीन कवियों से परवर्ती युग ने निम्नलिखित भाव प्रवणता ग्रहण की {क} ईश्वर में अविश्वास {ख} ईश्वर के प्रतिद्वन्द्वी के रूप में मनुष्य की प्रधानता {ग} निपीड़ित मानवात्मा के प्रति संवेदना, {घ} शोषण का प्रतिवाद, {ङ} नेतिवाद {च} देह निर्भर प्रेम {छ} कौटिसत्य बोध {ज} अमंगलबोध, {झ} वास्तवताबोध {ट} और सब मिलाकर एक विद्रोह की मनोभंगी ।"[1]

छायावादोत्तर साहित्य के कवि प्रगतिवादी एवं प्रयोगवादी कवि है । हिंदी में इस आन्दोलन के प्रमुख कवि है - केदारनाथ अग्रवाल नागार्जुन, त्रिलोचन शास्त्री, शिवमंगल सिंह "सुमन", डा० रामविलास शर्मा, रांगेय राघव तथा प्रयोगवाद के विशिष्ट कवि है - अज्ञेय

- -

1. आधुनिक बांगला कवितार रूपरेखा - पृ. 19 "आधुनिक हिंदी और बंगला कविता" डा० लाल बाबू श्रीवास्तव -पृ. 18 से उद्धृत

धर्मवीर भारती, नेमिचन्द्र जैन, गिरिजाकुमार माथुर, मुक्तिबोध, शमशेर, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे आदि ।

बंगला में छायावादोत्तर युग को "रवीन्द्रोत्तर" या "उत्तर रवीन्द्र युग" . कहते है । रवीन्द्र के विरोध में चलाये गये आन्दोलन को उग्र रूप दिया कल्लोल के विश्वकर्मा, दीनेश रंजन दास तथा गोकुल चन्द्र नाग ने । आधुनिक ने "अति आधुनिक" का रूप ग्रहण किया । बुद्धदेव वसु, प्रेमेन्द्र मिश्र और अचिन्त्य कुमार सेन गुप्त अति आधुनिक कवि कहलाये । नई प्रयोगवादी चेतना को अभिव्यक्त करने वाले कवियों में सबसे प्रमुख है जीवनानन्द दास, विष्णु दे, सुधीन्द्रनाथ दत्त, अमिय चक्रवर्ती आदि । समर सेन एवं सुभाष मुखोपाध्याय साम्यवादी कवि है ।

ऊपर उल्लिखित कवियों में अधिकतर उपनिवेश विरोधी प्रवृत्ति के ही कवि है । जैसे प्रेमेन्द्र मित्र "प्रथमा" में युग चेतना से अभिभूत होकर आतंक और वेदना के साथ लिखते हैं -

"आज
विकृत भूख के जाल में कैदी होकर मेरा भगवान रोता है,
रोता है करोड़ों मां की गोद में अन्नहीन भगवान मेरा ।"

हिंदी के शिवमंगल सिंह "सुमन" मानवतावादी कवि है । समाज के शोषण से त्रस्त होकर अत्यंत क्रूर हो उठते हैं -

"आज मैं जो इस तरह आवेश में हूँ अनमना हूँ

- -

1. आधुनिक हिंदी और बंगला साहित्य" -पृ. 49 से उद्धृत

यह न समझो मैं किसी के रक्त का प्यासा बना हूँ
सत्य कहता हूँ पराये पैर का काँटा कसकता
भूल से चींटी कहीं दब जाय, तो भी हाय करता
पर जिन्होंने स्वार्थवश जीवन विषाक्त बना दिया है
कोटि-कोटि बुभुक्षितों का कौर तिलक छिना लिया है
बिलखते शिशु की व्यथा पर दृष्टि तक जिनने न फेरी
यदि क्षमा कर दूँ उन्हें, धिक्कार माँ की कोख मेरी ।"[1]

भारत भूषण अग्रवाल जैसे कवियों का मानना है कि गांधीवादी सिद्धांत व्यावहारिक नहीं हो सकती । एक व्यंग्य में लिखते हैं :-

खाना खाकर कमरे में बिस्तर पर लेटा
सोच रहा था मैं मन ही मन, हिटलर बेटा
बड़ा मूर्ख है, जो लड़ता है तुच्छ क्षुद्र मिट्टी
के कारण, क्षण भंगुर ही तो है रे । यह सब वैभव
धन । अन्त लगेगा हाथ न कुछ, दो दिन का मेला
लिख् एक खत, हो जा गांधी जी का चेला
वे तुझको बतलायेंगे आत्मा की सत्ता
होगी प्रकट अहिंसा की तब पूर्ण महत्ता
कुछ भी तो है नहीं धरा दुनिया के अन्दर
छत पर से पत्नी चिल्लाई - "दौड़ो बन्दर" ।"[2]

---

1. आधुनिक हिंदी और बंगला कविता - पृ. 104
2. आधुनिक हिंदी साहित्य की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव
   पृ. 171 से उद्धृत

रूस की क्रांति के कारण हिंदी साहित्य में आर्थिक समस्यावों पर ध्यान दिया गया । प्रेमचन्द के प्रेमाश्रम का नवयुवक किसान पात्र बलराज कहता है :-

तुम लोग तो ऐसी हँसी उड़ाते हो जाने कास्तकार कुछ होता ही नहीं । वह जमींदार की बेगार ही भरने के लिये बनाया गया है । लेकिन मेरे पास जो पत्र आता है उसमें लिखा है कि रूस देश के कास्तकारों का ही राज्य है । वह जो चाहते है, करते है ।उसी के पास कोई और देश बलगारी {बलगेरिया} है । वहा अभी हाल की बात है कास्तकारों ने राजा को गद्दी से उतार दिया है और अब किसानों और मजदूरों की पंचायत राज करती है ।"[1]

हिंदी के कवि नागार्जुन जिस प्रकार अपना परिचय देते है वह केवल उनका न होकर करोड़ों ग्रामवासियों का है जो जीवनपर्यंत आटा-दाल के जुगाड़ में ही रह जाते हैं -

पैदाहुआ था मै
दीन हीन अपठित किसी कृषक कुल में,
आ रहा हूँ पीता अभाव का आसव ठेठ बचपन से,
कवि ! मैं रूपक हूँ दबी हुई दूब का ।
जीवन गुजरता प्रतिपल संघर्ष में
मेरा क्षुद्र व्यक्तित्व
रूद्ध है, सीमित है

- -

1. आधुनिक हिंदी साहित्य की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव पृ॰ 165 से उद्धृत

आटा, दाल, नमक, लकड़ी के जुगाड़ में,
पानी और पुत्र में
सेठ के हुक्म में,।
कलम ही मेरा हल है, कुदाल है ।
बहुत बुरा हाल है ।"[1]

इस प्रकार छायावादोत्तर साहित्य में स्थूल देह की भूख अपना अधिकार मांगने लगी जिसका असर साहित्य में हुआ एक नवीन विचारधारा के रूप में जन्म लेकर जिस पर एक ओर देश की परिस्थिति तथा दूसरी ओर अन्तर्राष्ट्रीय धारा मार्क्सवाद का प्रभाव पड़ा । हिंदी एवं बंगला साहित्य पर समाजवाद या साम्यवाद का गहरा असर हुआ जिसके संबंध में चर्चा अगले अध्याय में की जाएगी । छाया-वादोत्तर साहित्य मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित है । जहाँ वर्गहीन समाज की स्थापना के लिए क्रांति में विश्वास की जाती है । भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में क्रमशः आतंकवाद, गांधीवाद एवं समाजवाद की प्रवृत्तियों का विकास हुआ । छायावादोत्तर साहित्य में आर्थिक राजनैतिक प्रश्नों को अधिक महत्व दिया गया । गांधी वादी विचारधारा का तीव्र विरोध हुआ । प्रेमचन्द, यशपाल, अज्ञेय, भारत भूषण अग्रवाल जैसे साहित्यकार सत्याग्रह एवं अहिंसा के सिद्धांतों की अपेक्षा सर्वहारा क्रांति पर अधिक विश्वास करने लगे । द्वितीय महायुद्ध इनके लिए एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटना थी । तथा इस अवसर पर यहां के साहित्यकार इसे राष्ट्रीय उत्तरदायित्व ही के समझने लगे थे । "अज्ञेय ने "नदी के द्वीप" में युद्ध को संस्कृति को क्राइसिस

- -

1. आधुनिक हिंदी और बंगला कविता - पृ. 94 से उद्धृत

के रूप में देखा । यशपाल ने "देशद्रोही" में नाज़ीवाद के विरुद्ध मित्र राष्ट्रों के साथ युद्ध में भारत के सहयोगी होने की आवश्यकता पर बल दिया एवं रामविलास शर्मा व यशपाल ने अगस्त आन्दोलन व आजाद हिन्द फौज के राष्ट्रीय स्वतंत्रता के आन्दोलन को अदूरदर्शिता एवं कायरपन बताया । इसके अलावा नारी मुक्ति आन्दोलन, मानवमूल्यों का पुनः प्रतिस्थापन, मनोविश्लेषणवाद आदि उपनिवेशिक विरोध के साथ साथ उपजनेवाली सांगोपांग प्रवृत्तियां हैं जिसका चरमोत्कर्ष मार्क्सवाद में होता है । दूसरे शब्दों में कहा जाय तो चेतना के साथ ही इन प्रवृत्तियों का उदय हुआ है । अतः इन्हें अनदेखा नहीं किया जा सकता । कारण राष्ट्र प्रेम के साथ साथ राष्ट्र समस्याओं को लेकर जूझना भी देशभक्ति का प्रतीक है । क्योंकि उपनिवेशवादी समाज अपने अतीत से कट जाता है और अपने निर्धन वर्तमान से संतुष्ट रहता है । फैनन के इस कथन से यह बातऔर भी स्पष्ट हो जाती है -

"Colonialism is not satisfied merely with holding a people in its grip and emptying the native's brain of all form and content. By a kind of perverted logic, it turns to the part of the people, and distorts, disfigures and destroys it."[1]

उपनिवेशवाद विरोध से उद्बुद्ध राष्ट्र चेतना या राष्ट्रीय प्रेम छायावादोत्तर कवियों की कविताओं में अनेक स्थलों पर दिखाई देते है । उदाहरण के लिए पंत जी का कहना, "हो भारत स्वातंत्र्य विश्व हित स्वर्ण जागरण" या दिनकर जी का यह कहना कि -

- -

1. Nationalism, Colonialism and Literature - Jerry Eagletin, Fredric Jameson, Edward W.Said - Page.92

"मेरे प्यारे देश देह या मन को नमन करूँ मैं
भारत नहीं स्थान वाचक गुण विशेष नर का है
एक देश का नहीं शील वह भूमंडल भर का है
उठे जहाँ भी घोष शान्ति का, भारत स्वर तेरा है
धर्म दीप हो जिसके कर में वह नर तेरा है
तेरा है वह वीर, सत्य पर जो अड़ने जाता है
किसी न्याय के लिए प्राण अर्पित करने जाता है
मानवता के इस ललाट चंदन को नमन करूँ मैं।"[1] - राष्ट्रीय चेतना को द्योतित करता है।

---

1. आधुनिक हिंदी साहित्य की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव पृ. 397 से उद्धृत

परिशिष्ट - 1

विषय - अंक गणित

1. 1817 में श्रीरामपुर प्रेस से स्मिथ के "जमींदारी कागज" प्रकाशित हुआ ।

2. 1817 में श्री में के गणितीय तालिका प्रकाशित हुई जिसे में गणित कहा गया ।

3. 1819 में हारले के गणित सम्बन्धी पुस्तकी "गणिताक" चिन्सुर से प्रकाशित हुई ।

शब्द कोश

1. फास्टर नामक संस्कृत के विद्वान ने 1719 में ही "बंगला शब्द कोश" को प्रकाशित किया इसके दो खंड है व इसमें 18,000 शब्द है ।
2. मिल्लर का बंगला शब्दकोश 1801 में प्रकाशित हुआ ।
3. हार्टन का शब्द संग्रह 1825 में प्रकाशित हुआ ।
4. हार्टन का बंगला से हिंदी शब्द कोश 1833 में प्रकाशित हुआ ।
5. मार्शमैन का बंगला शब्द कोश 1827 में प्रकाशित हुआ ।[1]
6. "मार्शमैन का बंगला एवं अंग्रेजी शब्द कोश - 1829 में प्रकाशित हुआ ।

---

1. History of Bengal Language and Literature - D.C. Sen P.867

7. रेव जे पियरसन का स्कूल डिक्शनरी - 1829 में प्रकाशित हुआ ।

8. 1828 में मोरटन को शब्द कोश प्रकाशित हुआ ।

9. 1822 में मेनडी ने जानॅसन्स डिक्शनरी का संक्षेपन किया इसमें बंगला व अंग्रेजी के शब्द है ।

10. रोजारिओ ने 1837 में शब्द कोश निकाला ।

आचार शास्त्र एवं नीतिपरक कहानियाँ

1. 1803 में डा0 गिलक्रिस्ट का यूरोपीय नीतिपरक कथाओं का बंगला में अनुवाद ।

2. 1820 में रिटवर्ट द्वारा उपदेशकथा या नीति कथा ।

3. 1829 में श्रीरामपुर के एक मिशनरी द्वारा "सत्गुण ओ वीर्य" प्रकाशित हुआ जिसमें पंचानवे ऐसी कहानियाँ है जो सद्गुण एवं पराक्रम की महिमा को दर्शाता है ।

4. 1841 में येट्स ने हितोपदेश को प्रकाशित किया ।

5. नीन द्वारा "पारसिक इतिहास" की रचना ।

भूगोल

1. पियरसन ने भूगोल एवं ज्योतिष को प्रकाशित किया 1824 में ।

2. 1825 में जो०हर्कलोट्स ने बंगला में विश्व का मानचित्र प्रकाशित किया ।

3. जे॰सुथरलेण्ड ने "भारत का भूगोल" लिखा ।[1]

4. "पियर्स का भूगोल वृत्तांत" 1818 में प्रकाशित हुआ ।

5. 1842 में सेन्डी का बंगला में सामान्य भूगोल प्रकाशित हुआ ।

व्याकरण

1. हालहेड का बंगला व्याकरण 1778 में प्रकाशित हुआ ।

2. 1801 में केरी का व्याकरण प्रकाशित हुआ ।

3. 1820 में मुरे के अंग्रेजी व्याकरण का रेव जे पियरसन ने बंगला में अनुवाद किया ।

4. 1821 में सर सि॰हाटन का व्याकरण प्रकाशित हुआ ।

5. केरी के एंग्लो - बंगाली व्याकरण का अनुवाद किया । बंगला में जे॰ राबिनसन ने "बंगला व्याकरण" नाम से जिसके 109 पृष्ठ है ।

6. कीट का बंगला व्याकरण "कीट व्याकरण" 1820 में प्रकाशित हुआ ।

7. वेंगर का बंगला व्याकरण ।

इतिहास एवं जीवनी

1. 1819 में फेलिक्स केरी ने गोल्ड स्मिथ के "इंग्लैण्ड का इतिहास" को बंगला में अनुवाद किया ।

---

1. History of Bengal Language and Literature - By Dinesh Chandu Sen - Page 865.

2. कैप्टन स्टिवर्ट का "इतिहास की युक्तिपूर्ण कथाएँ" जिसमें इंग्लैण्ड के पुरातन काल के इतिहास से सम्बन्धित नाना विषय एवं विविध रसों को समाहित करते हुए नीति पूर्ण कथाएँ लिखी गई है।[1]

3. पीयरसन ने "इतिहास समुच्चय" की रचना की। इसमें इजिप्ट, एसिरिया, बेबिलान, मेडिया, परसिया, ग्रीस एवं रोम देश के इतिहास का विवरण दिया गया है।

4. 1830 में पियरसन ने "प्राचीन इतिहास" की रचना की जिसमें इजिप्ट, एसिरिया, बेबिलोनिया, मेडेस परसिया, ग्रीस रोमन देश के निवासियों के बारे में लिखा। उन देशों के रहने वालों के रीति-रिवाज आचार व्यवहार, रहन - सहन, कायदे, कानून आदि का विवरण दिया गया है।

5. वेंगर ने मार्शमान के इतिहास का अनुवाद किया बंगला में - बंग देश पुरावृत्त नाम से। इसमें 284 पृष्ठ है।

6. श्रीमती हेबरलिन ने 1846 में धर्म पुस्तक वृत्तांत को प्रकाशित किया।

7. 1838 में पीयर्स ने "काल क्रमिक इतिहास" को प्रकाशित किया।

8. मोरटेन ने "डेनियल चरित" को 1836 में प्रकाशित किया।

9. 1833 में जे मार्शमैन ने पुरावृत्त संक्षेप" की रचना की।

10. 1831 में जो मार्शमैन ने "भारतवर्षीय इतिहास" की रचना की।

11. टक्कर ने "यहूदियों का इतिहास" लिखा था जिसे जे.केम्पबेल ने बंगला में अनुवाद किया।

---

1. [illegible]istory of [illegible] L[illegible] [illegible] Literature
[illegible]

12. रेव जे लाँग ने "मोहोम्मद जीवन चरित" की रचना की ।[1]

चिकित्सा

1. 1820 में श्रीरामपुर प्रेस ने बँगला में शरीर रचना विज्ञान पर एक ग्रंथ को प्रकाशित किया जिसे "हाड़ावली विद्या" कहा गया - रचनाकार थे केरी । सर्वप्रथम 1818 में बँगला विश्वकोश के लिए इसे लिखा गया था ।
2. स्नातक स्तर के विद्यार्थियों के लिए चिकित्सकीय संदर्शिका की रचना की गई ।[2]

इस प्रकार अंग्रेजों ने क्षेत्रीय भाषाओं में ग्रंथों की रचना करने का प्रयास किया । वे इस प्रयास में कहाँ तक सफल हुए यह विवेच्य नहीं है, परन्तु इस प्रयास के पीछे उनके अपने स्वार्थ पूर्ण उद्देश्य थे । वे यहाँ की क्षेत्रीय भाषा को सीखकर अपने मंतव्य का प्रचार करना चाहते थे - अपना देश, देशवासी, अपनी सभ्यता संस्कृति आदि की श्रेष्ठता स्थापित करना चाहते थे तथा श्रेष्ठता के इस संदेश को आम जनता तक पहुँचाना चाहते थे । यह साम्राज्यवादी उपनिवेशवादी प्रवृत्ति का अंग ही था ।

---

1. History of Bengal Language and Literature by Dinesh Chandra Sen - Page - 871.

2. -do- Page - 872.

अध्याय - 5

5. प्रजातंत्र और समाजवाद संबंधी विचारों की हिंदी तथा बंगला साहित्य में अभिव्यक्ति

अध्याय - 5

5. प्रजातंत्र और समाजवाद संबंधी विचारों की हिंदी तथा बंगला साहित्य में अभिव्यक्ति

भूमिका :

व्यक्तियों के निश्चित सांस्कृतिक समूह को समाज कहते हैं तथा इस जनसमाज की ज्ञानात्मिका मनोवृत्ति और सजगता को सामाजिक चेतना कहते है । सामाजिक चेतना मानव द्वारा झेली गई भिन्न -भिन्न परिस्थितियों की प्रतिक्रियाओं का परिणाम है । मनुष्य परिस्थितियों का ऐसा पुत्र है जो देश काल को स्वरूप प्रदान करता है एवं स्वयं उससे प्रभावित भी होता है । परिस्थितियां सदैव एक जैसी ही नहीं होती उनमें परिवर्तन आता है । चूंकि परिवर्तन संसार का नियम है । अत: समाज की व्यवस्था उसका उद्देश्य, आचार - व्यवहार, संस्कृति आदि में भी परिवर्तन होते है । नवीन समस्याएँ व अभिनव प्रश्न समाज को

जीवित रखने में कारगर होते हैं । जब कभी समाज की रूढ़िबद्ध परम्परा में कोई मौलिक परिवर्तन होने लगता है तो वह सामाजिक चेतना का प्रतिबिम्ब होती है और जब रूढ़िबद्ध विचारों से मुक्त होकर, केवल विचारधारा में सीमित न रहकर, नई दिशा की ओर सक्रियता पूर्वक समाज प्रवृत्त होता है तब वह सामाजिक जागृति कहलाती है । मानव जीवन और समाज की समस्याओं को लेकर भारत में जो सशक्त चिन्तन का विकास हुआ है उससे ऐसी सामाजिक चेतना उत्पन्न हुई जो पाश्चात्य एवं एशियाई राष्ट्र से सर्वथा भिन्न है । यह भिन्नता ही भारतीय संस्कृति की विशिष्टता है । यह विशिष्टता है शक्ति और सामंजस्य में अगाध निष्ठा का होना । अर्थात प्रजातंत्र और समाजवाद के आदर्शों को या विचारों को फलने फूलने के लिए समाज में भरपूर छूट देना । सवाल यह उठता है कि प्रजातंत्र एवं समाजवाद का अर्थ क्या है ? क्या ये महज कोरे सिद्धांत है, अथवा राजनीतिक परिकल्पनाएं ? ये दोनों आधुनिक युगीन सिद्धांत है जो परिचयात्मक से अधिक भावात्मक परिकल्पनाएं बन गयी है ।

प्रजातंत्र का अर्थ व परिभाषा :

प्रजातंत्र के अर्थ से संबंधित पृथक - पृथक दृष्टिकोण प्रचलित है । एन्साइक्लोपीडिया इण्डिका में प्रजातंत्र की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है , " Democracy, signifies opul r ov r e t. It is also used to indicate ot o ly ov r t which is im ediately or ulti taly troll d y popular opinion or by the ajori / o e le, ut lso one in which society is di ti ui ed y usence of privileged and r t t l ss."[1]

- -

1. [illegible] cyclopaedia Indic - (

जे॰ए॰हाब्सन के अनुसार, "लोकतंत्र पर्यायवाची है न्यायसंगत, उत्तम समाज व्यवस्था का । इस दृष्टि से सही अर्थों में लोकतंत्र वही है । जहाँ न तो किसी प्रकार की सामाजिक विषमता है और न ही कोई आर्थिक असुरक्षा । इस व्यापक परिभाषा में लोकतंत्र एक ऐसे सुखी समाज का रूप ले लेता है, जिसमें किसी तरह का दुःख या कलह नहीं है । ऐसे समाज में राजनीतिक स्वतंत्रता और सामाजिक आर्थिक समता परस्पर विरोधी न रहकर, एक दूसरे के पूरक बन जाते हैं । गांधी जी ने मार्क्सवाद की यही व्याख्या स्वीकार की थी ।" [1]

साम्राज्यवादियों का दृष्टिकोण इससे सम्पूर्ण रूप से भिन्न है । व्यवहार में उनका मानना है कि लोकतंत्र सभी नागरिकों की नहीं, बल्कि सिर्फ पूँजीपतियों की अपनी स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने वाली राजनीतिक व्यवस्था मात्र है । इस तरह लोकतंत्र में स्वतंत्रता मात्र दिखावटी है कारण सामान्य नागरिकों के लिए इस स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं है । आर्थिक स्वतंत्रता के बिना राजनीतिक स्वतंत्रता मात्र ढकोसला है ।

प्रजातंत्रवाद का उद्भव :

यह माना जाता है कि प्रजातंत्र का उद्भव आदिम समाज में कौटुम्बिक व्यवस्था से हुआ, जिसमें गृहस्वामी जीवन की समस्याओं को

---

1. मार्क्स, गांधी और समसामयिक संदर्भ - गणेश मंत्री, पृ॰ 83

सुलझाने व महत्वपूर्ण कार्यों के सम्पादन हेतु परिवार के वयस्क व्यक्तियों व सदस्यों से सम्मति अवश्य लेता था और योग्य सम्मतियों को मान्यता देता था । कालांतर में शासकीय व्यवस्था की सीमावृद्धि ने युगानुकूल नवीन व्यवस्थाओं का जन्म दिया । प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ इब्राहिम लिंकन के अनुसार प्रजातंत्रीय शासन प्रणाली का अर्थ है – जनता का,' जनता के द्वारा और जनता के लिए शासन पर आधुनिक संदर्भ में प्रजातंत्र के अर्थ में निरन्तर विघटन हो रहा है । इसे मूल रूप में प्रतिनिधि प्रजातंत्र माना जा सकता है । यह प्रतिनिधि दरअसल बुर्जुआ वर्ग का प्रति-निधि होता है जो लाखों लोगों की विचारधाराओं का प्रतीक मात्र होता है । परन्तु अपने वर्ग के प्रति उदारभावना के कारण वह सर्वहारा वर्ग के प्रति उपेक्षा भाव रखता है,' उनकी अवहेलना करते हुए शासन चलाता है । सर्वहारा वर्ग आर्थिक अभाव के कारण प्रतिनिधित्व नहीं कर पाता । अतः प्रजातंत्र की सफलता के लिए जनता का शिक्षित होना अत्यंत आवश्यक है जिससे वह अपने दायित्वों एवं अधिकारों को भली भांति समझ सके । परन्तु प्रजातंत्र की व्यवस्था पर प्रश्न चिह्न तब लग जाता है जब गौर से विचार करने पर कुछ प्रमुख बातें स्पष्ट होने लगती है । जैसे जनता जब अपने प्रतिनिधि का चयन करती है तब यह आवश्यक नहीं कि वह प्रतिनिधि खरा सोना हो, अर्थात सच्चा प्रतिनिधि हो , क्योंकि वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में जहाँ अर्थ साम्य न हो, वहाँ अभाव की पूर्ति करने के लिए महामानवों की कल्पना करना नितान्त भ्रामक सिद्ध होगा । ऐसे में हम प्रतिनिधियों को महामानव बनाने की बात सोच भी नहीं सकते । अतः कुछ विद्वानों का मानना है कि "यह शासन व्यवस्था जनता की भावनाओं, प्रवृत्तियों

रूसी क्रांति । अलावा इसके 1914-18 के दौरान चलने वाले विश्व युद्ध ने भी औपनिवेशिक देशों को प्रभावित किया जिनमें प्रमुख है भारत । भारत में औद्योगिक अवनति के कारण वह विदेशी माल पर निर्भर था और युद्ध के समय यह विदेशी माल उसे प्राप्त नहीं होता था । फलत: देश में आवश्यक उद्योग धंधों की स्थापना हुई और फिर पूंजीवादी नीति का विकास हुआ जिससे सर्वहारा वर्ग का शोषण हो रहा था । अनैतिक कर व्यवस्था तथा दु:सह ऋण के भार ने उसके स्वाभिमान को जगाकर उसमें स्वतंत्र होने की अभिलाषा को जागृत किया । अपने अधिकारों की रक्षा हेतु सर्वहारा वर्ग ने देशव्यापी संगठन बनाना शुरू किया । "इस प्रकार सर्वहारा वर्ग सामूहिक मोर्चे के लिए प्रथम बार सन् 1918ई॰ में श्रीमती ऐनी बेसेंट के सहयोगी श्री पी॰वाड़िया द्वारा स्थापित "मद्रास लेबर यूनियन" के रूप में संगठित हुआ ।इन्हीं दिनों खेड़ा के किसानों की हड़ताल की सफलता के फलस्वरूप अहमदाबाद में श्रीमती अनुसूइया बेन साराभाई के नेतृत्व में एक आन्दोलन हुआ जिसकी शक्तिशाली प्रगति का नेतृत्व कालांतर में श्रीमती न कर सकी और वह गांधी जी के नेतृत्व में सफल हुआ ।"[1] सन् 1920 के पश्चात गांधीवादी नीति के कारण क्रांतियों की गति कुछ शिथिल जरूर हुई परन्तु मजदूर आन्दोलन शिथिल नहीं हुए थे । वे अपने अधिकारों की मांग हड़तालों के द्वारा कर रहे थे तथा मांगों की पूर्ति न होने पर सर्वहारा वर्ग को एक-जुट करने की चेतावनी भी दे रहे थे । सन् 1924 ई॰ तक समाजवादी

- -

1॰ स्वतंत्रता संग्राम के 90 वर्ष, पृ॰44- श्रीकृष्णदास ऽहिंदी गद्य साहित्य पर समाजवाद का प्रभाव-पृ॰ 67 से उद्धृत॰

" Mr.Chamanlal, Secretary of the Trade Union Con,rees, showed that the importance of organised l hour to the national movement which could not achieve the Swaraj or self government without its help. He also warned that unless the economic conditions were improved, the Indian workers would use direct methods and establish Bolsherism or worker's rule" - Rajnikant Das. The Labour movement in India, PP.4 .

आशाओं, स्वप्नों, अधिकारों को कुचलने, उनके स्वत्वों को मिट्टी के भाव खरीदने एवं बेचने तथा जनसाधारण के कष्ट, विश्व से दूर विलास भवनों के निर्माण हितार्थ होता है ।"[1] इससे यही प्रतीत होता है कि प्रजातंत्रवाद अपने आंतरिक परिवेश में पूँजीवादी है ।

समाजवाद पूँजीवाद का विरोधी है । वह सामाजिक वैषम्य का उन्मूलन करना चाहता है । तो फिर यह जानना आवश्यक है कि समाजवाद का अर्थ क्या है ? आचार्य नरेन्द्रदेव के शब्दों में - "समाजवाद मानव को विवशता के क्षेत्र से हटाकर उसे स्वाधीनता के राज्य में ले जाना चाहता है ।"[2] इस संदर्भ में डा० शंकर जायसवाल जी का समाजवाद संबंधी परिभाषा को देखने पर यह बात स्पष्ट हो जायेगी कि भारत में लोकतंत्र की स्थापना से पहले भारतवासी, अधिकांश नहीं तो कुछ लोग, इस समाजवाद से आकृष्ट क्यों हुए । "समाजवाद प्रत्येक प्रकार के शोषण और परतंत्रता का घोर विरोधी होते हुए भी समष्टि हित के लिए व्यष्टि का बलिदान कर देता है । अर्थ साम्य पर आधारित होने के कारण यह धन के केन्द्रीकरण का उन्मूलन करके उसे श्रम के अनुसार सर्वहारा वर्ग में वितरित करने का आदेश देता है, क्योंकि उत्पादन में पूँजी की अपेक्षा श्रम का अधिक महत्व होता है ।"[3]

भारतीय स्वाधीनता संग्राम में भारतवासियों को दो प्रमुख घटनाओं से प्रेरणा मिली । पहला है जापान जैसे छोटे देश का रूस जैसे महानशक्तिशाली साम्राज्य पर विजय पाना तथा दूसरा है सन् 1917 ई॰की

- -

1• हिंदी गद्य साहित्य पर समाजवाद का प्रभाव-डा० शंकरलाल जायसवाल पृ॰ 38

2• "राष्ट्रीयता और समाजवाद" -आचार्य नरेन्द्र देव -पृ॰ 410

3• हिंदी गद्य साहित्य पर समाजवाद का प्रभाव-डा० शंकरलाल जायसवाल - पृ॰ 1

घोषित हुई और उसका स्वतंत्र कार्य प्रारंभ हो गया । मार्च, 1942 में ब्रिटेन के समाजवादी नेता "सर स्टैफर्ड क्रिप्स" के नेतृत्व में "क्रिप्स मिशन" भारत भेजा गया । इसका गुप्त उद्देश्य यह था कि भारतीय नेताओं का ध्यान उनके पूर्व घोषित वायदों से हट जाए । परन्तु अब भारतवासी सतर्क हो गए । 13 अप्रैल, 1942 को यह मिशन अपने उद्देश्य में असफल होकर इंग्लैण्ड वापस चला गया । 8 अगस्त सन् 1942 में कांग्रेस की अखिल भारतीय बैठक में "अंग्रेजों भारत छोड़ो" प्रस्ताव पास हुआ और "करो या मरो" की भावना लेकर जनता घर से सड़क पर आ गई । 1942 के आन्दोलन में जबकि साम्यवादी तथा राष्ट्रवादी कांग्रेस के विरुद्ध घृणा का प्रचार करने में और उनके नेताओं को फासीवादी कहकर निन्दित करने में लगे हुए थे तब उस समय समाजवादियों ने वीरतापूर्ण भूमिका अदा की । 1942 में भारत में बंगाल में अकाल पड़ा । जिसमें कई लाख व्यक्ति इसके शिकार हो गए । कहा जाता है कि इसमें मरने वालों की संख्या दूसरे विश्व युद्ध में हताहत कुल सैनिकों की संख्या से भी अधिक थी । इन सभी गतिविधियों से साहित्य प्रभावित होता रहा ।

स्वतंत्रता के प्रति भारतीयों की इस क्रांतिकारी चेतना ने अंग्रेज सरकार के आत्म विश्वास को ध्वस्त कर दिया । फलतः 15 अगस्त 1947 को भारतवर्ष आजाद हुआ परन्तु यह आजादी "द्विराष्ट्रवाद" के सिद्धांत पर चलकर आई । जिस समय भारत को स्वतंत्रता मिली, उस समय बंगाल, बिहार और पंजाब के दंगों में गाजर मूली की तरह इंसान काटे जा रहे थे ।

इस प्रकार सन् 1936 के बाद से ही साहित्य में समाजवादी विचारधारा का समावेश होने लगा । इसे प्रगतिशील साहित्य कहा

जाने लगा । जो काव्य में प्रगतिशील तथा गद्य में सामाजिक यथार्थवाद के रूप में आया । समूचे भारतीय साहित्य में विशेषकर हिंदी एवं बंगला साहित्य में इसका प्रभाव सचमुच आश्चर्य चकित करने वाला है । भले ही यह मान लिया जाय कि भारत में समाजवादी विचारधारा का अभ्युदय पश्चिम के प्रभाव से हुआ परन्तु इस बात की ओर भी ध्यान देना चाहिए कि मानव भ्रातृत्व, एकता तथा आध्यात्मिक समानता हमारे लिए कोई नयी बात न थी कारण इस विषय से संबंधित लोकोपकारी आदर्श ऋग्वेद तथा बौद्ध धर्म ग्रंथों में, विशेषकर "धम्मपद" में मिलते है, किन्तु आर्थिक तथा सामाजिक पुनर्निर्माण के दर्शन के रूप में समाजवाद भारत में पश्चिम के प्रभाव से विकसित तथा लोकप्रिय हुआ है । 1893 में अरविन्द ने "इन्दु प्रकाश" में "पुराने के बदले नये दीपक" शीर्षक के अंतर्गत सात लेख प्रकाशित कराये थे । इन लेखों में उन्होंने कांग्रेस की मध्यवर्गीय मनोवृत्ति की आलोचना की थी और "सर्वहारा" की दशा को सुधारने का आग्रह किया था । तिलक ने 1908 की जून और जुलाई में "केसरी" में कुछ लेख लिखे थे जिनमें उन्होंने रूस के सर्वखण्डवादियों (निहिलिस्टों) का उल्लेख किया था ।..... सम्भवत: लाला लाजपतराय पहले भारतीय थे जिन्होंने समाजवाद तथा बोल्शेविकवाद के संबंध में कुछ लिखा था । किन्तु लालाजी ने अपनी पुस्तक "फ्यूचर आॅव इण्डियन पालिटिक्स" में बोल्शेविक्वाद के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण नहीं अपनाया है । उन्होंने 1920 में भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन का सभापतित्व किया था । 1921-23 में एम०एन०राय ने "इण्डिया इन ट्रांजीशन" (संक्रमणकालीन भारत) तथा "इण्डियन प्रोब्लम" (भारतीय समस्या) की रचना की थी ।[1] इन पुस्तकों में उन्होंने कांग्रेस पर पूंजीपतियों के आधिपत्य की

---

1. आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन - डा० वी०पी०वर्मा-पृ० 417

कटु आलोचना की । जवाहरलाल नेहरू ने "सोवियट रशिया" नामक छोटी सी पुस्तक में रूस की नवीन आर्थिक नीति से 1926 तक की उपलब्धियों का प्रशंसात्मक चित्र प्रस्तुत किया । यही नहीं जवाहर लाल नेहरू ने अपनी "विश्व इतिहास की झलक" तथा "आत्मकथा" में मार्क्स की वैज्ञानिक तथा आर्थिक पद्धति की भूरि - भूरि प्रशंसा की ।

साहित्य में भी जब व्यक्ति के सुख - दुःख, आशा -निराशा, वेदना - उल्लास की सीमा को पार कर समष्टि के सुख - दुःख, उत्थान पतन, आवेग - संवेग आदि को व्यक्त किया जाता है तब वह समाजवादी साहित्य बन जाता है । दूसरे शब्दों में अभिजात वर्ग के सौंदर्य लोक से उतरकर श्रमिक वर्ग के यथार्थ को अभिव्यक्त करता है समाजवादी लेखक , ऐसे ही लेखकों में सबसे प्रमुख हस्ती है हिंदी साहित्य में प्रेमचंद" प्रेमचन्द यथार्थ की भूमि पर आदर्शवादी बीज बोते है ।" उनके आदर्शवाद ने समाज की नैतिकता को जितनी ऊंचाई देने का प्रयास किया, उससे भी अधिक महत्वपूर्ण है सर्वहारा वर्ग की वास्तविक अवस्था का वह चित्रण जिसकी प्रतिक्रिया के स्वरूप सामाजिक जागृति में एक नया मोड़ आया । उनका यथार्थवाद बूर्जुआ यथार्थवाद नहीं प्रत्युत समाजवादी यथार्थवाद है, और इसलिए उसका क्षेत्र व्यापक है तथा वह दीर्घजीवी है।"[1] प्रेमचन्द की तरह बंगला साहित्य के एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय जो आज तक जनप्रिय है । उनकी कृतियों में...... दलितों के प्रति उनकी सहानुभूति और "आधुनिक बंगाली जीवन में विवेक तथा मानवीयता के विरुद्ध व्याप्त

1.' हिंदी गद्य साहित्य पर समाजवाद का प्रभाव -डा० शंकरलाल जायसवाल -पृ॰ 88

अत्याचारों की स्पष्ट भर्त्सना,' और "पथेर दावी" में सामाजिक,धार्मिक,' आततायीपन . के विरूद्ध विद्रोह का स्वर ब्रिटिश साम्राज्यवाद की भर्त्सना में जा मिलता है ।"[1]

प्रेमचन्द एवं शरच्चन्द्र दोनों ही इस रूढ़िवादी समाज को रूढ़ियों से मुक्ति दिलाना चाहते थे,' युवा हिन्दू विधवा को अपने अस्तित्व का बोध कराना चाहते थे, उसे अभिशाप्त जिन्दगी से मुक्ति दिलाना चाहते थे । दोनों ही समाजवादी कदम उठाना चाहते थे जिससे मजदूरों एवं गरीब किसानों की हालत सुधर जाए । दोनों ही पतिता स्त्री को समाज में पुनः सम्मानजनक स्थान दिलाना चाहते थे । अतः दोनों के साहित्य में बहुत कुछ समानता है । भाव के दृष्टि से दोनों ही साधारण एवं सरल कथानक का चयन करते थे जिसका संबंध हृदय से अधिक होता था,' भाषा एवं शैली की दृष्टि से भी वह आम आदमी के लिए भी बोधगम्य अर्थात सीधी सादी ढंग से लिखी गई थी ।

प्रेमचन्द की ही तरह शरच्चन्द्र की पहली प्रकाशित कहानी "मंदिर" किसी दूसरे नाम से छपी थी । "प्रेमचन्द कीतरह शरच्चन्द्र बड़े ही संकोची स्वभाव के व्यक्ति थे जिसका उदाहरण ये है कि "भारती" में "बड़ी दीदी" सिलसिलेवार छपनी शुरू हुई परन्तु अंत में जाकर ही लेखक का नाम दिया गया,' तब तक लोग उसे रवीन्द्रनाथ की रचना समझने वाले थे ।

प्रेमचंद एवं शरच्चंद्र के अधिकतर उपन्यास समस्या प्रधान उपन्यास है ।

- -

1.' शरच्चंद्र व्यक्ति एवं कलाकार - सुबोधचन्द्र गुप्त - पृ.' 7

प्रेमचंद के अधिकतर उपन्यास क्रांतिकारी चेतना से उद्भूत हुए हैं। लाहौर कांग्रेस के अधिवेशन में अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए जवाहर लाल नेहरू ने घोषित किया था। "मैं गणतंत्रवादी और समाजवादी हूँ।" कर्मभूमि इस अशान्त काल की प्रतिध्वनियों से भरा उपन्यास है। प्रेमचन्द के समान शरच्चंद्र भी राष्ट्रवादी थे। आधुनिक शिक्षा के नाम पर पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली को वे महत्वपूर्ण नहीं मानते थे। "असहयोग के दिनों में रवीन्द्रनाथ ने शिक्षा क्षेत्र में सहयोग [शिक्षार मिलन] एक भाषण देकर जोर दिया कि पश्चिमी संस्कृति को अपनाना जरूरी है। जवाब में शरचन्द्र ने शिक्षा में द्वन्द्व पर [शिक्षार विरोध] लेख लिखा और बताया कि आधुनिक शिक्षा भारतीय राष्ट्रवाद की शत्रु है।"[1]

शरच्चंद्र के कृतित्व का एक विशिष्ट लक्षण है सामाजिक परिवेश का चित्रण जो प्रेमचंद से खूब मिलता है। शरच्चंद्र की कुछ कहानियाँ, विशेष रूप से "अभागीर स्वर्ग" और "महेश" जिस तरह सामाजिक वातावरण की सृष्टि करती है और अछूत हिन्दू स्त्री या गरीब मुसलमान किसान को जिस परिवेश में जीना पड़ता है उसका पाठक पर जो असर छोड़ती है, वह उल्लेखनीय है। "अभागीर स्वर्ग" के समान प्रेमचन्द ने "ठाकुर का कुआँ" कहानी की रचना की जिसमें कुंठित वर्ग के नारी शोषण पर प्रकाश डालकर उनकी विक्षुब्ध अवस्था का चित्रण किया। प्रेमचंद ने भारतीय समाज के अभिजात वर्ग की कुंठित नीतियों पर कुठाराघात किया है। शांति, नशा, शिकार, कफ़न, न्याय, नरक का मार्ग आदि कहानियों में प्रेमचन्द ने सामाजिक वातावरण में समाजवादी विचारों को अभिव्यक्त किया है।

---

1. शरच्चंद्र [illegible] एवं कलाकार - [illegible] पृ॰ [illegible]

शरच्चंद्र के पल्लि समाज (ग्राम समाज) में जिस प्रकार ग्रामीण दरिद्रता और राजनीति की, दुष्ट जमींदार के शोषण की कहानी मिलती है इस को प्रेमचन्द के कई उपन्यासों में भी देखा जा सकता है (विशेष कर गोदान में) ।

जहाँ प्रेमचन्द ने नारियों की समस्याओं को लेकर उपन्यासों एवं कहानियों की रचना की जैसे निर्मला, बड़े घर की बेटी, इसी प्रकार शरच्चन्द्र के उपन्यासों एवं कहानियों में अधिकतर नारियाँ ही प्रमुख पात्र थी जैसे - बड़ दीदी, बिराज बहू, श्रीकांत (राजलक्ष्मी को ही मुख्य पात्र समझना चाहिए) चरित्रहीन, शेष प्रश्न (जैसे उपन्यास) तथा परिणीता, दत्ता, बामुनेर मेये (जैसी कहानियाँ) आदि ।

विवेचन करके देखने पर पता चलता है कि प्रेमचन्द एवं शरच्चंद्र दोनों ही समस्या प्रधान कथाकार हैं । उनके कथानक के लिए विषय निर्वाचन में भी अद्भुत साम्य दिखाई देता है, जैसे दोनों ही किसान के शोषण और उत्पीड़न की कथा का गान करते है, साम्प्रदायिक तनाव, अंध विश्वास का रूढ़िवादिता के खिलाफ आवाज उठाते है, अनमेल विवाह या दहेज प्रथा आदि विवाह से संबंधित समस्याओं को लेकर जूझते है, हिन्दू विधवा की दुर्दशा, चरित्रप्रधान कथाओं की रचना, राष्ट्रीय भावना से संबंधित विषय को लेकर लिखना आदि । संक्षेप में कहा जा सकता है कि इनकी रचनाओं को स्थूल रूप से दो भागों में विभक्त कर सकते है - (1) सामाजिक यथार्थ का स्पर्श करते हुए चरित्र का उन्नयन करना (जिसमें मुख्य रूप से पात्रों के मनोविज्ञान को समाज सापेक्ष बनाकर धीरे धीरे उनकी भावनाओं का घटनाओं के माध्यम से परिशीलन किया जाता है) तथा (2) दूसरा है सामाजिक न्याय से संबंधित विषय ।

इस प्रकार शुरू से अन्त तक दोनों ही समाज के धरातल पर मानव मन के विकास तथा मानव की सामाजिक समस्याओं कों अपनी कथाओं का विषय बनाते रहे । जिस प्रकार प्रेमचन्द ने हिंदी उपन्यास में नई सामाजिक चेतना दी उसी प्रकार शरच्चंद्र ने भी बंगला कथा साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की । अन्तर केवल इतना है कि प्रेमचन्द के कथा साहित्य में सामाजिक विषय के अलावा राजनीतिक प्रभावों को भी यथेष्ट स्थान मिला है जबकि शरच्चन्द्र कभी कभी इससे छूटते नजर आते है । परन्तु शरच्चंद्र राजनीति से उदासीन नहीं थे, बल्कि महात्मा जी के आलोचक होतेहुए भी वे कांग्रेस आन्दोलन में शामिल हुए तथा हावड़ा जिले कांग्रेस समिति के अध्यक्ष भी बने ।

प्रेमचन्द को बंगला कथा साहित्य में स्त्री भावना का प्राधान्य दीखता था । उनका कहना था, "इसी से वह साहित्य हृदय को अधिक छूता है ।"[1] परन्तु उन्हें इस राह पर चलना मंजूर न था, कारण, "वे लोग भावुक है । भावुकता में जहां पहुंच सकते है, वहां मेरी पहुंच नहीं । मुझमें इतना ज्ञान कहां ? . ज्ञान से जहां नहीं पहुंचा जाता, वहां भीभावना से पहुंचा जाता है । वहां भावना से ही पहुंचा जाता रवीन्द्र, शरत् दोनों महान है । पर हिंदी के लिए क्या वही रास्ता है, शायद नहीं ? हिंदी राष्ट्रभाषा हो । मेरे लिए तो वह राह नहीं है ।"[2]

- -

1. "प्रेमचन्द" -प्रकाशचन्द्र गुप्त - पृ॰ 56

2. -वही- पृ॰ 56

स्वतंत्रता से पूर्व हिंदी एवं बंगला कविता :

सन् 1935 के आस पास हिंदी एवं बंगला कविता में एक नवीन काव्यधारा का जन्म होने लगता है । हिंदी में यह प्रगतिवादी कविता है तो बंगला में यह रवीन्द्रोत्तर कविता है । इस दौरान रचे गये साहित्य में विशेष कर काव्य में रूस के साम्यवाद का प्रभाव था । दूसरे शब्दों में राजनीति के क्षेत्र में जो §चिन्तन पद्धति§ साम्यवाद है, अर्थ नीति के क्षेत्र में जो समाजवाद है, वही साहित्य के क्षेत्र में प्रगतिवाद । हिंदी साहित्य में§ §बंगला साहित्य में§ रवीन्द्रोत्तर काव्य है । वहां ध्यान देने वाली बात यह है कि यद्यपि बंगला कविता में आधुनिकता का आरंभ बुद्धदेव वसु तथा हिंदी में अज्ञेय से माना जाता है परन्तु रवीन्द्र युग एवं छायावाद के ह्रासोन्मुख काल से ही तद्युगीन कवियों की कविताओं में आधुनिकता के लक्षण पाये गये । यह आधुनिकता उस तथाकथित प्रगतिवाद §विशेषकर छायावादोत्तर काल§ एवं रवीन्द्रोत्तर काल में विशेष रूप से पाई जाने वाले प्रवृत्तियां हैं । हिंदी साहित्य के छायावादी युग में जिस प्रकार पन्त एवं निराला की कविताओं में प्रगतिवादी कवियों के लक्षण पाये गये उसी प्रकार रवीन्द्र युग में मोहित लाल, यतीन्द्रनाथ एवं काज़ी नज़रूल इस्लाम में रवीन्द्रनाथ की काल्पनिक उड़ान के विरुद्ध विद्रोह का स्वर फूंका गया । इनमें भी सबसे प्रमुख थे हिंदी में निराला तथा बंगला में काज़ी नज़रूल इस्लाम । प्रगतिवाद में दो तत्व प्रमुख हैं - कार्ल मार्क्स का साम्यवाद तथा फ्रायड का यौनवाद जिसमें साम्यवाद मुख्य है और यौनवाद गौण है । साम्यवाद की प्रमुख मान्यता है वर्ग संघर्ष का सिद्धांत तथा घृणा की सीमा तक पूंजीवादी शोषण का विरोध । फ्रायड का यौनवाद कामवृत्ति को

जीवन की प्रमुख वृत्ति मानता है तथा काम भावना की सन्तुष्टि को जीवन का मूलमंत्र मानता है ।परन्तु निराला एवं नजरूल दोनों ही विद्रोही कवि है, अतः उनमें विद्रोह की भावना प्रबल है। इसके पीछे मार्क्स का प्रभाव कहना अनुचित न होगा । मार्क्स {1818 - 1893} तथा एंगेल्स {1820 - 1895} के कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र {1848} साम्यवाद के इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण कदम माना जाता है । लेनिन ने मार्क्सवाद को व्यावहारिक क्रांति में इस्तेमाल किया और अक्तूबर, 1917 की सोवियत क्रान्ति से संसार के साम्यवादी आन्दोलन को बहुत गति मिली । मार्क्सवादी लेनिनवादी विचार भारत में प्रवेश करते रहे और सोवियत क्रांति का भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन पर प्रभाव पड़ा । जिसके फलस्वरूप साहित्य में भी इसका प्रभाव दिखाई देने लगा । चाहे वह किसी भी प्रांत का साहित्य क्यों न हो । हिंदी साहित्य में निराला तथा बंगला साहित्य में नजरूल दोनों में अनेक बातें समान थी । दोनों ही प्रबल देश भक्त तथा विकसित सामाजिक दृष्टिकोण के साहित्यकार थे ।

"नजरूल की प्रथम वर्णनात्मक कविता "मुक्ति" 1919 में "बंगीय मुसलमान" पत्रिका में प्रकाशित हुई ।"[1] इस कविता का महत्व एक से अधिक कारणों से है । इस कविता से पता चलता है कि बचपन से ही नजरूल का धार्मिक रहस्यवादी शक्तियों में विश्वास था । गौर करने वाली बात यह है कि हिंदी साहित्य में निरालाकी प्रथम कविता "जुही की कली" रहस्यवाद से संबंध रखती है, ठीक उसी प्रकार नजरूल

- -

1. काजी नजरूल इस्लाम - गोपाल हाल्दार {अनुवादक - विनोद भारद्वाज} प्रकाशक साहित्य अकादमी -पृ. 15

की इस कविता के पीछे उनके विश्वास एवं {बुद्धिजीवी वर्ग का} अविश्वास काम करते है । भावना एवं तर्क से परे यह एक ऐसी रचना है जो भावी नजरूल की रहस्यवादी प्रवृत्ति को उजागर करती है । यद्यपि आलोचक निराला की प्रथम कविता को ऐहिक अधिक मानते है ।

समाज के शोषण का अन्त करने के लिए प्रगतिवादी कवि क्रांति का आह्वान करता है । निराला अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए "श्यामा" से प्रलयंकारी नृत्य का आह्वान करते है -

एक बार बस और नाच तू श्यामा
सामान सभी तैयार,
कितने ही है आदर, चाहिए कितने तुमको हार ।
कर मेखला मुंड मालाओं के बल मन अभिराम
एक बार बस और नाच तू श्यामा ।

{यह कविता विवेकानन्द की बंगला कविता का अनुवाद है}

प्राचीन धार्मिक आख्यानों में दुर्गा रणचंडी का रूप है, राक्षसों और अत्याचारियों को खत्म करने वाली देवी, जो एक जुझारू संरक्षिका है । नजरूल ने भी इस प्रतीक को अपनाया था । कविता में सामान्य बोलचाल की भाषा के द्वारा व्यंग्य किया गया जिसमें समकालीन घटनाओं तथा जनता पर पुलिस के द्वारा किये जा रहे जुर्म के स्पष्ट संदर्भ थे । उसमें राक्षस समान अत्याचारियों पर खूब जमकर वार किया गया था । "धूमकेतु" {पत्रिका} के दिवाली अंक में सख्त किस्म का संपादकीय छपा --"मैं भूखा हूँ । जिसमें रक्त और बलिदान के लिए माँ की पुकार थी । पुलिस ने राजद्रोह के जुर्म में इन्हें गिरफ्तार किया

और नजरूल ने कटघरे में अपना प्रभावशाली मंतव्य सुनाया जो "राजबंदीर जबानबंदी" नाम से प्रसिद्ध है जो एक स्मरणीय दस्तावेज बन गया। उसका संक्षिप्त उद्धरण इस प्रकार है -

"मुझे स्पष्ट अनुभूति हुई कि मैं उसका भेजा विश्व क्रांति का लाल सैनिक हूँ। सत्य की रक्षा तथा न्याय पर पुनर्विजय पाने केलिए भेजा गया सैनिक। उसने मुझे बंगाल की इस हरित भूमि पर एक अग्रदूत और एक तूर्यवादक के रूप में भेजा है ....।"[1]

इसमें साम्यवाद के प्रति आग्रह की भावना दिखाईदेती है। अपनी कविताओं में साम्यवाद की प्रशंसा निराला ने भी की है।

नजरूल ने भी निराला की तरह अभिनेय गीतों की रचना की। जेल जिन्दगी के दौरान नजरूल ने बंगला साहित्य के लिए अनेक कविताएं एवं कुछ चिरस्मरणीय गीतों की रचना की जिनमें प्रयुक्त है "सुपेर वन्दना" [जेल सुपरिटेंडेंट की वंदना] जो एक तीखा व्यंग्य पूर्ण गीत है जो उन दिनों सभी की जुबान पर था।

"राई शिकलपोरा छल आमादेर, शिक पोरा छल" [ये बेड़ियाँ जो हमने पहनी है वे एक छल है - महज एक दिखावा, उन्हें पहनकर हम अत्याचारियों को मुश्किल में डाल देंगे।"][2]

निराला देश भक्ति का शंख फूंकते हुए कहते है कि एक विदेशी सत्ता हम पर केवल हमारी दुर्बलताओं के कारण ही शासन कर रही है।

- -

1. "काजी नजरूल इस्लाम" -गोपाल हाल्दार -पृ. 42

2. -वही-

इसलिए संगठित होकर उसे हटा देना चाहिए । "जागो फिर एक बार" नामक कविता में ऐसी ललकार है, जहाँ निराला भारतवासी को समर भूमि में आने के लिए ललकारते हैं । आपसी वैमनस्य की भावना से वे सख्त नाराज होते हैं -

व्यक्तिगत भेद ने
छीन ली हमारी शक्ति

अथवा

जितनी विरोधी शक्तियों से,
हम लड़ रहे हैं, आपस में,
सच मानो खर्च है यह,
शक्तियों का व्यर्थ ही ।

नजरूल भी "धूमकेतु" के राजनीतिक दृष्टिकोण का स्पष्ट करते समय देशवासियों को कटिबद्ध होकर निःसंकोच विद्रोह करने के लिए कहते हैं -

"अंदर से जो ठीक लगे उसे करो । धर्म, समाज, राजा या ईश्वर इनमें से किसी से भी डरो नहीं..... सच को जानने के लिए विद्रोह कर सकते हैं - अगर आप प्रलय मचा सकते हैं, तो शिव जागेंगे और अच्छाई को सफलता मिलेगी ।"[1]

देशबंधु चित्तरंजन का साप्ताहिक "बांग्लार कथा" के लिए एक अमर गीत "भांगार गान" [विनाश का गीत] लिखा जिसमें उनका आक्रोश स्पष्ट दिखाई देता है -

- -

1. काजी नजरूल इस्लाम - गोपाल हाल्दार - पृ. 40

"कारार ओई लौह कपाट
लेंगे फेल कार रे लोपाट
रक्त जमात
सिकल पूजार पाषाण वेदी·······"

‡इस कारागार के लोहे के दरवाजे को तोड़ दो – रक्तरंजित पत्थर की वेदी के टुकड़े टुकड़े कर दो जो बेड़ियों के देवता की पूजा के लिए खड़ी की गयी है ।[1]

1921 में "विद्रोही" के प्रकाशन के बाद नजरूल "विद्रोही कवि" के नाम से पहचाने जाने लगे । बंगला भाषा मेंराष्ट्रीय गीतों का खजाना अत्यंत समृद्ध है लेकिन "कांदारी हुशियार", जिसमे राजनीतिक सभा के वार्षिक अधिवेशन का उद्घाटन हुआ था, जैसी भावोत्तेजक धुन तथा आह्वान करने वाले गीत शायद ही कोई हों ÷

"दुर्गम गिरि कांतार मरु दुस्तर पारावार
लांघिते हाबे रात्रि निशीथ, यात्रिरा हुशियार ।"[2]

‡दुर्गम पर्वत, मैदान, मरुस्थल और सागर फैलेहुए हैं । रात के अंधेरे में इन्हें फिर से पार करना होगा । यात्रियों, सावधान ।‡

शोषित वर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति का प्रदर्शन करना प्रगति-वादी कविता का प्रतिपाद्य विषय रहा है । "भिक्षुक" कविता में निराला कहते हैं –

- -

1. काजी नजरूल इस्लाम -गोपाल हाल्दार – पृ. 31
2. -वही- पृ. 54

वह आता
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता,
पेट पीठ दोनों मिलकर है एक,
चल रहा लकुटिया टेक । आदि

इस प्रकार वह "तोड़ती पत्थर", "विधवा", "शिवाजी का पत्र" आदि में भी मजूरो, विधवा तथा शूद्रों की दयनीय स्थिति का वर्णन किया है ।

नजरूल भी मूलत: श्रमिकों के ही कवि है तभी फरवरी 1926 को होने वाली अखिल बंगाल कृषक कांग्रेस ‡जो शायद अपने ढंग की पहली कांग्रेस थी‡ के सम्मेलन का उद्घाटन गान "श्रमिकेर गान" नजरूल का ही था ।

निराला और नजरूल के साहित्य ही नहीं जीवन की कुछ घटनाएं भी मिलती जुलती है । दोनों ही रूढ़ि विरोधी थे । नजरूल ने हिन्दू लड़की से शादी रचायी थी । कुछ दु:खद घटनाएं भी दोनों में समान रूप से मिलते है ।जैसे निराला अपनी बेटी सरोज के स्वर्ग सिधार जाने पर "सरोज स्मृति" की रचना करते है तो नजरूल अपनी प्रथम संतान "बुलबुल" को सदा के लिए खो देते है और "बुलबुल" की रचना करते है । दोनोंही संघर्षमय जीवन व्यतीत करतेहुए अपनी अपनी भाषा के साहित्य को कलम की चिंगारी से समृद्ध करते रहे जिसके लिए आज भी उनके पाठक उनकी प्रशंसा करते नहीं थकते ।

हिंदी और बंगला दोनों भाषाओं का कविता में प्रगतिवाद की सबल अभिव्यक्ति मिलती है । प्रगतिवादी कवि शोषितों के कवि, आम जनता के कवि है । बंगला कवि द्विजेन्द्र मित्र ने अपने शब्दों में कहा है:-

"मैं लोहारों का, ठठेरों का, बढ़इयों का
कुली तथा मजदूरों का कवि हूँ
-मैं सब इतरों का कवि हूँ।"

अज्ञेय "इन्द्रधनु रौंदे हुए ये" में (मानों अपने सम्पूर्ण युग का दर्द सहते हुए) अपना परिचय देते हैं -

"जो भी जहाँ भी पिसता है
पर हारता नहीं, न मरता है -
पीड़ित श्रमरत मानव
अविजित दुर्जेय मानव
कमकर श्रमकर, शिल्पी, स्रष्टा -
उसकी मैं कथा हूँ।

केदारनाथ अग्रवाल ने भी अपने को जनवादी कवि कहा है -

"हम लेखक हैं
कथाकार हैं
हम जीवन के भाष्कार हैं,
हम कवि हैं जनवादी।"[1]

प्रगतिवादी कवि शोषकों के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हैं। उनकी लाचारी, विवशता आदि से कवि परेशान होउठता है।

प्रेमेन्द्र मित्र "प्रथमा" में इन गरीबों के प्रति वेदना व्यक्त करते हुए कहते हैं -

---

1. आधुनिक हिंदी और बंगला कविता -डा० नान दाव् श्रीवास्तव
   पृ० 178

आज
विकृत भूख के जाल में कैदी होकर मेरा भगवान रो रहा है,
रोता है करोड़ों मां की गोद में अन्नहीन भगवान मेरा ।।

नागार्जुन ने पूंजीवादी व्यवस्था के परिणामस्वरूप गरीबी और बेकारी की अवस्था का सुन्दर व्यंग्यात्मक चित्र प्रस्तुत किया है –

"मकान नहीं खाली, दुकान नहीं खाली है
स्कूलनहीं खाली, खाली नहीं कॉलेज
खाली नहीटेबल, खाली नहीं मेज
खाली अस्तपताल नहीं, खाली है ताल नहीं
खाली नहीं फुटपाथ, खाली नहीं स्ट्रीट
खाली नहीं ट्राम, खाली नहीं ट्रेन
खाली नहीं माइंड, खाली नहीं ब्रेन
खाली है हाथ, खाली है पेट
खाली है थाली, खाली है प्लेट ।"[1]

समरसेन ने महानगरों में रहने वाले कुली – मजदूरों का जो दिन-रात रोलर चलाते है और सड़कों पर पिच डालते है, बड़ा ही सजीव चित्रण किया है –

"महानगरी में आया विवर्ण दिन,
उसके बाद अलकतारा के समान रात्रि,
और दिन
सारा दिन सुनता हूं रोलर का शब्द,

---

1. हंस – दिसम्बर, 51

हवा में मिल कर आती है पिच की गंध,
और रात्रि
रात्रि केवल पत्थर के ऊपर रोलर का
नुरुर दुःस्वप्न ।"[1]

गिरिजाकुमार माथुर ने "मशीन का पुर्जा" में एक गरीब मजदूर का चित्रण इस प्रकार किया है -

कुहरा भरा भोर जाड़ों का
पर वह मजबूरी से कंपता उठ आया है
दोनों बांह कसे छाती पर ।
पीले से गालों पर है कुछ शेव बढ़ी सी,
मसली हुई कमीज के कफ में
बटनों के बदले दो डोरे बंधे हुए हैं
रफू किया उनका वह स्वेटर
तीन सर्दियां देख चुका है ।

समाजवादी कवि पूंजीपतियों के प्रति घृणा को दर्शाता है, उनसे सख्त नफरत करता है क्योंकि वह समष्टि का हित चाहता है । शमशेर स्पष्ट घोषणा करते है कि समाज के ऐसे शोषकों को जीने का कोई अधिकार नहीं -

"दूसरों की फसल का लोभी, परजीवी, टिड्डा
दलित होगा हथौड़े से छिन्न होगा हंसिये ।"[2]

- -

1. डा० लाल बाबू श्रीवास्तव - आधुनिक हिंदी और बंगला कविता पृ० 179
2. -वही- पृ० 180

हिंदी के प्रगतिवादी कवि त्रिलोचन भी यह अनुभव करते है कि पूंजीवाद का नाश हो जाना चाहिए क्योंकि पूंजी के कारण ही हर जगह अशांति है -

"पूंजीवाद ने महत्व नष्टकर दिया सबका -
जीवन का,' जन का,' समाज का,' कलाका,'
बिना पूंजीवाद को मिटाये किसी तरह भी
यह जीवन स्वस्थ नहीं हो सकता ।"

प्रगतिवादी कवि इस निर्मम शोषण के खिलाफ आवाज उठाता है । यह क्रांति तभी संभव हो सकती है जब उनमें समष्टिगत एकता हो, जनता में जागरण हो । सुभाष मुखोपाध्याय ने समस्त दक्षिण पूर्व एशिया के जागरण का आह्वान किया है तथा अंग्रेजी उपनिवेशवाद से मुक्त होने की कामना की है अपने अग्निकोण नामक कविता में -

"अग्निकोण के समान समस्त विस्तृत खित्ते में
आंधी ओ" बवंडर से
आलोड़ित हो उठा है काला पानी
खुन हुआ जाता है सफेद सफेद फेन
जागरूक दलबद्ध लहरों की
धारदार तेज तलवार से ।

गिरिजाकुमार माथुर ने "एशिया का जागरण" में समष्टिगत एकता पर जोर देते हुए कहा -

मुड़ गये समय के चपल चरण
आया वृतान्त बन मुक्ति काल

मिट्टी का हर कन सुलग उठा
जल उठी एशिया की मशाल ।

प्रगतिवादी कवि समाज के समस्त कष्टों का कारण आर्थिक विषमता में देखते है तथा इस कष्ट के निवारण हेतु उन्हें एक ही उपचार सूझता है और वह है साम्यवाद । अतः वे इन साम्यवादी व्यवस्था एवं लेनिन स्टीलिन आदि के नाम को बार बार लेकर इस व्यवस्था के प्रति अपनी श्रद्धा को अभिव्यक्त करते हैं । विष्णु दे बार बार अपनी कविताओं में उनका नाम लेते है जो इस व्यवस्था के प्रतिष्ठापक है -

"प्रतिदिन स्टालिन का जन्म दिन है
और प्रतिदिन लेनिन है का मृत्युहीन ।"[1]

हम लोग जो प्राण पायेंगे और मिटायेंगे बुभुक्षुओं की क्षुधा
क्या भूल पायेंगे कभी उस दिन को ?
तुम्हारी, हमारी, लेनिन की एक ही तो वसुधा है
और अग्रज है अनन्य स्टैलिन ।"[2]

शिवमंगल सिंह "सुमन" ने सोवियत रूस के प्रति", "मास्को अब भी दूर है", "स्टेलिनग्राड" तथा लाल सेना आदि अनेक कविताओं में रूस और लाल सेना की प्रशस्ति गान की है -

चली लाल सेना लहराती लाल रक्त कीधारा
कौन लड़ेगा ? कौन बढ़ेगा ? कौन साहसी शूर है
दस हफ्ते दस साल बन गये, मास्को अब भी दूर है ।"[3]

---

1. व 2. लाल बाबू श्रीवास्तव -आधुनिक हिंदी और बंगला कविता पृ. 178

3. शिवमंगल सिंह "सुमन" -मास्को अब भी दूर है ।

भारत भूषण अग्रवाल ने "जागते रहो" में लाल तारे को सर्वहारा वर्ग का सहारा और विजय का प्रतीक बताया है -

लो क्षितिज के पास
वह उठा तारा, अरे ! वह लाल तारा
नयन का तारा हमारा
सर्वहारा का सहारा
विजय का विश्वास ।

सुधीन्द्र नाथ दत्त अपनी प्रसिद्ध कविता हँसिया" में लिखते हैं -

"आकाश में उठा है हँसिये का चाँद
इस युग का चाँद है हँसिया.....।[1]

प्रगतिशील काव्य ने नया सौंदर्य बोध विकसित किया जिसके अंतर्गत लघु, तुच्छ, रुक्ष, कठोर, अनगढ़, काले, गंवार आदि में भी सौंदर्य के दर्शन किये गये । सक्रियता और संघर्ष में प्रगतिशील परम सौंदर्य का भावन करती है । बंगला कवि सुकान्त भट्टाचार्य ने इस नये प्रगतिशील सौंदर्य बोध के क्रम में लिखा था -

"क्षुधा के राज्य में पृथ्वी है गद्यमय
पूर्णिमा का चाँद है मानो झुलसी हुई रोटी ।"

प्रगतिवादी कवियों पर मार्क्स के साथ साथ फ्रायड का प्रभाव भी पड़ा है अतः प्रगतिवादियों में यौनवाद की अभिव्यक्ति भी दिखाई देती है । प्रेम कविता में देह की स्वीकृति आधुनिक जीवन का विशिष्ट लक्षण है । प्रेमेन्द्र मित्र की "प्रथा" में इस प्रकार के लक्षण देखे जा सकते हैं -

---

1. आधुनिक बंगला कविता - अ० सुकुमार - पृ० 35

मुँह से नहीं, केवल वक्ष ने वक्ष लगा कर नहीं
व्यंजना - व्याकुल तो हमारा सब अंग है, मन प्राण के द्वारा,
हे प्रिये, मैं वह रहस्य तुमको सिखाऊँगा ।
जान लेने के दुरन्त आग्रह से तुम्हारी देह में भी तो
शोणित की बाढ़ उमड़ रही है ।

जीवनानंद दास ने प्रकृति और नारी देह का भेद मिटा दिया है -

"चारों ओर सोची पड़ी हैं गदरायी फसलें
उनके स्तन से फूट फूट पड़ता है शिशिर का जल -

, -अवसरेर गान : धूसर पाण्डुलिपि

केदारनाथ अग्रवाल की दृष्टि नदी के सौंदर्य पर ऐसे पड़ती है जैसे वह किसी युवती नायिका का अंग प्रत्यंग हो -

"नदी एक ढीठ नौजवान लड़की है
जो पहाड़ से मैदान में आयी है
जिसकी जांघ खुली है,
और हलों से भरी है
पेड़ है कि इसके पास ही रहते हैं
झुकते, झूमते, चूमते ही रहते हैं ।
जैसे बड़े मस्त नौजवान लड़के हैं ।"[2]

- -

1. आधुनिक हिंदी और बंगला साहित्य - पृ. 59
2. -वही- पृ. 101

प्रगतिवादी कवि देश की समस्याओं के प्रति जागरूक रहे । सन् 1942 में बंगाल में जो भयंकर अकाल पड़ा उसके हृदय - विदारक चित्रों को कई प्रगतिवादी कवियों ने आंका । नागार्जुन की ये पंक्तियां -

"कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उसके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त
दाने आये घर के अन्दर कई दिनों के बाद
धुँआ उठा आंगन के ऊपर, कई दिनों के बाद
चमक उठी घर भर की आँखें, कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलाई पांखें, कई दिनों के बाद ।"[1]

प्रगतिशील आन्दोलन के साथ साथ भारत में मजदूर आन्दोलन भी आगे बढ़ रहा था और प्रगतिवादी कवि ने इस क्रांतिकारी भूमिका को अपनी कविताओं में खूब जोर शोर से अभिव्यक्त किया । इसी संदर्भ में एक मजदूर के घर पुत्रोत्पत्ति पर केदारनाथ अग्रवाल की यह काव्यात्मक घोषणा सुनी जा सकती है -

"एक हथौड़े वाला घर में और हुआ
हाथी सा बलवान, जहाजी हाथों वाला और हुआ
सूरज सा इन्सान तरेरी आंखों वाला और हुआ
माता रही विचार अंधेरा हरने वाला और हुआ
दादा रहे निहार सवेरा करने वालाऔरहुआ

---

1. आधुनिक हिंदी और बंगला कविता -पृ. 97

जनता रही पुकार मलामत लाने वाला और हुआ
सुन ले . . सरकार, क्यामत ढाने वाला और हुआ ।"[1]

प्रयोगवाद :

प्रयोगवाद के बारे में डा० नगेन्द्र का कहना है —"प्रयोग तो प्रत्येक युग में होते आये हैं, किन्तु "प्रयोगवाद" नाम उन कविताओं के लिए रूढ़ हो गया है जो कुछ नये बोधों, संवेदनाओं तथा उन्हें प्रेषित करने वाले शिल्पगत चमत्कारों को लेकर शुरू शुरू में "तार सप्तक" के माध्यम से सन् 1943 में प्रकाशन जगत में आयी, और जो प्रगतिशील कविताओं के साथ विकसित होती गयी तथा जिनका पर्यवसान नयी कविता में हो गया ।"[2] दरअसल "प्रयोग शब्द" अंग्रेजी के एक्सपरिमेंट के अर्थ में हिंदी में प्रयुक्त हुआ है । आज के वैज्ञानिक युग में आधुनिक मानव ने प्रयोगात्मक दृष्टि को अधिक महत्व दिया है जिसका कार्य है बौद्धिक विश्लेषण । जिस प्रकार एक वैज्ञानिक अपने प्रयोगात्मक बुद्धि एवं तर्क के द्वारा किसी पदार्थ का विश्लेषण करता है ठीक उसी प्रकार प्रयोगवादी कवि अपनी अभिव्यक्ति के लिए "कविता" में कई प्रकार के प्रयोग करता है । अक्सर प्रयोगवादी कवि को घोर अहं निष्ठ या व्यक्तिवादी कवि कहते हैं । कारण कुछ कवि विचारों से समाजवादी होने पर भी संस्कारों से व्यक्तिवादी हैं, कुछ संपूर्ण रूप से समाजवादी तो कुछ संपूर्णत: व्यक्तिनिष्ठ । उनकी इसी व्यक्तिकेन्द्री भावना ने ही उन्हें सीमित परिधि में रखा ।

---

1. हिंदी की प्रगतिशील कविता : डा० रणजीत -पृ० 168
2. हिंदी साहित्य का इतिहास - संपादक -डा० नगेन्द्र -पृ० 627

बंगला कवि सुधीन्द्रनाथ दत्त का नास्तिक भाव कह लें अथवा अहं बोध, इतना प्रबल है कि वे ईश्वर के अस्तित्व को ही नकार देते हैं -

"संभवत: ईश्वर नहीं है
ईश्वर सृष्टि आजन्म अनाथ है।"[1]

अज्ञेय की कविताओं में नितान्त वैयक्तिक क्षणों में भोगी हुई अनुभूतियों की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है।

"मैं संघर्ष हूँ जिसे विश्वास नहीं,
जो है मैं उसे बदलता हूँ,
जो होगा उसे मुझे ही तो लाना है।"[2]

मुक्तिबोध के लिए मानव आत्मा की मुक्ति सबसे बड़ी समस्या थी परन्तु उन्हें अपने पर अगाध विश्वास है इसलिए वे ईश्वर को ललकारने की हिम्मत कर सकते थे -

"अंधा हूँ
खुदा के बन्दों का बंदा हूँ बावला,
मेरे इस सांवले चेहरे पर कीचड़ के धब्बे हैं,
दाग हैं
और इस फैली हुई हथेली पर जलती हुई आग है,

- -

1. आधुनिक हिंदी और बंगला कविता -पृ. 181
2. आधुनिक हिंदी काव्य के नवरत्न - डा० रमेश शर्मा -पृ. 222

अग्नि विवेक की,

. . . .

मुझे तेरी बिल्कुल जरूरत नहीं है ।"[1]

प्रयोगवाद में अस्तित्ववादी दर्शन के प्रति आग्रह मिलता है । फ्रायड आदि के मनश्चेतना वादी सिद्धांतों के प्रति भी अतियथार्थवाद के नाम पर प्रेम और यौन भावना का अंकन विभिन्न प्रतीकों और बिम्बों के माध्यम से किया है ।

अज्ञेय की इन पंक्तियों में एक यौन बुभुक्षित व्यक्ति की नारी के दैहिक का सान्निध्य के लिए पुकार स्पष्ट सुनाई देती है :-

"आह मेरा श्वास है उत्तप्त
धमनियों में उमड़ आयी है लहू की धार
प्यार है अभिशप्त -
तुम कहाँ हो नारी ?"[2]

बुद्धदेव वसु की निम्नांकित पंक्तियों में प्रथम नारी देह स्पर्श की अनुभूति को उपयुक्त भाषा एवं एकदम नूतन अप्रस्तुत के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है -

जैसे त्रिलोक एक अखंड स्थिर बिन्दु के मध्य संहत है,
त्रिकाल एक समतल और निरंजन विस्तार है,
जैसे सब द्वैत लुप्त हो जाता है, तुम और हम अनन्य है -
तुम्हारे आलिंगन में मैंने उसी ब्रह्म लोक में स्थान पा लिया ।"[3]
-मरचा पड़ा पेरेकेर गान

- -

1. आधुनिक हिंदी और बंगला कविता -पृ. 182
2. इत्यलाम - अज्ञेय - पृ.
3. आधुनिक हिंदी और बंगला कविता -पृ. 182/183

शमशेर मूलतः रोमाण्टिक काव्य संवेदना को अभिव्यक्त करने वाले कवि है परन्तु उनका विचार संसार रूपवादी है । देह संभोग, यौन भावना कवि की यथार्थ दृष्टि की परिचायक है -

तकिये पे

सुर्ख गुलाब मैने

समझे.....

दो

सेब मैंने समझे, दो........।"[1]

रघुवीर सहाय ने भी यही समझा कि प्रेम और यौवन का आनंद सिर्फ सूक्ष्म मन में नहीं, वरन स्थूल देहयष्टि में निहित है । वे तन्मय होकर उस प्रेम . में विलीन होना चाहते हैं -

"बाहें ये गले हमारे डाल, सखी

मेरे कन्धों पर आ जाये ये बिखरे बाल, सखी ।"[2]

इन कवियों में छायावाद में पनपने वाली सुकुमार भावनाओं का सर्वथा लोप हुआ है एवं हर जगह यंत्रणा बोध एवं बेचैनीकी अनुभूति ने प्रयोगवादी कवि को अशांत कर रखा था । बंगला कवि जीवनांद दास में यह अस्थिरता की मात्रा अधिक दिखाई देती है -

"मैं कवि हूँ -- वही कवि . . . . . .

आकाश में कातर आँख उठाये देखता हूँ

टूटे पंख की छवि ।"[3]

- -

1. शमशेर बहादुर सिंह - दूसरा सप्तक

2. रघुवीर सहाय -सीढ़ियों पर धूप में

3. जीवनांद दास - झरा पालक

हिंदी के मुक्तिबोध ने इस युगीन संत्रास को अधिक झेला । उनके सामने एक महत्वपूर्ण प्रश्न है जिसका वह जवाब चाहते है और वह यह है कि -

समस्या एक
मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों में
सभी मानव
सुखी, सुन्दर व शोषण युक्त
कब होंगे ?

अज्ञेय भी इस आत्म संघर्ष को झेलते है -

"सुख मिला
उसे हम न कह सके
दु:ख हुआ :
उसे हम न कह सके
उसे हम ना कह सके
संस्पर्श बृहत का उतरा सुरसरि सा :
हम बह न सके ।
यों बीत गया सब : हम मरे नहीं, पर हाय ! कदाचित्
जीवित भी न हम रह सके ।[1]

बुद्धदेव वसु भी कहते है -

"मेरा यौवन अभिशाप्त है ।"[2]

- -

1. इन्द्र धनु रौंदे हुए ये - अज्ञेय
2. शापभ्रष्ट -बुद्धदेव वसु

प्रयोगवादी कवियों में आस्था का स्वर और भविष्य के प्रति विश्वास की भावना भी परिलक्षित होती है -

अज्ञेय कहते है -

"मैं आस्था हूँ
तो मैं निरन्तर उठते रहने की शक्ति हूँ।

बुद्धदेव वसु आशावादी है कि भारत एवं एशिया के अन्य देशों के समान एक दिन अफ्रीका भी मुक्त होगा, उन देशों में भी क्रांति की भावना मुखरित हो उठेगी -

"हे अफ्रीका, हे मणिका महादेश
एक दिन तुम्हारा दीर्घ विषुवतरेखीय
शताब्दियों का अंधकार पुंज
तीव्र प्रसव व्यथा में उद्दीप्त होगा ।"[2]

रघुवीर सहाय हर परिस्थिति में कुछ रचने के लिए तैयार है -

"दिन यदि चले गये वैभव के
तृष्णा के तो नहीं गये
साधन सुख के गये हमारे
रचना के तो नहीं गये ।"[3]

सुभाष मुखोपाध्याय उच्च स्वर में घोषित करते है -

---

1. अज्ञेय - इन्द्र धनु रौंदे हुए ये
2. बुद्धदेव वसु - दमयंती
3. रघुवीर सहाय -सीढ़ियों पर धूप में

"कामरेड, आज लाना है नवयुग,
ढहाना कठिन दिन सामने जो है ।"[1]

धर्मवीर भारती कहते है -

"सृजन की थकन भूल जा देवता
अभी तो पड़ी है धरा अधबनी ।"[2]

प्रयोगवादी युग के कवि अत्यधिक अध्ययनशील एवं मननशील है । अत: देशी एवं विदेशी पौराणिक आख्यानों एव महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं का इन लोगों ने अनुशीलन किया है । बंगला के कवि रवीन्द्र नाथ के प्रभाव से मुक्त होना चाहते थे । फलत: इनकी कविताओं में देशी और विदेशी ऐतिह्य का आकर्षण अधिक दिखाई देता है । बंगाल पर हिंदी की तुलना में बंगाल पर विदेशी प्रभाव बहुत पहले से ही था अत: इनकी कविताओं में विदेशी ऐतिह्य अधिक नजर आता है । हिंदी में छायावाद को काव्यादर्श से अलग पथ के अनुसरण के प्रति मोह ने हिंदी कवियों को देशी विदेशी ऐतिह्य के प्रति आकृष्ट किया । परन्तु हिंदी में देशी ऐतिह्य की मात्रा बंगला की तुलना में अधिक है ।

हिंदी कवियों में देशी ऐतिह्य पुराकथाओं, मिथको, प्रतीकों रूपकों के माध्यम से आये है । "भारती में चक्रव्यूह, अभिमन्यु, अक्षौहिणी, टूटा पहिया, राधाकृष्ण, अन्धा युग आदि, माथुर में प्रस्तर युग, मन्वन्तर आदि, भवानी प्रसाद मिश्र में मानमर, भारत

- -

1. सुभाषा मुखोपाध्याय - पदातिक

2. धर्मवीर भारती - ठण्डा लोहा

भूषण अग्रवाल में अलका, अप्सरा, माचवे में विशाखा, रोहिणी, अनुराधा, विहंगराज, कापालिक आदि, अज्ञेय में इन्द्र, वज्र, देव, दैत्य अगस्त्य, एकलव्य, द्रोण आदि। कवियोंके विदेशी ऐतिह्य इस प्रकार है - भारती में जुपितर [जुपिटर] अज्ञेय में निषिद्ध फल, माथुर में क्रुसेड, स्फिंक्स, पिरामिड, डिनोसार, प्रमीथस आदि, शमशेर में लिबर्टी स्टेचू, पिकिंग का स्वर्ग महल, गोर्की, राजर्षिकुंग, लेनिन आदि और शिवमंगल सिंह सुमन में फासिस्ट, लाल सितारा, मास्को आदि।"[1]

"बंगला कवियों के देशी ऐतिह्य - बुद्धदेव वसु में दमयन्ती, द्रौपदी, रमा, उमा, अपर्णा, प्रेमेन्द्र मित्र में बुद्ध, अज्ञातवास, जीवनानंद दास में नाटोर, विदिशा, श्रावस्ती, सुधीन्द्रनाथ दत्त - सावित्री विष्णु दे में वैतरणीतीर, उर्वशी, उमा, त्रिशंकु आदि तथा सुभाषा मुखोपाध्याय में द्रौपदी, दुःशासन आदि। बंगला कवियों आदि के विदेशी ऐतिह्य -प्रेमेन्द्र मित्र में, क्राइस्ट, जीवनानंद दास में चीन, मिश्र, यूनान, बेबीलोन, एसिरिया, अमिय चक्रवर्ती में बोस्टन, एलिजाबेथविले, डसेलडर्फ, मुल्तान, सुधीन्द्रनाथ दत्त में अमेरिका से यूरोप राइन नदी, विष्णु दे मे हैरियट, ऐनिलिया, बिटोफिन, सिम्फनी, टाइरेसियस, आरफियस, हेलेन, स्टैलिन, लेनिन आदि।[2]

प्रयोगवाद के अज्ञेय और बंगला कवि बुद्धदेव वसु में अनेक साम्य परिलक्षित होता है। जिस प्रकार बंगला साहित्य में एक नवीन भावधारा को बुद्धदेव वसु ने नवीन भाषा के माध्यम से जन्म दिया उसी

- -

1. आधुनिक हिंदी और बंगला कविता - पृ. 196

2. -वही- पृ. 197

प्रकार हिंदी साहित्य में अज्ञेय अपनी प्रयोग धर्मिता के कारण इस नई चेतना का उद्घाटन करने वाले उद्बोधक हुए । यह बात काफी विवादास्पद है कि अज्ञेय को प्रयोगवाद का आरंभ कर्त्ता माना जाए या नहीं । स्वयं प्रयोगवाद भी वास्तविक अर्थो में प्रयोगवाद नहीं है क्योंकि प्रयोग को ये लोग साधन मानते थे, साध्य नहीं । हिंदी में "नकेनवादियों" [नलिन विलोचन शर्मा, केसरी कुमार और नरेश प्रसाद सिंह] और शिवचन्द्र शर्मा [जो लिखादलमातवाद के स्थापक थे] प्रयोग को साध्य मानते थे अतः उनका "असली" प्रयोगवादी होने का दावा है । [दे॰ साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य डा० रघुवंश] जिस प्रकार बुद्धदेव की भाषा प्रारंभ में क्लिष्ट होती थी, परन्तु धीरे धीरे सीधी सादी बोलचाल की भाषा में बदल गई ठीक उसी प्रकार अज्ञेय भी शुरू शुरू में संस्कृत निष्ट भाषा में लिखते, बाद में उनकी यह भाषा यथार्थ भाषा का रूप लेने लगी । यथा -

हहर हहर - घहराया
काला बहल
लेकिन पहले आया
झक्कड़ ।"[1]

या

"त्रिविडान्धकार
को मूर्त रूप देने वाली, एक अकिंचन, निष्प्रभ अनाहत ।
अज्ञात द्युति किरण । आसन्न पतन"...... ..।[2]

या

---

1. आधुनिक हिंदीऔर बंगला अज्ञेय - पृ॰ 197
2. आधुनिक हिंदी काव्य के नवरत्न - डा० रमेश शर्मा -पृ॰ 224

नमित मेरा भाल, आत्मा नमित-तर है,
नमित तुम मम भावना संसार ।[1]

यहाँ एक ही पंक्ति में विशेषण के तीन रूपों का प्रयोग हुआ है । इस तरह के प्रयोग से भाषा प्रयोगवादी बन जाती है ।

इस संदर्भ में बुद्धदेव बसु का एक उदाहरण देखिए -

"बाहर बर्फीली रात्रि है । डाइन हवा का अत्यंत ठंडा चाकू
गाल का मांस उखाड़ लेता है, चांद को कागज के समान
टुकड़ा टुकड़ा करके कुहासा के बीच फेंक देता है, आकाश
को घहरा देता है, हिंस्र हाथों से हिम को छिटका देता है,
सफेद, नर्म और नृत्य के समान अक्षरों में पृथ्वी पर
मृत्यु की छवि आंक देता है ।"[2]

- शीत रात्रिर प्रार्थना

इस तरह परम्परागत भाषा की संकीर्णता, जीर्णता और जर्जरता को कवि तोड़ डालना चाहता है -

"कितनी संकुचित, जीर्ण, वृद्धा हो गई आज की भाषा ।
कवि तोड़ो अपना शब्द जाल, जो आज खोखला शून्य हुआ है ।[3]

पन्त ने तो प्रगतिशील कविता की आरंभिक अवस्था में ही घोषणा की थी -

---

1. आधुनिक हिंदी काव्य के नव रत्न - डा० रमेश शर्मा-पृ० 225
2. आधुनिक हिंदी और बांग्ला कविता - पृ० 197
3. भारत भूषण अग्रवाल - तार सप्तक

खुल गये छन्द के बन्ध
प्रास के रजत पाश
अब गीत मुक्त
औ युगवाणी बहती अयास ।[1]

अज्ञेय यद्यपि शुरू में छायावादी शैली में ढल गये थे । परन्तु आगे चलकर वे मुक्त छन्द की ओर झुक गए । उनकी अधिकांश काव्य रचना मुक्त छंद में ही हुई है । बांगला कवियों ने भी प्रारंभिक प्रेम गीतों में मुक्त छंद का अनुसरण नहीं किया लेकिन आज अधिकतर कवि मुक्त छंद में ही कविता की रचना करते है । हिंदी में शमशेर, भावनी प्रसाद मिश्र एवं रघुवीर सहाय जैसे कवियों को मुक्त छंद में ही अधिक सफलता मिली ।

अलंकार प्रयोग में हिंदी और बांग्ला कवि ने समान रुचि दिखाई, अलंकारों का प्रयोग परम्परागत ढंग से न होकर नयी संवेदना के आधार पर हुआ है ।

प्रतीकों के प्रयोगमें भी प्रयोगवादी कवियों ने नयापन दिखाया । पुराने घिसे पिटे उपमानों का प्रयोग न करके युगानुकूल नये प्रतीकों का प्रयोग करके वे यांत्रिक जिन्दगी की जटिलताओं को अभिव्यक्त कर रहे थे ।

अज्ञेय ने "सावन मेघ" नामक कविता में कुंठाओं को अभिव्यक्त करने के लिए[2] यौन प्रतीकों का प्रयोग किया है।[2] जैसे -

---

1. पंत : नवदृष्टि : युगवाणी
2. आधुनिक हिन्दी काव्य के [illegible] - पृ. 223

"घिर गया नभ, उमड़ आये मेघ काले
भूमि के कम्पित उरोजों पर झुका सा
विशद, श्वासाहत, चिरातुर
छा गया इन्द्र का नील वक्ष
वज्र सा यदि तड़ित से झुलसा हुआ सा ।"[1]

बंगला कवियों में प्रतीकों के प्रयोग में सबसे विशिष्ट स्थान जीवनानंद दास का है । प्रेत चांद, जंगली, हंस, गीता मैदान, कुहासा, घास, उल्लू, चूहा आदि विभिन्न प्रतीकों के रूप में प्रयुक्त हुए है । उदाहरण -

घूसर पंखों वाला उल्लू उड़ा जाता है झिलमिल नक्षत्रों की ओर
जलभरे मैदान को छोड़कर चांद की पुकार पर
जंगली हंस खोलता है पंख ....।

-बूनो हांस

यहां उल्लू चेतना का प्रतीक, झिलमिल नक्षत्र स्वप्नलोक का, जल भरा मैदान मग्न चैतन्य का, चांद अवचेतन मन का तथा जंगली हंस अवदमित वासना का प्रतीक है ।[1]

हिंदी में जीवनानंद के समान मुक्तिबोध की कविताओं में असंख्य प्रतीक मिल जाते है, जैसे -

"ढहे हुए मकान", "परित्यक्त मंदिर", सूने खंडहर, रावन, अंधे कुए, अंधेरी गुफा, ज्वालामुखी पर्वत आदि प्रतीक बहुत ही अर्थ व्यंजक है ।"[2]

---

1. आधुनिक हिंदी और बंगला कविता - पृ॰ 204
2. -वही- पृ॰205

भारत भूषण अग्रवाल ने पौराणिक प्रतीकों के माध्यम से आज के सामाजिक यथार्थ पर तीखा व्यंग्य किया है -

"रात मैंने एक स्वप्न देखा
मैंने देखा कि मेनका अस्पताल में नर्स हो गयी है
और विश्वामित्र ट्यूशन कर रहे हैं
उर्वशी ने डांस स्कूल खोल लिया है
और बृहस्पति अंग्रेजी से अनुवाद कर रहे है ।"[1]

- ओ प्रस्तुत मन

इस प्रकार के प्रतीकों की भरमार बंगला एवं हिंदी के अनेक कवियों में देखी जा सकती है । देवराज ने इस युग की प्रतीक संवेदनशीलता का प्रयोग करने वाले कवियों को केन्द्र बिन्दु बनाकर एक कविता ही लिख डाली - जिसका नाम है - "मैंने कुछ भी नहीं किया" -

सैकड़ों मील दूर स्थित तुम्हें
उंगलियों से, हाथों से, बाहों से
न कभी छेड़ा
न स्पर्श किया
शब्दों का शिल्पी मात्र मैं
तुमसे दूर, बहुत दूर बैठा
कोरे बेरंग, कागजों पर
क, ख, ग प्रतीकों को
शब्दहीन नीरव रागनियां
रुक रुक कर बजाता रहा ।"[2]

---

1. [illegible] -125
2. कल्पना / 188 - पृ. 21

बिम्ब प्रयोग के क्षेत्र में एजरा पाउण्ड ने आन्दोलन किया था और इस दृष्टि से उन्हें बिम्बवादी आन्दोलन का प्रवर्तक मानना चाहिए । हिंदी एवं बंगला साहित्य में भी इस आन्दोलन का सम्यक प्रभाव पड़ा । बिम्ब चित्रण केवल शब्दों में रूप खड़ा करना मात्र ही नहीं बल्कि पाठक के विचार और मनोवेग को उद्दीप्त या उत्तेजित करने की कलापूर्ण कार्य व्यापार है इसे हिंदी व बंगला कवियों ने जाना व इसे क्रियान्वित करने की भरपूर कोशिश की । हिंदी साहित्य में अज्ञेय अपनी कविता में संकुचित बिम्बों के प्रयोग के लिए प्रसिद्ध है । उनके बिम्ब विधान की विशेषता यह है कि वे दृश्य की एक एक वस्तु, की सूची देते हुए समस्त वातावरण में सजीवता का संचार कर देते हैं -

क्षणभर देख सके । आकाश, धरा । दूबा मेघाली/पौधे/
लता दोलती/फूल/झरे पत्ते/तितली भुनगे/
फुनगी पर पूंछ उठाकर इतराती छोटीसी चिड़िया -

या फिर "बावरा अहेरी" में अज्ञेय का ये यह ऐन्द्रिय बिम्ब अत्यन्त ही आकर्षक बन पड़ा है -

तुम्हारी देह
मुझको कनक चम्पे की कली है
दूर से ही
स्मरण में गन्ध देती है ।

बुद्धदेव बसु ने "कंकावती" में दृश्य बिम्ब को अभिव्यक्त किया है यथा -

तरंग के समान तुम्हारा केश
संगीत के समान तुम्हारा शरीर,
वक्ष रेखा पर चन्द्रकण,
पूनो का चाँद वक्ष के ऊपर ।

जीवनानंद दास ने "वनलता सेन" में इस दृश्य बिम्ब का अंकन किया है -

अति दूर समुद्र के ऊपर
टूटे मस्तूल वाला जो नाविक भूल जाता है दिशा
हरी घासों का देश जब वह आँखों मे देखता है
    दाल चीनी द्वीप के भीतर
    उसीप्रकार देखा है अंधकार में उसको
    "इतने दिन तक कहाँ थे ? पूछा उसने,
    पक्षी के नीड़ के समान आँखें उठाये ।
    नाटौर की वनलेता सेन ने ।

हड़ताल और कर्फ्यू के आतंकपूर्ण वातावरण को बताने के लिए मुक्तिबोध ने इन पंक्तियों में प्रभावशाली बिम्बों का विधान किया है ।

"गगन में करफ्यू है ।
धरती पर चुपचाप जहरीली छि:थू: है ।
पीपल के खाली पड़े घोंसलों में पक्षियों के
पैठे है खाली हुए कारतूस ।"

यह सच है कि प्रत्येक कवि का अपना निजी व्यक्तित्व होता है और उसके इस व्यक्तित्व की छाप उसकी कविताओं में या उसके रचना संसार में प्रतिबिम्बित होती है। परन्तु कभी - कभी संस्कार और युगीन परिस्थितियां कुछ ऐसी होती है कि भिन्न - भिन्न भाषा के कवियों की कविताओं में समान बिम्ब, उपमाएं आदि मिलती है। प्रयोगवादी साहित्य में हिंदी कवि अज्ञेय तथा रवीन्द्रोत्तर काल के बंगला कवि बुद्धदेव वसु के रचना संसार एवं सृजनात्मक प्रवृत्तियों में बहुत कुछ मेल है। दोनों ही बहुमुखी प्रतिभा के धनी है व लगभग हर साहित्यिक विधा में अपनी लेखनी चलाई। बुद्धदेव वसु आधुनिक बंगला के ऐसे लेखक है जिन्हें समझने में आज भी लोग भूल कर बैठते है। अपने लेखकीय जीवन की शुरुआत में ही उन्होंने काफी बदनामी हासिल की और सदैव ही "असमाजी" ठहराये जाते थे। यहां पर कहना आवश्यक होगा कि अज्ञेय ने भी अपने लिए ऐसी ही प्रसिद्धि हासिल की।

बुद्धदेव एवं अज्ञेय दोनों ने ही अपने जीवन काल में पर्याप्त प्रसिद्धि अर्जित की। साहित्य के क्षेत्र में अपनी प्रयोगधर्मिता के कारण दोनों ने ख्याति पायी। दोनों अस्तित्ववाद और पश्चिमी काव्य परंपराओं के गहरे प्रभाव में थे। दोनों के साहित्य में कला और जीवन को लेकर द्वंद्व प्रेम और मृत्यु के बीच सुसंगति, अहंवादी दृष्टिकोण में नवीनता लाने के लिए बार-बार प्रकृति की ओर लौट आने की प्रवृत्ति है। दोनों ही स्थानीय सीमा में अपने आप को सीमित न रखकर विश्व दृष्टि को अपनाते है।

कविता में दोनों ही कवि युगों से अरक्षित सौंदर्य बोध के मार्ग को स्वच्छ बनाने के लिए सर्वथा नवीन उपकरणों एवं साधनों को अपनाते हैं।

अतः अपनी अपनी भाषा के प्रयोगवादी साहित्यान्दोलन में दोनों ही या तो महत्वपूर्ण प्रवर्त्तक एवं उन्नायक रहे अथवा विवादास्पद और आलोच्य।

बुद्धिवाद या अति बुद्धिवाद का प्रभाव होने पर भी दोनों ही प्रेम की मार्मिक अनुभूति भी करते हैं -

"हरि घास पर क्षण भर में अज्ञेय कहते है -

तुम्हें मैंने .. आह ! संख्यातीत रूपों में किया है याद।
सदा प्राणों में कहीं सुनता रहा हूँ तुम्हारा संवाद ।।[1]

तोबुद्धदेव वसु कहते है -

"नवनीत के समान कोमल तुम्हारा शरीर
जिस प्रकार अपने भीतर कंकाल छिपाये है,
उसी प्रकार तुम्हारा प्रेम किसी प्रेत में गुप्तवास करता है -
इसलिए तुम कहोगी क्या ?
मेरा दुर्भाग्य यही है कि मैं सब कुछ जानता हूँ
मैं सब कुछ जानता हूँ तब भी तुमको प्यार करता हूँ
जानता हूँ इसलिए और भी अधिक प्यार करता हूँ।"[2]

अज्ञेय एवं बुद्धदेव वसु के व्यक्तित्वों की तुलना भी रोचक है। बुद्धदेव वसु जादवपुर विश्वविद्यालय में तुलनात्मक साहित्य के प्रोफेसर थे। अज्ञेय भी कुछ समय जोधपुर विश्व विद्यालय में तुलनात्मक साहित्य के प्रोफेसर रहे थे। दोनों अंग्रेजी साहित्य के अच्छे अध्येता थे। दोनों ही कवि कथाकार और नाटककार भी थे।

---

1. हिंदी के प्रतिनिधि कवि - गणेश शर्मा शास्त्री -पृ. 189 से उद्धृत
2. बुद्धदेव वसु -"प्रेमिक" - दन्दीर वन्दना - आ.हि.क. -पृ. 43

इसी तरह "बंगला साहित्य के जीवनानंद दास एवं हिंदी साहित्य के मुक्तिबोध में भी काफी कुछ समानताएं दिखाई देती है । जीवनानंद दास बंगला कविता के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर है । रवीन्द्रनाथ के बाद जीवनानंद बंगाल के सबसे लोकप्रिय कवि माने जाते है क्योंकि उनसे बंगला कविता को गति मिली । नजरूल इस्लाम ने देश भक्ति के ऐश्वर्य में डूबे हुए गीत लिखे, जो थकी हारी पीढ़ी के कंधों पर जैसे भारी पड़ने लगे । सुधीन्द्रनाथ दत्त ने संस्कृत साहित्य का गहन अध्ययन किया और उसे आधुनिक जीवन तथा साहित्य से समन्वित करके दृढ़ प्रखर रचनात्मक अभिव्यक्ति की नींव डाल । • • • • बुद्धदेव वसु ने ऐंद्रिक बोध के अनेक भंडारों के द्वार खोले, प्रेमेन्द्र मित्र ने जन साधारण के आह्वान और व्यापक सरोकारों की कविता लिखी - रूमानी रंगों में अमिय चक्रवर्ती एक आधुनिक मुहावरा और बड़ी लयात्मक शक्ति लेकर आये, अजित दत्त ने सुधीन्द्रनाथ दत्त की तरह ही भारतीय और समकालीन का अपना ही एक संश्लेषण तैयार किया । प्रत्येक कवि ने एक भिन्न और विशेष योगदान की अपनी छाप छोड़ी । लेकिन इसमें संदेह ही है कि किसी ने जीवनानंद दास जैसी मौलिकता और घेर लेने वाले विशिष्ट गुणों का परिचय दिया हो ।[1]

जीवनानंद की शक्ति या कौशल इसमें निहित है कि वे रवीन्द्रनाथ की परम्परा को एक नई दिशा देने में कामयाब हुए । समकालीन होते हुए भी उनमें परम्परा बोध की भावना है । मुक्तिबोध में भी परम्परा का तीव्र ज्ञान होने के कारण वर्तमान दुरावस्था को लेकर अपराध भावना उत्पन्न होती है । इस परम्परा के प्रतिनिधि महात्मा गांधी है जिनके सामने "अंधेरे में" कविता में कवि की स्थिति कुछ इस तरह की है :-

- -

1• जीवनांद दास - लेखक चिदानंद दासगुप्त - पृ० 13 -14

अँधेरे की स्याहों में डूबे हुए देव को सम्मुख पाकर
मैं अति दीन हो, जाता हूँ पास कि
बिजली का झटका
कहता है - "भाग जा, हट जा
हम हैं गुजर गये जमाने के चेहरे
आगे तू बढ़ जा।"
किन्तु मैं देखा किया उस मुँह को।
गंभीर दृढ़ता की सलवटें वैसी ही,
शब्दों में गूँजता।"[1]

मुक्तिबोध स्वयं अपनी ओर से स्वाधीनता आन्दोलन और महात्मा गांधी के बारे में इस प्रकार कहते हैं -

"हजारों वर्षों में एकाध बार जो आदमी नजर आते हैं, उनमे महात्मा गांधी का नाम आता है। क्यों? इसलिए कि उन्होंने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विशुद्ध नैतिक अस्त्रों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया ..... इस प्रचंड ब्रिटिश साम्राज्य को जो सन् सैंतालिस के पहले दुनिया के सभी हिस्सों में था, महात्मा गांधी ने ऐसी करारी चोट दी कि वह हिल गया.... पहली बार, भारत के इतिहास में करोड़ों भूखे जनों को महत्व देने वाला, इनका सगा बनने वाला एक व्यक्ति सम्मुख आया जिसने उसी गरीब दबी कुचली जनता को नैतिक साहस प्रदान करके क्या का क्या बना दिया। उस नैतिकता पूर्ण जनशक्ति के आधार से ब्रिटिश साम्राज्य चूर चूर हो गया।"[2]

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद - रामविलास शर्मा, पृ. 161-162
2. भारत : इतिहास और संस्कृति - मुक्तिबोध - पृ. 143-147

जीवनानंद दास का बिम्बविधान उनकी कविता का मूल आकर्षण है। उनके बिम्बों में विस्मित कर देने वाली मौलिकता है जिससे पाठक सम्मोहित हो जाते है -

उसी प्रकार देखा था उसको अंधकार में, पूछा उसने, कहाँ रहे बोलो इतने दिन ? चिड़ियों के घोंसले सरीखी आंखों से देखती हुई वस - नाटर की बनलता सेन।"[1]

मुक्तिबोध अपनी आत्मा, अस्मिता को बार बार पहचानने की चेष्टा करते है।

"वह जो लेटी है शयित हता
खिगता स्वर्णाभा विद्युत की,
वह कौन है ?
हमारी आत्मा ही तो नहीं कहीं ?"[2]

मुक्तिबोध के अन्दर तनाव का एक कारण यह है कि वे युगीन जटिलताओं को पहचानते है और बदलाव लाना चाहते है। लेकिन डा० रामविलास शर्मा उन पर अस्तित्ववादी प्रभाव देखते है और साथ ही मनोरोगी {सिजोफ्रेनिक} स्थितियां हिंदी के अन्य आलोचक शर्मा जी की स्थापना से बिलकुल सहमत नहीं और तो और कुद शर्मा जी के मुक्तिबोध संबंधी अपने विचार बाद में चलकर काफी संशोधित हुए। मुक्तिबोध गहन आत्मसंघर्ष और आत्मसाक्षात्कार के कवि है। उनकी निराशा और दुःख का कारण सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक है। जीवनानंद दास का दुःख अस्तित्ववादी और सांस्कृतिक हैं। जीवनानंद अस्तित्ववाद से प्रभावित

- -

1. जीवनानंद दास - चिदानंद दासगुप्त - 17
2. मुक्तिबोध - चांद का मुंह टेढ़ा है

है। अतः उनका मन गम्भीर नैराश्य से सदैव दुःखी रहता है। आत्म संघर्ष की भावना दोनों कवियों में समान रूप से दिखाई देती है।

प्रेमानुभूति के क्षेत्र में दोनों ही अपने सुकुमार भावों को अभिव्यक्त करने में माहिर हैं। मुक्तिबोध ने "अंधेरे में" कविता में कहा -

मानों कि कल रात किसी अनपेक्षित क्षण में ही सहसा
प्रेम कर लिया हो।
जीवन भर के लिए ।।
मनों की उस क्षण
अतिशय मृदु किन्हीं बाहों ने आकर
कस लिया था इस भांति कि मुझको
उस स्वप्न स्पर्श की, चुम्बन की याद आ रही है,
याद आ रही है ।।
अज्ञात प्रणयिनी कौन थी, कौन थी ?
कमरे में सुबह की धूप आ गई है,
गैलरी में फैला है सुनहला रविकोर
क्या कोई प्रेमिका सचमुच मिलेगी ?
हाय। यह वेदना स्नेह की गहरी
जाग गई क्यों कर ?"[1]

जीवनानंद दास ने भी शरीर को यथा योग्य मूल्य दिया। आधुनिक कवियों की भांति उनका प्रेम भी देह सापेक्ष है -

"आज केवल देह - और देह की पीड़ा की ही
मेरी साध है, आंखों में, होठों में, बालों में

---

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद - राम विलास शर्मा - पृ. 221

केवल पीड़ा, - केवल पीड़ा - मुकुल मुकुल में
केवल कीट - आघात - दंश -
चाहता है आज मन ।"[1]

मुक्तिबोध ने यौन प्रतीकों का इस्तेमाल पाश्चात्य बाजारू (पूंजीवादी) सभ्यता के ग्लैमर को चित्रित करने के लिए किया है। (संदर्भ : चाँद का मुँह टेढ़ा है -कविता से उद्धृत)

स्वातन्त्र्योत्तर परिदृश्य :

सन् 1947 में भारत वर्ष को आजादी मिली। स्वाधीनता प्राप्त करने का आनंद तो था परन्तु भारतवासी अंग्रेजों के विभाजनकारी द्विराष्ट्र-वादी सिद्धांत से सचमुच बहुत निराश थे। भारत और पाकिस्तान के पृथक होते ही हिन्दू मुसलमानों में साम्प्रदायिक दंगे शुरू हो गये। इन दंगों के फलस्वरूप भारत में भारी संख्या में शरणार्थी आए। अतः उनके पुनर्वास की समस्या से भारत परेशान हो गया। अंग्रेजों के शासन काल में भी देश छोटी - छोटी रियासतों में बंटा था। प्रत्येक रियासत का मालिक कोई जमींदार या राजा हुआ करता था। सरदार वल्लभ भाई पटेल के नेतृत्व में एकीकरण की समस्या बिना किसी रक्तपात के सुलझ गई। 30 जनवरी, सन् 1948 को गांधी जी हत्या हो जाने से देश को बहुत बड़ा धक्का लगा। दिसम्बर 1951 में पंच वर्षीय योजना लागू की गई। 1952 में देश में आम चुनाव हुए और कांग्रेस बहुमत से विजयी हुई। नेहरू के नेतृत्व में कांग्रेस ने अपना लक्ष्य समाजवाद घोषित किया। 1955 में आवडी के कांग्रेस अधिवेशन में नेहरू ने समाजवादी व्यवस्था लाने की

---

1. धूसर पाण्डुलिपि - पियासार गान (जीवनानन्द दास)

घोषणा की । परन्तु आगे चलकर समाजवाद केवल नारा बन कर रह गया । कारण सामान्य भारतीय की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था । विदेशी पूंजी के स्वतंत्र निवेश होने के कारण अधिकांश भारतीय मुद्रा विदेशों में ही चली जाती थी । औद्योगीकरण की प्रक्रिया ने वर्ग वैषम्य को बढ़ा दिया ।

चीन 1956 से भारत के साथ युद्ध तैयारी कर रहा था । 1962 में उसने भारत पर आक्रमण किया । 1962 में भारत चीन के प्रश्न पर भारत का समर्थन कुछ साम्यवाद विरोधी देशों ने किया ।

1963 में डा० राम मनोहर लोहिया एक उप चुनाव में विजयी होकर लोक सभा आए । उनका मानना था,[1] कि "लोकसभा को देश की जनता का दर्पण होना चाहिए । अभी वह दर्पण बहुत साफ नहीं है । लोक सभा को जनता का दर्पण तभी बनाया जा सकता है,[1] जब उसके सदस्यों की दृष्टि ऐसी न रहे कि वे केवल लोगों के प्रतिनिधि हैं, बल्कि ऐसा लगे कि वे भी लोगों में से ही है ।"[1] डा० लोहिया के प्रयत्न से लोकसभा में पहली बार सरकार के विरुद्ध अविश्वास के प्रस्ताव पर बहस हुई जिससे गैर कांग्रेसवाद का विकास हुआ । डा० लोहिया ने राष्ट्रभाषा के लिए भी महत्वपूर्ण कार्य किया । निरन्तर हिंदी के प्रयोग करने से राष्ट्रभाषा के रूप में आज हिंदी स्थापित हुई । 27 मई 1964 में नेहरू की मृत्यु के साथ नेहरू युग का अन्त हो गया ।

= नेहरू के बाद लाल बहादुर शास्त्री प्रधान मंत्री बनते है । मार्च 1965 में पाकिस्तान भारत पर आक्रमण करता है । अमरीका और रूस

1• डा० राम मनोहर लोहिया, केवल नाम लोक: केवल नाम लोकसभा; "दिनमान" -हिन्दी साप्ताहिक, 16 अप्रैल, पृ० 30

जैसी महाशक्तियों के हस्तक्षेप करने के कारण भारत को विनाश होकर समझौता करना पड़ा । ताशकन्द में शास्त्री जी की मृत्यु हो जाती है । इनके बाद श्रीमती इंदिरा गांधी सत्तारूढ़ होती है । बिहार तथा उत्तर प्रदेश में अकाल पड़ने से समूचा राष्ट्र प्रभावित हो जाता है । देश की जनता में सरकार के खिलाफ असंतोष का वातावरण पनपने लगता है । इससे 1967 के आम चुनाव में पंजाब, बिहार, बंगाल, केरल, तमिलनाडु उड़ीसा में गैर कांग्रेसी सरकारें बनती हैं । डा0लोहिया ने अत्यन्त सूझ बूझ के साथ विरोधी दलों को एकमंच पर जमाया जिससे आम चुनाव में कांग्रेस की जड़े हिल गयी । 1969 में राष्ट्रपति जाकिर हुसेन की मृत्यु के बाद कांग्रेस दो दलों में बंट गई - सिण्डीकेट और इण्डिकेट । 1971में बंगला देश को स्वतंत्र करने के लिए भारत के साथ पाकिस्तान का युद्ध छिड़ गया । भारत की जीत हुई । 90हजार पाकिस्तानी युद्ध बंदियों तथा लाखों की तादाद में शरणार्थियों को पालना पड़ा । इसलिए भी भारत की आर्थिक स्थिति बहुत बुरी हो गई थी । देश में अशान्ति बढ़ती जा रही थी । 1974में लोकनायक जयप्रकाश नारायण एक लम्बे अन्तराल के बाद भारतीय व्यावहारिक राजनीति में पुनः दिलचस्पी लेने लगे । छात्रों के भ्रष्टाचार विरोधी आन्दोलन गुजरात से लेकर बिहार पहुँचा । जयप्रकाश को नेतृत्व का भार ग्रहण करने के लिए कहा गया जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया ।

फलतः पटना के गांधी मैदान में उन्होंने अपने भाषण में आन्दोलन के लक्ष्य "सम्पूर्ण क्रांति" की घोषणा की । 26 जून, 1975 को समस्त विरोधी दलों द्वारा इंदिरागांधी से त्याग पत्र मांगने के लिए दिल्ली के रामलीला मैदान में विशाल रैली की घोषणा की गयी । परन्तु 25 जून, 1975 को इंदिरा गांधी ने देश में आपातकालीन स्थिति की घोषणा कर दी । समस्त राजनैतिक नेता जेल में डाल दिये

गये । 1977 में आम चुनावों की घोषणा कीगई । जनता पार्टी को जीत हुई । प्रधान मंत्री मोरारजी देसाई बने । बाद में जयप्रकाश नारायण,' मोरार जी देसाई एवं चरणसिंह में मतभेद हो गया । 1980 के संसदीय चुनाव में इन्दिरा गांधी की जीत हुई । इसके बाद अनेक विपक्षी पार्टी राजनीतिक मैदान में आए ।

समाजवाद बनाम लोकतंत्र :

अधिकांश विद्वान भारतीय समाजवाद की चर्चा करते समय साम्यवाद पर पृथक विवेचन नहीं करते कारण मार्क्सवाद स्वयं यह छूट देता है । "मार्क्स एंगेल्स" ने कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो ने कम्युनिस्ट घोषणा पत्र में प्रतिक्रियावादी समाजवाद के अंतर्गत सामन्ती समाजवाद,' निम्न पूंजीवादी समाजवाद, जर्मन या [सच्चा] समाजवाद,' दकियानूसी या पूंजीवादी समावाद,' आलोचनात्मक कल्पनावादी समाजवाद आदि पर विचार किया है ।[1] मार्क्सवाद का विचार है कि समाजवाद का विकास सीधे पूंजीवाद से होता है,' इस कारण उस पर इसकी छाप होती है । जैसे जैसे समाजवाद विकसित होता जाता है वैसे वैसे यह कम्युनिस्ट समाज में रूपान्तरित हो जाता है । जिस प्रकार बीज से वृक्ष नहीं बल्कि नन्हा पौधा ही निकलता है उसी प्रकार पूंजीवाद से समजावाद ही उभरता है । समाजवाद एक प्रकार का अंकुर है जो विकसित होकर कम्युनिस्ट समाज रूपी वृक्ष में बदल जाता है ।

1- मार्क्स एंगेल्स : संकलित रचनाएं - भाग- 1,' पृ' 43

सम्भवतः नेहरू का समाजवादी चिन्तन मार्क्सवादी साम्यवाद को पूरी तरह स्वीकारता है परन्तु महात्मा गांधी का व्यक्तित्व ही कुछ ऐसा था जिसे जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा में स्वीकार किया कि "कई बार गांधी जी की धार्मिक आध्यात्मिक बातों से मैं अपने आप को असहमत पाता हूँ।"[1] 1955 में अवाड़ी अधिवेशन में तथा जनवरी 1964 में भुवनेश्वर अधिवेशन में भारत में समाजवादी राज्य की स्थापना की बात कही गयी थी।

भारतीय समाजवादी चिन्तन लोकतंत्र और समाजवाद दोनों को साथ लेकर चलना चाहता है क्योंकि यह सर्वोच्च राज्य व्यवस्था है। लोहिया पश्चिम के ढंग का पूँजीवाद तथा मार्क्सवाद पर आधारित अर्थव्यवस्था दोनों का सम्यक परीक्षण कर दोनों की कमियों पर विस्तार से विचार करके निष्कर्ष रूप में यही पाते है कि दोनों ही व्यर्थ व्यवस्थाएं है। उनका तो यहाँ तक कहना है कि मार्क्स ने अपने सामाजिक आर्थिक सिद्धांत तथा वर्ग संघर्ष को पश्चिम के आधार पर निर्मित किया और उसे एशिया विशेषतया भारत और चीन जैसे देशों की परिस्थितियों का ध्यान कम था।[2] भारत के समाजवादी आरंभ में मार्क्सवाद से प्रभावित थे परन्तु वे "साम्यवाद" को स्वीकार करने को तैयार नहीं है। जयप्रकाश स्पष्ट कहते है कि "लोकतांत्रिक स्वतंत्रताओं के अभावों में समाजवाद न तो जीवित रह सकता है और न उसका निर्माण ही हो सकता है।"[3]

- -

1. जवाहर लाल नेहरू : एन आटोबायग्राफी -पृ० 72
2. लोहिया : मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म -पृ० 112
3. रघुनाथ [सं०] जयप्रकाश नारायण के विचार, पृ० 32

: इस प्रकार देखा जाय तो भारत यद्यपि प्रजातंत्र को अधिक प्रधानता देता है परन्तु साम्यवाद के प्रति उसका विश्वास, उसकी आस्था में कमी नहीं आई । 1980 के मध्यावधि चुनाव में इन्दिरा कांग्रेस दो तिहाई बहुमत से जीत गई परन्तु पश्चिम बंगाल में मार्क्सवादी जीते । राजीवगांधी,' की हत्या, पी०वी०नरसिंह राव के प्रधान नेतृत्व तथा संयुक्त सरकार के बनने गिरने की आजतक की अवधि में यह बात स्पष्ट हो गई है कि भारत की नींव प्रजातंत्र जरूर है परन्तु उसका स्वरूप या दर्शन निस्संदेह समाजवादी है तभी भारत की जागरूक जनता किसी एक पार्टी की तानाशाही पर विश्वास नहीं करना चाहती और वह साझा सरकार में विश्वास करने लगी है जिससे भ्रष्टाचार,' सामाजिक कुरीतियां, बुर्जुआ वर्ग की तानाशाही धीरे धीरे कम हो जायेगी तथा हो सकता है भविष्य में सर्वहारा वर्ग की शासन की स्थापना हो जाय ।

· · जो भी हो साहित्य जगत में इस राजनीतिक परिवेश का भरपूर प्रभाव पड़ा । आजादी के बाद लेखक कवि भाव्य पीढ़ी ने इसको सम्पूर्ण रूप से भोगा और यह प्रभाव उनके अनुभव की साहित्य का विषय बन गया । साहित्यिक चेतना ने सदैव देश की सामाजिक चेतना के साथ साथ बराबर अपना कदम मिलाया । भारत की प्रायः सभी भाषाओं के साहित्य में एक नया प्रवाह आया जिससे साहित्य में दिशा परिवर्तन होने लगा । आजादी के बाद 1950 से 1960 के बीच हिन्दी में "नयी कविता" तथा बंगला में "नतून कविता" की प्रवृत्ति आ गयी थी । इस परिवर्तन में आशा और निराशा को लिये जुले भाव थे ।

जहाँ आजादी के वक्त एक ओर परिवर्तन का उल्लास था तथा उसी से संबंधित संविधान निर्माण, गणतंत्र की स्थापना, विकास योजना, आदि के क्रियान्वयन की घटनाएं थी वहीं दूसरी ओर देश के टुकड़ों में बंट जाने, गांधी जी की मौत, तथा दूसरी वित्तीय समस्याओं के कारण निराशा, द्वन्द्व, अनास्था, सूनापन आदि की भी भावनाएं थी जो नयी कविता में समाविष्ट हो गई। स्वतंत्रता प्राप्ति के उल्लास एवं सुरक्षित भविष्य की आशा में केदारनाथ सिंह कहते हैं -

"यह कैसा उल्लास,
यह कैसी हाथों में सिरजन की बेचैनी,
टूटन - टूटन में रचने की नयी - नयी सी प्यास,
यह कैसा आताप।"[1]

केदारनाथ सिंह की "अनागत" कविता नयी कविता के स्वरों की प्रतिनिधि बन गई।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व मुक्तान्त, भट्टाचार्य मानों यह प्रण करते हैं कि इस विश्व में आने से पूर्व पले नवजात शिशु के निवास योग्य बनायेंगे।

"इस विश्व को उस शिशु को वासयोग्य बनाकर हम जायेंगे
नवजातों के प्रति यही हमारी दृढ़ प्रतिज्ञा है।"[2]

लेकिन आजादी के बाद विश्व तो क्या भारत की ही हजारों विपत्तियों और समस्याओं ने संकटमय बना दिया।

- -

1. केदारनाथ सिंह : कान्त गीत : तीसरा सप्तक
2. मुक्तान्त : "गाड़ पत्र"

गांधी जी की हत्या, हिन्द पाक विवाद; पंचवर्षीय योजनाओं की विफलता; बाद, सूखा; बेरोजगारी, महंगाई आदि से भारतीय जन मानस में अनिश्चयता की भावना घर करने लगी थी और एक तरह की शून्यता छाने लगी थी। यही कारण है कि कुंवर नारायण को जीवन में सब कुछ सूना सूना लगता है। आस पास का सारा माहौल उदास और खामोश है। ऐसा लगता है जहां कवि बैठा है; वह भूतों का डेरा या पिरामिड का घेरा है।"[1]

बंगला कवि मणीन्द्रराय की ये पंक्तियां इसी माहौल को अभिव्यक्त करता है -

"चारों ओर सिर्फ तीक्ष्ण हाहाकार,
सन्देह का धूर्त अपघात
दिन की उत्तेजना, रात का गलित विषाद
जीवन का यही उपहार।"[2]

भारतीय सामाजिक राजनैतिक जीवन की इस निरर्थकता और शून्यता को सभी भाषाओं के कवियों ने व्यक्त किया। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की निम्न पंक्तियों में भी यही भाव व्यक्त हुआ है -

"ऐसी खामोशी,
पथराई हुई खामोशी
आज चारों तरफ से छायी है इस घाटी में -
अपनी कदमों की आहट से भी डर लगता है;

---

1. "कुंवरनारायण : खामोशी हल्कर, तीसरा सप्तक
2. मणीन्द्र राय : मुक्ति

> फिर भी मैं चलता हूँ – मजबूरियाँ गति में साधे,
> अपनी मंजिल का धुँआ अपनी नजर में बाँधे ।"[1]

नरेन्द्रनाथ चक्रवर्ती का हृदय एक अज्ञात, अपरिचित ज्वाला से सदैव बेचैन होकर जलता रहता है –

> "यहाँ लहर नहीं आती है, कोई प्यार नहीं करता है, प्राण में
> रात दिन कैसी व्यवस्था जलती रहती है, मस्तप्त हवा
> कितनी व्यथा देती है, कोई जानता नहीं, जानता नहीं..।"[2]

इस युग के कवियों में भी समाज के सर्वहारा के प्रति सहानुभूति है । यह भावना प्रगतिवादी एवं प्रयोगवादी कवियों में भी थी । नयी कविता सामाजिक चेतना एवं लोक सम्पृक्ति की भावना का मानों समन्वित रूप है । केदारनाथ सिंह ने लोकतंत्र की परिभाषा को मानों परिभाषित करने का प्रयास किया है । जहाँ पुरानी पीढ़ी के नयी पीढ़ी के लिए जगह छोड़ने की सलाह दी गयी है । जहाँ सभी को समान अधिकार मिले, सामन्ती संबंध टूटें, परिवारवाद खत्म हो, सही प्रजातंत्र का रूप उभरे –

> "लहर को हक दो....वह कभी संग पुरवा के
> कभी संग पछुआ के, इस तट पर भी आये...उस तट पर भी जाये
> और किसी रेती पर सिर रख कर सो जाये ।
> नयी लहर के लिए ।"[3]

- -

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : "साथ" : काठ की घंटियाँ
2. नरेन्द्रनाथ चक्रवर्ती – देउ
3. केदारनाथ सिंह – लहर को हक दो

-- बंगला के सुकांत भट्टाचार्य ने जिनकी अकाल मृत्यु आजादी से पहले सिर्फ 21 वर्ष की आयु में हो गयी थी; सूर्य से धूप की प्रार्थना केवल स्वयं के लिए नहीं की थी बल्कि निर्जन रास्ते के किनारे रहने वाले तमाम नंगे, गरीब लड़कों के लिए भी की थी, पर क्या उनकी वह प्रार्थना आने वाले पचास वर्षों में भी सफल हो पायी ? -

"हे सूर्य
तुम हमारी सीलनदार भींगी कोठरी में
गर्मी और रोशनी देना
और गर्मी देना
रास्ते के बगल के उस नंगे लड़के को ।"[1]

"नयी कविता के दौर की कीर्ति चौधरी "स्वातः सुखाय", जन हिताय" काव्य रचना चाहती है अपनी वाणी से वे सबका, दुःख दर्द दूर करना चाहती है, सबको सुखी करना चाहती है । अपने निजी दुःख दर्दों से ऊपर उठकर सबके कल्याण की कामना करती है -

"मेरी प्रतिभा यदि कल्याणी
तो दर्द हरे,
सुख सोम भरे,
यह नहीं कि -
अपने
तन के, मन के
निजी, व्यक्तिगत दुःख दर्दों में सिमे - मरे ।"[2]

---

1. सुकान्त - प्रार्थी - स०उ०म० पृ० 268
2. कीर्ति चौधरी : "प्रस्तुत" : तीसरा सप्तक

पूँजीवादी व्यवस्था समाज की ज्यादातर अशान्तियों की जड़ है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद की समाप्ति की घोषणा करते समय सुकान्त भट्टा-चार्य ने उसके लिए "चील" का प्रतीक रूप में प्रयोग किया था -

बहुत से लोग आज निरापद हैं,
निरापद हैं चूहों के बच्चे और हाथ में भोजन लिये
त्रस्त राहगीर।
निरापद हैं - कारण वह आज मरी पड़ी है,
आज और कोई नहीं है, झपट्टा मारने के लिए।"[1]

लेकिन पूँजीवाद के रूप में वही चील फिर से झपट्टा मारने को तैयार हो गयी। युगीन समस्याओं से निबटने के लिए अकेले रोने से काम नहीं चलता वरन् एक जुट होकर, मिलकर, कटिबद्ध होकर संघर्ष करने से ही समस्याओं से मुक्ति मिल सकती है, विजय देव नारायण साही इन पंक्तियों में इस बात को स्पष्ट करते हैं -

मैं केवल इतना कहता हूँ
इस सूने कमरे की सिसकन से क्या होगा?
बाहर आओ
सबसाथ साथ मिलकर रोओ
आँसू टकराकर अँगारे बन जाते हैं।
फट पड़ते हैं युग युग के ज्वालामुखी सुप्त
शायद धरती पर पड़ी दरारें मुँद जायें।[2]

---

1. "सुकान्त : चील" - आधुनिक हिन्दी और बंगला कविता - पृ० 269 से उद्धृत
2. विजयदेवनारायण साही : "सिसकन के आँसू - तीसरा सप्तक

आधुनिक विशेषकर समकालीन कविता में आत्म संघर्ष का भाव साफ दिखाई देता है। वह जीवनानंद एवं मुक्तिबोध में प्रतिनिधित्व पाता है। यह संघर्ष अनेक द्वन्द्वों का परिणाम है। यह द्वन्द्व व्यक्ति बोध एवं समाज बोध का; निष्क्रियता एवं सक्रियता का; विराट व्यक्तित्व एवं व्यक्तित्व हीनता का आत्म संघर्ष के द्वारा कवि जीवन में; विश्व में आस्था अर्जित करता है। उसे भविष्य में गहरा विश्वास होता है। समकालीन कवि केदारनाथसिंह के शब्दों में -

"एक नन्हा बीज मैं अज्ञात नवयुग का
आह,' कितना कुछ सभी कुछ न जाने क्या क्या -
समूचा विश्व होना चाहता हूँ।
भोर से पहले तुम्हारे द्वार -
तुम मुझको देखो न देखो -
कल उगूंगा मैं।"[2]

कवि समूचा विश्व हो जाना चाहता है। यह भावना केवल एक कवि या किसी एक व्यक्ति की नहीं वरन् उस युग के युवामानस की रही है।

बंगला कवियों में भी ये भाव मिलते हैं। उसमें व्यक्तित्व बोध की भावना नरेश गुह की कविता में परिलक्षित होती है। यौवन बोध ही उनका व्यक्तित्व बोध है कारण यौवन में ही श्रम किया जा सकता है, ताप व दुःख झेला जा सकता है बुढ़ापे में नहीं। अतः कवि यौवन का जयघोष करते हैं -

- -

1. केदारनाथ सिंह - "निराकार की पुकार" :तीसरा सप्तक

हे प्राण, यौवन में जागो, इस समय तो बारहमास ग्रीष्म है ।
इस समय, जीवन में ग्रीष्म है । चण्डा नर्तकी है,
छः ऋतुएं छः सखियाँ हैं, जिस रंग में कैसे नाचें
मेरे शरीर में, मन में, वैशाख के मध्यदिन का क्षुब्ध है ।"[1]

कुंवर नारायण भी नवजीवन के रूप में बीज की तरह अंकुरित होने को विकल है -

"धरती के अनादि चिन्तन में
एक अंश अकुलाये.........
इस उद्भव की एक विकलता
मुझको बो जाने दो ।"[2]

सुकान्त भट्टाचार्य ने बहुत पहले "अंकुरित बीज" के रूप में अपने अस्तित्व को देखा था -

"जड़ नहीं, मृत नहीं, और नहीं अंधकार का खनिज,
मैं तो हूँ एक जीवन्त प्राण, एक अंकुरित बीज ।"[3]

अपने अस्तित्व या व्यक्तित्व की स्थापना करने के इस प्रयास में स्वाभाविक रूप से इस युग के कवियों में दृढ़ता, विश्वास और आस्था का समावेश हो गया ।

---

1. नरेश गुह : आभार बन्धो -आधुनिक हिंदी और बंगला कविता पृ. 271 से उद्धृत
2. कुंवर नारायण :"मिट्टी के गर्भ में"
3. सुकान्त : आगामी - आधुनिक हिंदी और बंगला कविता - पृ. 272 से उद्धृत

हिंदी के कवियों में प्रयागनारायण त्रिपाठी के मन में स्मृतिमय किन्तु अनजाने भविष्य की ओर आगे बढ़ने का अदम्य उत्साह एवं चाह है -

"जाता हूँ
अगम्य हिमखण्डों के रहस्य पर खोलने को
अदम्य पथ-चारी इन चरणों को तोलने को
आगे अब
जाता हूँ।"[1]

केदारनाथ सिंह के हृदय में एक नया भाव जो रहता है उसे उन्मुक्त करने के लिए वे चाहते हैं कि पुराने आधार की हड्डी पसली टूट जाय जिससे आंतरिक भाव बाहर आ जाय।

"टूटने दो
टूटने दो,
टूटने दो,
ठाठें मारता है एक नया भाव
मेरी धमनियों में,
हां हड्डी हड्डी को
पसली-पसली को
नदी के अरार की तरह
टूटने दो।"[2]

---

1. प्रयागनारायण त्रिपाठी : "विदा के क्षणों में" :तीसरा सप्तक
2. केदारनाथ सिंह : "टूटने दो" :तीसरा सप्तक

बंगला के अन्तीम प्रतिभावन औरवात्यिक संभावनाओं वाले कवि स्वर्गीय सुकान्त भट्टाचार्य की कविताओं में भविष्य के प्रति आस्था एवं दृढ़ प्रतिज्ञा के भाव बड़ी काव्यात्मकता से प्रकट हुए हैं । "छाड़पत्र" कविता नया स्वर और सन्देश लेकर आयी थी । बोधन कविता में भी उनके संकल्प की दृढ़ता देखी जा सकती है -

"आदिम खूँखार मानवता का हुआ गर मैं कोई;
तो स्वजन खोये श्मशान में
तुम्हारी चिता मैं जरूर जलाऊँगा ।"[1]

इस युग के कवि यथार्थवादी हैं ।अतः जीवन में जो कृत्रिमता, आडम्बरकी भावना है उसे कवि ने अपनी कविता में तीखे व्यंग्य का निशाना बनाया है । पूँजीवादी सभ्यता के माहौल में संबंधों में आत्मीयता की कमी यहाँ तक कि प्रेम की दुनिया में भी औपचारिकता एवं लेन देन की भावना आ गई । जीवन के इन ह्रासोन्मुख मूल्यों को लेकर सर्वेश्वर ने सुन्दर ढंग से व्यंग्य किया है -

"ओछी नहीं है दुनिया
मैं फिर कहता हूँ
महज उसका
सौंदर्य बोध बढ़ गया है ।"[2]

नीरेन्द्र चक्रवर्ती निराशावादी होकर कहते हैं -

---

1. सुकान्त भट्टाचार्य : बोधन
2. सर्वेश्वर : "सौन्दर्यबोध" : का० की घण्टियाँ

"नहीं, मुझको तुम केवल आनन्द मत देना
वरन दुःख दो ।
नहीं, मुझको सुख शैय्या पर मत ले जाओ,
पथ की रुक्षता भी मैं
सह सकता हूँ यदि आशा दो दोनों हाथों से ।"[1]

[कारण कुछ समय के सुख प्राप्त करके लाभ ही क्या है । अन्त में दुःखी ही तो शेष रहेगा]

काव्य शिल्प के संबंध में हिंदी और बंगला दोनों कवियों की प्रवृत्तियाँ लगभग समान है । क्योंकि दोनों का संबंध संस्कृत की काव्य परम्परा से है । रुचि में भी साम्य है तथा दोनों ही कवि युगीन यथार्थ से सम्पृक्त हुए है ।

साठोत्तरी बंगला एवं हिंदी कविता :

साठोत्तरी बंगला कविता एवं हिंदी कविता में अनेक समानताएं देखी जा सकती है । बंगला की भूखी पीढ़ी के कवियों का जो स्वर है वही स्वर हिंदी में राजकमल चौधरी, अकवितावादी तथा अस्वीकृत कविता में भी सुना जा सकता है । स्वप्न भंग, मोह भंग या आशा भंग से जनित अनिश्चय, संत्रास, कुंठा, विद्रोह, आक्रोश, छटपटाहट, उत्तेजना परम्परा, त्याग आदि की भावनाएं दोनों में समान है ।[2] बंगला में 1961 के नवम्बर दिसम्बर महीने में भूखी पीढ़ी [हंग्री जेनेरेशन] का बुलेटिन हुआ ।

1. नीरेन्द्र चक्रवर्ती - उपलचारन - उद्धृत आधुनिक हिंदी और बंगला कविता -पृ. 277 से
2. आधुनिक हिंदी और बंगला कविता -पृ. 326

"यह दशक विरोध और विद्रोह की कविता रचना के लिए विशेष रूप से भारतीय साहित्य के इतिहास में दर्ज है । "एंटी पोएट्री" [हिंदी में अकविता], एंग्री हंग्री [क्रुद्ध भूखी] पीढ़ी ने पश्चिम से लेकर भारतीय कविता तक को अपनी दो टूक, बेलाग, नाराज, उच्छृंखल और तोड़ - फोड करने वाली अभिव्यक्तियों से पाट दिया । यह प्रवृत्ति परम्परागत कोमल काव्य संस्कारों पर सख्त चोट और आघात कर रही थी । सुनील गंगोपाध्याय ने एक कविता में लिखा था --

"...तीन जोड़ी लातों के आघात से
लोटती है रवीन्द्र रचनावली पापोश पर....."[1]

गिन्सबर्ग से प्रभावित होकर बंगला भूखी पीढ़ी के कवियों ने यौन बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से अपना भाव अभिव्यक्त किया । बंगला की भूखी पीढ़ी से प्रभावित थे राजकमल चौधरी, जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार, सौमित्र मोहन, मुद्राराक्षस, श्रीराम शुक्ल आदि । बंगला भूखी पीढ़ी के कवियों में प्रमुख हैं - संदीपन चट्टोपाध्याय, विनय मजूमदार, शक्ति चट्टोपाध्याय, मलय राय चौधरी, समीर राय चौधरी, सुबो आचार्य, कविता सिंह, देवी राय, प्रदीप चौधरी सुभाष घोष आदि । राजकमल चौधरी ने समाज एवं राजनीति से संबंधित समस्याओं की चर्चा यौन बिम्बों तथा अन्य असामान्य प्रतीकों उपमाओं के माध्यम से की है । वे एक ही दर्द महसूस करते है, अपनी रीढ़ की हड्डी और वियतनाम में । "मुक्ति प्रसंग" में "सापेक्ष टेबुल" देश का प्रतीक बनाया गया है । इतिवृत्तात्मक पंक्तियाँ सारगर्भित

- -

1. आधुनिक बंगला कविता - सं० सुनील कुमार - पृ० [भूमिका - पृ० 11]

है । "कोकाकोला के नीचे गिलास में रम डालकर देश की राजनीति करती थी मंजू हालदार ।"[1]

संदीपन चट्टोपाध्याय की वेश्या का वर्णन करती कविता जरा भी नग्न यौन भावना उत्पन्न नहीं करती । "जब ग्राहक उसे नंगा कर देता है, वह छन भर विरक्त होती है । फिर, हो जाती सहज - सरल (पिछले पाँव बाँध दी गयी गाय जैसी ।"[2]

भूखीपीढ़ी के कवियों ने यौनता के रहस्य को उघाड़ देना चाहा । ये कवि कभी सेक्स के आन्दोलन के विरुद्ध नजर आते है कभी कभी ग्राफ्लेस्ड विनय मजूमदार के लिए पुष्प के पहले ही संभोग करना कोई बड़ी बात नहीं है, उनके लिए फल, मिठाई या शराब और वयस्का, मुग्धा या प्रौढ़ा में कोई अन्तर नहीं है ।

"अन्धेरे में खाने दो - सभी की यही दशा है
पता क्या है, फल है या मिठाई या शराब -
वयस्का, मुग्धा या प्रौढ़ा, सिद्ध यौवना.....।"[3]

हिंदी एवं बंगला कवियों ने श्लीलता एवं अश्लीलता की परवाह किए बिना यौन बिम्बों और प्रतीकों का खुल कर इस्तेमाल किया है । देश की सामाजिक, राजनैतिक सड़ांध को व्यक्त करने के लिए उन्होंने नाफार्द और दुस्साहस से भी काम लिया ।

---

1. राजकमल चौधरी : मुक्ति प्रसंग, पृ० 6
2. संदीपन : "लहर", जनवरी - फरवरी, 64 पृ० 9
3. विनय मजूमदार : -वही- पृ० 12

स्वप्न भंग की स्थिति - हिंदी और बंगला कवियों ने आजादी से जो अपेक्षाएं रखी थीं वे कभी साकार होती नजर नहीं आयी। फलतः क्षुब्ध, त्रस्त कवि अपनी विवशता, झुंझलाहट, आक्रोश, उत्तेजना और खीझ से भर उठा।

हिंदी के राजकमल चौधरी की "मुक्ति प्रसंग" कविता में तिरंगे का प्रतीक उन्हीं कुचली हुई आकांक्षाओं और अपेक्षाओं के लिए ताकत वर ढंग से उपयोग में लाया गया है -

---

"...तीन रंगों का एक चिथड़ा,
अपने ही रक्त से रंग गये आकाश
में फहराने के लिए।"[1]

आजादी की इसी त्रासद असलियत का खुलासा बंगला के कवियों में भी देखा जा सकता है -

मैं अपने ही घर की तलाश में
25 साल तक रास्ते में मारा-मारा फिरा।"[2]

[पच्चीस वर्ष तक अपना शासन, सुख सुविधा पाने के ऊंचे ऊंचे सपने देखे, पर जो अवस्था मिली वह स्वप्न भंग की स्थिति में ला देती है। कवि पाता है कि उसके सामने एक ऐसा जनतंत्र है जिसमें से जन गायब है और सिर्फ तंत्र ही बचा है। जनतंत्र के नाम पर दरअसल यह एक खास वर्ग का अपना शासन है। इस लोकतंत्र की व्याख्या करते हुए धूमिल कहते है कि -

---

1. राजकमल चौधरी : मुक्ति प्रसंग -पृ. 16
2. मलयराय चौधरी : जख्म -पृ. 10

दरअसल अपने यहाँ जनतंत्र
एक ऐसा तमाशा है
जिसकी जान
मदारी की भाषा है।"[1]

इसी से राजकमल चौधरी ने तो घोषणा कर दी -

"आदमी को इस लोकतंत्री संसार से अलग हो जाना चाहिए।"[2] आम आदमी का दुख दर्द कवियों की चिन्ता के केन्द्र में होने से उनका मानव नियति से सीधा साक्षात्कार होता है। आज की जटिल यांत्रिक जिन्दगी में मानव उनके लिए निर्मम नियति के साक्षात्कार से बचना असंभव ही है। राजकमल चौधरी के लिए वर्तमान रोगग्रस्त है। "मुक्ति प्रसंग" उनके जीवन के अंतिम वर्षों में, मृत्यु से साक्षात्कार स्थिति में लिखी गयी है। अस्पताल में पड़े हुए अपनी नियति को वे देश की नियति से जोड़ कर देखते हैं -

"लिखने, पढ़ने, सोने, गांजा, अफीम, सिगरेट पीने, मरने का
एक मात्र कमरा
अन्दर से बन्द करके दोपहर दिन के पसीने पेशाब वीर्यपात
मटमैले अंधेरे में लेटे हुए"[3]

आज की लोकतांत्रिक प्रणाली पूँजीवाद की पूरी पिट्ठू और समर्थक है। ऐसे लोकतंत्र को राजकमल स्वीकार नहीं करना चाहते

---

1. राजकमल चौधरी : मुक्ति प्रसंग - आठ
2. -वही- पृ॰ 11

कारण स्वीकार यह लोकतांत्रिक व्यवस्था आदमी को पेट केवल कुकाती है, अपाहिज और नपुंसक बनाती है । राजकमल इस संदर्भ में लिखते हैं -

"आदमी को तोड़ती नहीं है लोकतांत्रिक पद्धतियाँ केवल पेट के बल
उसे झुका देती हैं धीरे धीरे अपाहिज,
धीरे धीरे नपुंसक बनाने के लिए.....।"[1]

मलयराय चौधरी अपनी पुरानी परम्परा की जड़ लगी नैतिकता से परेशान हैं -

"अब मैं चुपचाप सोच रहा हूँ मुझे लेकर क्या किया जाए
6000 वर्ष की पालिश लगी हुई कटकालीन क्रूरता मुझे विरासत
में मिली है ।
चमड़े का पुराना पलस्तर उधेड़कर
मैं आदमी की बोधहीनता निकालकर फेंक दे रहा हूँ ।"[2]

अतः ऐसी परम्परा के प्रति विद्रोह की भावना कवियों में उग्रतर होती गयी । इस मत्तरा के दशक के हिंदी - बंगला कवि में परम्परा के प्रति अनास्था एवं विद्रोह की भावना है ।

मणि मधुकर के शब्दों में -

"श्रद्धा, सम्मान और प्रेरणा जैसे शब्दों को
पान की पीक के साथ थूकता हूँ मैं ।"[3]

---

1. राजकमल चौधरी : मुक्ति प्रसंग - पाठ
2. मलयराय चौधरी, जख्म - पृ० 8
3. आधुनिक हिंदी और बंगला कविता -

मलराय चौधरी अपने पूर्वज द्वारा सिखायी गयी नैतिकता आदि को भूलना चाहते हैं -

"मनुष्य ने मुझे जो कुछ भी सिखाया
उन सबको मैं भुलाने की कोशिश कर रहा हूँ।"[1]

संकल्प का स्वर और मुक्ति संग्रामी कविता :

इस युग में दर्द, क्षोभ, असुरक्षा आदि के होते हुए भी संकल्प का स्वर प्रबल है। बांगला देश के कवि सिकन्दर अबू जफर उक्त स्वर में घोषणा करते हैं -

"जन संग्राम चलेगा ही
यह संग्राम चलेगा ही।"[2]

बांगला देश की कवयित्री नसीमुन आरा : आभार रातेर वाणी कविता में आत्म विश्वास के साथ कहती है -

"खुल जायेगा सिंह द्वार
यह कुहासा टिक सकेगा कितनी देर ?
अंधेरे को चीर देने वाला गान
है मेरे कण्ठ में
चाबी है मेरे ही हाथों में
आने वाले दिन की।"[3]

हिंदी में मुक्तिबोध, गोरख पाण्डे आदि कवियों ने संकल्प के जुझारू स्वर छेड़े हैं। पढ़ो गोरख पांडे की कविता - "जागते रहो सोने वाले"।

1. मलयराय चौधरी : जख्म - पृ. 17
2. आधुनिक हिंदी और बंगला कविता - पृ. 337
3. - वही - पृ. 338

शिल्पगत नवीनता :

नई कविता में बिम्बों के प्रति जो मोह था सातवें दशक में आकर कवियों ने उस मोह का त्याग कर दिया तथा सीधे सीधे सपाट भाषा में कहने लगे -

"तुमने जहां लिखा है "प्यार"
वहां लिख दो "सड़क"
फर्क नहीं पड़ता ।
मेरे युग का मुहावरा
फर्क नहीं पड़ता ।
और भाषा जो मैं बोलना चाहता हूं
मेरी जिह्वा पर नहीं
बल्कि दांतों के बीच की जगहों में ....सटी हुई है ।"[1]

रघुवीर सहाय ने लिखा है -

"भाषा कोरे वादों से
वायदों से भ्रष्ट हो चुकी है सबकी
न सही यह कविता
यह मेरे हाथों की छटपटाहट सही ।"[2]

- -

1- केदारनाथ सिंह - फर्क नहीं पड़ता - 339 से उद्धृत

2• आधुनिक हिंदी और बंगला कविता -पृ• 339

इस पीढ़ी के बंगला कवियों ने भी अत्यन्त साहसपूर्वक सहज एवं सरल भाषा में अपने भावों को व्यक्त किया है । उनकी भाषा की यह सहजता "सपाटबयानी" की सीमा तक चली जाती है -

क्योंकि वह समझ गया
दूध के दाँत के समान शब्द को किटकिटाने से कोई लाभ नहीं ।[1]

1975 से लेकर अब तक की हिंदी - बंगला कविता - यात्रा अत्यंत समृद्ध रही है । नई कविता से पहले या नई कविता के बाद कविता की यात्रा करने वाले कवि सन् 60 के बाद प्रतिष्ठित हो गये है । इस दौर के कविता संग्रह इतने अधिक हैं, तथा युवा कलाकार इतने अधिक संख्या में है कि इसे सूचीबद्ध करना नामुमकिन है ।

आठवें, नवें दशक में हिंदी तथा बंगला कविता में कोई एक विशेष प्रवृति दिखाई नहीं देती । सिवाय यह कि भाव भाषा और शैली हर दृष्टि से कविता को सुन्दर बनाने का प्रयास किया गया ।

"नवें दशक में बंगला काव्य परिदृश्य में उत्तर आधुनिकता नाम से आधुनिकतावाद - विरोधी एक नया आन्दोलन कुछ कवियों और आलोचकों ने मिलकर चलाना चाहा । उत्तर आधुनिकता के एक समर्थक अमिताभ गुप्त बंगला कविता के शैलीशिल्प के दो स्रोतों की बात करते है - उनमें से एक तो है संस्कृत तथा अन्यान्य भारतीय गैर भारतीय काव्य

- -

1. काजी नजरूल इस्लाम - "कैसे कैसे कवि" - शारदीय अंक - पृ. 138

शास्त्र से प्रभावित और दूसरा स्रोत है स्वयं बंगाल की मिट्टी ।"[1]

इस प्रकार भाषाओं में भेद होते हुए भी समान परिस्थितियों के कारण आधुनिक काल में हिंदी एवं बंगला कविता के भाव जगत एवं शिल्प जगत् में कल्पनातीत समानता के लक्षण दिखाई देते हैं। [यद्यपि दोनों साहित्य की अपनी मौलिकता है] ।

- -

1. आधुनिक बंगला कविता - डा० सुकुमार सेन [भूमिका - पृ० ४]

उपसंहार

भारतीय नवजागरण एक महान आन्दोलन और एक ऐसी ऐतिहासिक उत्तेजना है जिसने देश को नाना प्रकार से प्रभावित किया । यह एक संवेदनशील घटनाक्रम था जिसमें देश के लोग देश को गुलामी की मानसिकता से उबार कर स्वतंत्र, सक्षम और सबल बनाने में जुट गये और भारतीय नवजागरण का उदय कहाँ से हुआ, यह एक विकट प्रश्न है । कुछ लोगों का यह मानना है कि यूरोपीय नवजागरण की शुरुआत इटली से हुई और फिर वह समूचे यूरोप में फैल गया । कुछ लोगों को आधुनिक काल में, भारत में नवजागरण के लक्षण सबसे पहले बंगाल, महाराष्ट्र आदि प्रान्तों में परिलक्षित होते हैं । वास्तव में देखा जाय तो वैदिक युग से लेकर आज तक भारत में कई स्वर्ण युग आये । वे राजनीति, समाज, संस्कृति, तथा साहित्य जैसे क्षेत्रों . को उजागर करने वाले थे । कालिदास की "अभिज्ञान शाकुन्तलम" या "मेघदूतम" जैसी रचनाएं आज तक लोकप्रिय हैं । अत्यन्त प्राचीन क्लासिक ग्रंथ और रामायण और महाभारत विश्व के आगे भारतीय चिन्तन और मनीषा के बने हुए हैं । हमारा इतिहास बताता है कि भारतीय सभ्यता कितनी प्राचीन और महान है तथा भारतीय संस्कृति कितनी व्यापक और समुन्नत है । कुछ विद्वानों की मान्यता [कि यूरोपीय नवजागरण के प्रभाव से भारतीय नवजागरण घटित हुआ] से यह जिज्ञासा पैदा होना है कि क्या यूरोपीय नवजागरण वाकई इस देश में नवजागरण लाने में सहायक हुआ है ? यूरोपीय लोग यदि भारत में न आते तो क्या इस देश में परिवर्तन हो नहीं होता ? इन सवालों के दो टूक जवाब रामविलास शर्मा जैसे विद्वानों ने दिये हैं । इंग्लैण्ड ने अपनी औद्योगिक क्रान्ति के बल पर

भारत में अपना बाज़ार पुख्ता बनाया और इस प्रक्रिया में भारत को भी थोड़े बहुत भौतिक लाभ मिल गये । अंग्रेज़ों ने उसने स्वार्थ के लिए रेल - डाक, तार आदि को भारत में स्थापित किया । इन कामों के पीछे उनका स्वार्थ स्पष्ट था । भारत जैसे विशाल देश से कच्चे माल को ब्रिटेन ले जाने और तैयार माल को भारत में एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने के लिए जितने सीमित उद्योगीकरण आदि की जरूरत थी उतना भर अंग्रेज़ों ने किया, साथ ही यह भारतीय उद्योग धन्धों को चौपट करने में कोई कसर बाकी नहीं रखी । अंग्रेज़ों की वजह से ही भारत में कुटीर उद्योग पूरी तरह नष्ट हो गया । बावजूद इसके हमारे देश के कुछ इतिहासकार भारतीय नवजागरण को यूरोपीय नवजागरण से प्रेरित प्रभावित मानते हैं ।

जिस प्रकार यूरोप में इटली को यूरोपीय नवजागरण का उत्स माना जाता है इसी प्रकार कुछ लोगों के द्वारा बंगाल को यह श्रेय दिया जाता है । निस्सन्देह भारत में नवजागरण का आलोक फैलाने में उसका भी प्रमुख स्थान है । वस्तुतः बंगाल से महाराष्ट्र तक भारतीय साहित्य में उन्नीसवीं सदी के आरंभ से ही जागृति की लहर महसूस की जा सकती है । यह पुरानी कहावत है कि साहित्य में समाज प्रतिबिम्बित होता है । इसी तरह यह स्वाभाविक है कि इसी परिदृश्य का प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर पड़ा है । "[illegible] दर्शन", "भारत दुर्दशा" जैसे रचनाओं में ब्रिटिश साम्राज्यवादी शोषण के विरुद्ध तीखी प्रतिक्रिया [illegible] है । नवजागरण कालीन साहित्य [illegible] चेतना और दृष्टि से [illegible] साहित्य से [illegible] है । प्रेमचन्द जी ने 1936 में अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन में

सभापतित्व के पद से कहा था – "..... वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं" जो साहित्य के उपर्युक्त सभी गुण नवजागरण कालीन भारतीय साहित्य में मौजूद है। क्योंकि हिंदी और बंगला साहित्य की उत्पत्ति और विकास में बहुत हद तक समानता है। डा० भूपेन्द्रनाथ दत्त का यह मानना है कि "वर्तमान हिंदी और बंगला भाषा की व्युत्पत्ति का पता लगाते हुए हम एक ऐसी जगह पर पहुँच जाते हैं, जहाँ पर दोनों भाषाएँ यह दावा करती है कि पहले की रचनाएँ उन्हीं के साहित्य के अंतर्गत है।"[1] श्री हरप्रसाद शास्त्री ने नेपाल में कुछ पुरानी पोथियों का आविष्कार किया था जो अपभ्रंश भाषा में लिखी गई है। बंगाली भाषातत्वविद् इसे प्राचीन बंगला मानते है, जबकि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे हिंदी भाषा और साहित्य के अंतर्गत माना। [illegible] और दो [illegible] ने महाकवि विद्यापति को बंगाली और हिंदी विद्वान अपने अपने [illegible] कवियों में मानते है जबकि विद्यापति मैथिली भाषा के कवि है। [illegible] युगों में हिंदी और बंगला कवि [illegible] विचारधारा, कल्पना व [illegible] रही है। फिर भी बंगला साहित्य का [illegible] द्वितीय तृतीय चरण तक, यानि [illegible] हुआ है। बंगाल में भाषा का [illegible] भेद और [illegible] था [illegible] प्रांत में यथा, ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली [illegible] बोलियों के [illegible] भेद मिलता है। साहित्यिक भाषा के रूप में [illegible]

---

1. प्रगतिवाद की रूप रेखा – मन्मथनाथ गुप्त – पृ० 71 पर उद्धृत

भारत के विशाल भूखंड में राष्ट्रभाषा, राजभाषा और संपर्क भाषा के रूप में अपनी राष्ट्रीय पहचान बना चुकी है । सही मायने में द्विवेदी युग में खड़ी बोली हिंदी साहित्य में पूर्णतः स्थापित हुई और यहीं से हिंदी की आधुनिक कविता की शुरुआत भी हुई । भारतेन्दु की भांति आधुनिक बंगला के प्रथम कवि ईश्वरचन्द्र गुप्त की अधिकांश कवितायें वैष्णव कविता से अत्यधिक प्रभावित थी । भारतेन्दु युग में भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र जैसे प्रभावशाली साहित्यकारों की प्रतिभा की तुलना ईश्वरगुप्त की साहित्यकार मण्डली - ईश्वरगुप्त, रंगलाल बन्धोपाध्याय, बंकिम एवं दीनबन्धु मित्र की प्रतिभा से की जा सकती है । द्विवेदी युग में हिंदी भाषा संबंधी सुधार हुआ था । बंगला साहित्य के भी दूसरे चरण में भाषा में सुधार व परिष्कार हुआ बल्कि माइकेल मधुसूदन दत्त ने अपनी कविताओं में शैलीगत नवीनता की भी प्रतिष्ठा की । गद्य के क्षेत्र में बंकिम भी अपनी मौलिकता के कारण इस युग के भारतीय साहित्याकाश में चमक रहे थे । सफल ऐतिहासिक नाटककार के रूप में बंगला के द्विजेन्द्रलाल राय एवं हिंदी के जयशंकर प्रसाद में कतिपय समान विशेषतायें पायी जाती है । दोनों ने ही "चन्द्रगुप्त" नामक नाटक की रचना की थी । उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचन्द और शरतचन्द्र जैसा महान प्रतिभायें थी । काजीनजरूल इस्लाम एवं निराला की कविताओं में क्रांतिकारी ओजस्वी स्वर सुना जा सकता है । अज्ञेय की प्रयोगवादी कृतियों के साथ बुद्धदेव बसु की प्रयोगमूलक रचनाओं की तुलना की जा सकती है । जीवनानन्द दास तथा मुक्तिबोध की बहुत कुछ एक सी काव्य प्रवृति मालूम होती है । नागार्जुन और वीरेन्द्र बन्दोपाध्याय की काव्य प्रवृत्तियां लगभग समान स्तर पर उभरी है । इस समानता के पीछे भारतीयता के समान तत्वों के साथ साथ हिंदी बंगला का प्रति-वेशक ऐतिह्य और परिवेश भी कार्यरत है । प्रकृति, मन और वातावरण

के संदर्भ में देखें तो लेखकों व कवियों का युगीन परिदृश्य एक होने से भी समान विचारों और भावों का मिलना संभव हो सकता है । डा0 सुधाकर चटर्जी ने कुछ उदाहरणों के द्वारा रवीन्द्रनाथ ठाकुर का निराला, पन्त, प्रसाद आदि पर प्रभाव सिद्ध किया है । इस प्रभाव से इन्कार करना कठिन है । एक तो हिंदी - बंगला की भाषा और साहित्य की विरासत संस्कृत से मिली है । फिर रवीन्द्रनाथ ठाकुर एशिया के सर्वप्रथम नोबेल पुरस्कार विजेता थे । लेकिन स्वयं रवीन्द्रनाथ पर वाल्मीकि, कालिदास, व्यास, विद्यापति और कबीर का गहरा प्रभाव था । प्रभाव तथा अनुकरण [भावों की चोरी] दो सर्वथा भिन्न चीजें हैं । यदि एक कवि दूसरे कवि से प्रभावित हो रहा है तो इससे प्रभावित कवि की मौलिकता पर प्रश्न चिह्न नहीं लग जाता । अपनी कविता के क्षितिज को बढ़ाने के लिए अन्य भाषा तथा साहित्य का परिशीलन करना व उससे प्रभावित होना अनुचित उद्देश्य या परिहास्य नहीं हो सकता, बल्कि वह परिपूर्णता के लिए प्रचेष्टा कहला सकता है । कवि प्रभावित होकर साहित्य के रूप में जीवन को एक नया अर्थ देने में सहायक होता है ।

अतीत के प्रति मोह, परम्परा को यथावत् रूप में स्वीकार करने की पुरातनपंथी इच्छा से ग्रस्त साहित्य किसी काम का नहीं होता । स्वस्थ साहित्य वही है जो नये पुराने का सन्तुलित विवेक के आधार पर स्वीकार या तिरस्कार करता है ।

हिंदी और बंगला नवजागरण की अपनी अपनी विशेषताएं हैं । बंगला में नवजागरण का संबंध ब्रह्मसमाज की स्थापना से जोड़ा जाता है । जबकि हिंदी नवजागरण को 1857 के स्वाधीनता संग्राम से जोड़

कर देखा जाता है। एक जगह नूतन समाज के निर्माण हेतु सदियों से पिंड छुड़ाया जा रहा था तो दूसरी जगह राजनैतिक गुलामी से मुक्ति की दिशा में सक्रियता थी। कुछ लोगों का मत है कि अंग्रेजों के संपर्क में आने से ही बंगाल आधुनिक तथा सुशिक्षित, सभ्य और सुसंस्कृत हुआ। इससे बंगाली लोगों में स्वाभिमान जाग्रत हुआ और वे सदियों से मुक्त एक ऐसे नूतन समाज का निर्माण करना चाहने लगे जो साम्राज्यवादी अंग्रेज शासकों को इस देश से निकाल फेंकने में समर्थ हो। किन्तु इस तर्क से सहमत होना कठिन है कि अंग्रेजी शिक्षा के कारण भारतवासियों में स्वाभिमान आया। हाँ, इसका उल्टा असर हुआ होगा। भारतेन्दु युग से ही भारतेन्दु जैसे हिंदी साहित्यकार प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप में व्यंग्यात्मक या वक्रोक्तिपरक ढंग से, अंग्रेजी शासन के खिलाफ देश की जनता को जगाने की कोशिश करते रहे थे। हिंदी एवं बंगला साहित्य में महासंग्राम से संबंधित बहुत कम शिष्ट साहित्य दिखाई पड़ता है - हाँ लोक साहित्य का भरमार जरूर है। ब्रिटिश राज की तानाशाही ने साहित्य पर पाबंदी लगा रखी थी। फिर भी साहित्य में भारत की दुर्दशा के प्रति गंभीर चिंता और अंग्रेजी शासन के प्रति क्षोभ पूरी तरह व्यक्त हुआ है। बंगाल में दीनबन्धु मित्र के नाटक में "नील विद्रोह" का ऐसा वर्णन किया गया था जिससे जनता में क्रांति की भावना आ गई। दरअसल बंगला एवं हिंदी साहित्य में देश भक्ति का स्वर शुरू से लेकर आज तक निरन्तर प्रवाहित हो रहा है। भारतेन्दु, बंकिम, प्रेमचन्द, शरत्चन्द्र, रवीन्द्रनाथ, प्रसाद, पन्त, निराला, नवीन, कुन्तेय, जीवनानंद, मुक्तिबोध, वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय, नागार्जुन के काव्य-परिदृश्य में चेतना प्रखरता से अभिव्यक्त है। जिस स्वाधीनता के लिए सम्पूर्ण भारत में राष्ट्रीयता का उच्च स्वर में उद्घोष हुआ था उसकी प्राप्ति के उपरांत जन मन के सपने साकार न हो सके ...ी का उत्साह

के लक्ष्य नहीं देखे गये । स्वतंत्रता प्राप्ति की घोषणा के साथ - साथ देश का विभाजन हुआ तदुपरान्त देश में युद्धों का सिलसिला चलता रहा । महँगाई, बेकारी, जनसंख्या में वृद्धि आदि कई समस्याओं से देश की जनता में अशांति रही । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बड़े लोगों ने निजी स्वार्थों की परितृप्ति के लिए दौड़ लग गयी - साधारण जनता, किसान, मजदूर की जिन्दगी में कोई बेहतरी नहीं हुई । साहित्य में इस असंतोष की अभिव्यक्ति हुई है । फ्रायड़ एवं मार्क्स के दर्शन का प्रभाव भी भारतीय साहित्य पर पड़ा । दो महायुद्धों, फ्रांसीसी और रूसी क्रांतियों के प्रभाव से भारतीय साहित्य अछूता नहीं रह सकता था । हिंदी - बंगला के साहित्य पर पश्चिमी प्रभाव को बढ़ा - चढ़ा कर दिखाया जाता है । वस्तुतः हर रचनाकार परम्परा से कुछ ग्रहण करता है तथा अपनी मौलिकता की छाप भी छोड़ता है । तभी बंगला हिंदी के छायावादी कवियों को रवीन्द्रनाथ जैसे विश्व विख्यात कवि के प्रभाव से मुक्त होने में अधिक समय नहीं लगा क्योंकि अधिकतर वे कवि इनसे प्रभावित एवं उपकृत थे, क्योंकि मन्मथनाथ गुप्त के अनुसार, "रवीन्द्र रवीन्द्रनाथ केवल बंगला साहित्य के एक व्यक्तित्व नहीं बल्कि एक युग हैं, अपनी प्रतिभा की विपुलता, विविधता तथा भास्वरता के द्वारा एक शताब्दी की दो तिहाई से वे बंगला साहित्य आकाश में जाज्वल्यमान है ।"[1] यद्यपि रवीन्द्र के पूर्व का युग भिक्षित भावनाओं से भरा रहा है - कहीं अंग्रेजों के प्रति भक्ति की भावना है तो कहीं उनसे निजात पाने की । डा० सत्येन्द्र ने "बंगला साहित्य

- -

1. आधुनिक हिंदी और बंगला कविता - मान बाबू सक्सेना - पृ० 9

का संक्षिप्त इतिहास" (पृ० 195) में इस युग के बारे में जो कुछ कहा वह ध्यान देने योग्य है । उन्होंने कहा कि "यह युग एक साथ भारतीय समाज विधान के प्रति अश्रद्धा प्रेरित विद्रोह का भी था, अंग्रेजी शासन के प्रति घोर विद्रोह या गदर का तथा साथ ही अंग्रेजी शासन के प्रति अटल भक्ति का भी युग था, भारतीय साहित्य परम्परा के प्रति गौरव भावना का, साथ ही उसी परम्परा के प्रति हीन भावना का भी युग था । पाश्चात्य साहित्य के प्रति वितृष्णा का और उसी के प्रति श्लाघा का भी युग था । प्राचीन लोक परंपराओं में आस्था और अनास्था दोनों एक साथ इस युग में थी । यह जयदेव और कबीर को साथ ले चलने वाला युग था, यह शंकराचार्य और वात्स्यायन को हाथ में हाथ लेकर ले चलना चाहता था, ऐसे युग से संभव हुए रवीन्द्रनाथ ।"[1]

रवीन्द्रनाथ की कल्पना के सतरंगी बादलों को धरती पर लाने वाले सिद्धहस्त कवि थे काजी नजरूल इस्लाम । इनके अलावा मोहितलाल तथा यतीन्द्रनाथ बंगाली पाठकों को इस धरती के यथार्थ से अवगत कराने वाले थे । इसी प्रकार हिंदी में छायावादी कल्पना लोक से निजात पाने की कोशिश निराला, पंत, आदि कवियों ने की । प्रगतिवादी कवियों ने ब्रिटिश उपनिवेशवादी चाल को समझा और मार्क्सवाद को अधिक वैज्ञानिक सिद्धांत मानकर उसमें अपनी गहरी आस्था प्रकट की । नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शिवमंगल सिंह सुमन, त्रिलोचन तथा रामविलास शर्मा जैसे साहित्यकार साहित्य जगत में मार्क्सवाद को

---

1. बंगला साहित्य का संक्षिप्त इतिहास - डा० सत्येन्द्र - पृ० 195

लोकप्रिय बनाने में कामयाब हुए । बंगला रचनाकार बुद्धदेव बसु, प्रेमेन्द्र मित्र, अचिन्त्यकुमार सेनगुप्त आदि दुःख और दरिद्रता के सफल चितेरे हैं । विष्णु दे, समर सेन तथा सुभाष मुखोपाध्याय तीनों ही मार्क्सवाद से प्रभावित थे । इसके बाद आने वाले अधिकतर साहित्यकार विशेषकर कवि, चाहे बंगला में हो या हिंदी में लगभग एक समान विषय पर कविता रचना की है । उनकी शैली मौलिक है पर युगीन परिस्थितियाँ एवं पृष्ठभूमि एक होने के कारण इनकी कविताओं में साम्य अधिक है ।

सहायक ग्रंथ सूची

1.	अठारह सौ सत्तावन और नवजागरण	प्रदीप सक्सेना	आधार प्रकाशन, पंचकूला हरियाणा
2.	आपका व्यक्तित्व विकास के स्वरूप	लाला हरदयाल	राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
3.	आधुनिक भारतीय समाजवादी चिंतन	डा० शोभा शंकर	साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
4.	आज का भारत	रजनी पामदत्त	इण्डिया पब्लिशर्स, लखनऊ
5.	आधुनिक हिंदी साहित्य की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव	डा० हरिकृष्ण पुरोहित	उपमा प्रकाशन, बापू बाजार उदयपुर
6.	आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन	डा० वी०पी० वर्मा	लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, प्रकाशक अस्पताल रोड, आगरा
7.	आधुनिक हिंदी काव्य के स्वरत्न	डा० रमेश शर्मा	सरस्वती प्रकाशन, कानपुर
8.	आधुनिक हिंदी तथा बंगला काव्य शास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन	डा० इन्द्रनाथ चौधरी	रंग प्रकाशन, आगरा

9•	अर्थ विज्ञान की दृष्टि से हिंदी एवं बंगला शब्दों का तुलनात्मक अध्ययन	डा० राधाकृष्ण सहाय	हिन्दुस्तान एकाडेमी
10•	आज की हिंदी कविता	जगदीश चतुर्वेदी	प्रभारत प्रकाशन, चौडी बाजार, दिल्ली- 6
11•	आधुनिक हिंदी और बंगला कविता	डा० लालबाबू श्रीवास्तव	प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली
12•	आत्म गंध	केदारनाथ अग्रवाल	परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद
13•	अकाल बेला में (राजकमल चौधरी)	सं० सुरेश शर्मा	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-2
14•	ईश्वरचन्द विद्यासागर	हिरण्मयी बनर्जी	साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली
15•	कविता के नये प्रतिमान	नामवर सिंह	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-6
14•	काजी नजरूल इस्लाम	गोपाल हालदार	साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली
17•	चांद का मुंह टेढा है	गजानन माधव मुक्तिबोध	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन दिल्ली - 1
13•	चौथा सप्तक	सं० - अज्ञेय	नयी दिल्ली - 1
19•	छायावादी कवियों पर अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों का प्रभाव	डा० फूल बिहारी	राजेश प्रकाशन, कृष्णनगर दिल्ली

20·	छायावाद उत्थान पतन, पुनर्मूल्यांकन	डा0 देवराज	कल्पकार प्रकाशन, बादशाह लखनऊ
21·	ताराशंकर बन्धोपाध्याय	महाश्वेता देवी	साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली
22·	तार सप्तक	सं0 अज्ञेय	भारतीय ज्ञानपीठ
	तीसरा सप्तक	-वही-	-वही-
	दूसरा सप्तक	-वही-	-वही-
23·	धर्मशास्त्र का इतिहास §पंचम भाग§	मूल लेखक-भारत रत्न पी·वी·काणे अनुवादक- अर्जुन चौबे काश्यप	हिंदी समिति, उत्तर शासन, लखनऊ
24·	नयी कविता और अस्तित्ववाद	डा0 रामविलास शर्मा	राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली
25·	नयी कविता	देवराज	आपी प्रकाशन, नई दिल्ली
26·	प्रगतिवाद की रूपरेखा	मन्मथनाथ गुप्त	आत्माराम एण्ड संस, काश्मीरी गेट, दिल्ली
27·	प्रेमचन्द	प्रकाश चन्द्र गुप्त	साहित्य अकादमी, नई दिल्ली·
28·	प्रमथ चौधरी	अरुण कुमार मुखोपाध्याय	साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली
29·	प्रेमचन्द	मदन गोपाल	राजपाल एण्ड सन्ज, नयी दिल्ली - 2

30.	बँगला साहित्य का इतिहास	सुकुमार सेन	साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली
31.	बँगला साहित्य की कथा	डा० सुकुमार सेन	हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
32.	बँगला साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	डा० सत्येन्द्र	द्वितीय आवृत्ति, हिंदी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ
33.	बँगला और उसका साहित्य	हंसकुमार तिवारी	राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
34.	बँगला काव्य की भूमिका	हुमायून कबीर	राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
35.	बँगला के आधुनिक कवि	मन्मथनाथ गुप्त	किताब महल, इलाहाबाद
36.	बँगला (भाषा और साहित्य पर) पर हिंदी (भाषा और साहित्य) का प्रभाव	डा० ब्रह्मानन्द	आशोक प्रकाशन, नयी सड़क दिल्ली
37.	बँगाल	मन्मथनाथ गुप्त	राजपाल प्रकाशन, दिल्ली-6
38.	बँगाल साहित्य दर्शन	मन्मथनाथ गुप्त	सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली
39.	भाषा शास्त्र तथा हिंदी भाषा की रूपरेखा	डा० देवेन्द्रकुमार	शिव विद्यालय प्रकाशन वाराणसी - 1

40·	भारतेन्दु युग और हिंदी भाषा की विकास परम्परा	राम विलास शर्मा	राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
41·	भारत के पूंजीवाद में संक्रमण – ऐतिहासिक पूर्वाधार	वी·पावलोव	प्रगति प्रकाशन – सोवियत संघ
42·	भारतीय स्वतंत्रता संग्राम	डा० शीलम वेंकटेश्वर राव	प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली
43·	मानक हिंदी कोश		हिंदी साहित्य प्रयाग
44·	माइकेल मधुसूदन दत्त	अमतेन्दु बोस	साहित्य अकादमी, दिल्ली
45·	भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद दो भाग	डा० रामविलास	राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली
46·	भारतीय संगीत का इतिहास	भगवत शरण शर्मा	संगीत कार्यालय हाथरस [उ·प्र·]
47·	भाषा और मनुष्य	डा० ओम शिवराज	पूर्व प्रकाशन, नई दिल्ली
48·	भाषा और समाज	डा० रामविलास शर्मा	राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
49·	भाषा विज्ञान	डा० भोलानाथ तिवारी	किताब महल, इलाहाबाद

50.	भारत का भाषा सर्वेक्षण (खण्ड-1)	सर जार्ज ग्रियर्सन	उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान (हिंदी समिति प्रयाग) लखनऊ
51.	भारतीय समाजवादी चिंतन	लीलाराम गुर्जर	पंचशील प्रकाशन, जयपुर
52.	भाषा विज्ञान कोश	डा० भोलानाथ तिवारी	किताब महल, इलाहाबाद
53.	मुक्तिबोध रचनावली भाग - 1	संपादक -नेमिचन्द्र जैन	
54.	मुक्तिबोध रचनावली भाग-2	सं० नेमिचंद्र जैन	राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली-2
55.	राजनीति विज्ञान कोश	डा० ओमप्रकाश गार्ग	बी.आर.पब्लिशिंग कारपोरेशन, दिल्ली
56.	राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता	रामधारीसिंह दिनकर	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली.
57.	लोकजागरण और साहित्य	आ० रामचन्द्र शुक्ल सं० रामविलास शर्मा	वाणी प्रकाशन, दिल्ली
58.	साहित्य समाज विवेक तथा प्रतिबद्धता	डा० पुआन कुमार	पेनमैन पब्लिशर्स, शक्ति नगर, दिल्ली
59.	सोलहवीं शती के हिंदी और बंगला वैष्णव कवि (तुलनात्मक अध्ययन)	डा० रत्नकुमारी	भारती साहित्य मंदिर दिल्ली

60.	सदानीरा	अज्ञेय	नेशनल पब्लिशिंग हाउस नयी दिल्ली-2
61.	हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ	डा० शिवकुमार	अशोक प्रकाशन, दिल्ली
62.	हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास (अष्टम भाग	सं० विजयमोहन	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
63.	हिंदी साहित्य का इतिहास	सं० डा० नगेन्द्र	नेशनल पब्लिशिंग हाउस नयी दिल्ली
64.	हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास	डा० गणपति चन्द्र गुप्त	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
65.	हिंदी साहित्य कोश भाग - 1	संपादक- धीरेन्द्र वर्मा	ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी
66.	हिंदी साहित्य : सामाजिक चेतना	डा० रत्नाकर पाण्डेय	पाण्डुलिपि प्रकाशन, कृष्ण कृष्ण नगर, दिल्ली
67.	हिंदी नव स्वच्छंदतावाद	डा० नरेन्द्र देव वर्मा	रचना प्रकाशन, इलाहाबाद
68.	हिंदी के प्रतिनिधि कवि	गणेश शर्मा शास्त्री	सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली
69.	हिंदी साहित्य : विकास	डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी	राजकमल प्रकाशन प्राइवेट नयी दिल्ली

70.	हिंदी भाषा का इतिहास	डा० धीरेन्द्र वर्मा	ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी
71.	हिंदी साहित्य कोश भाग - 1	संपादक- धीरेन्द्र वर्मा	ज्ञान मंडल लिमिटेड, वाराणसी
72.	हिंदी विश्वकोश खण्ड - 7	संपादक: रामप्रसाद	नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
73.	हिंदी गद्य साहित्य पर समाजवाद का प्रभाव	डा० शंकरलाल जायसवाल	सरस्वती प्रकाशन मंदिर इलाहाबाद
74.	त्रिलोचन के काव्य	राजू एम फिलीप	यात्री प्रकाशन - दिल्ली-53

बंगला पुस्तकें

75.	बांगला भाषा ओ साहित्य विषयक वक्तृता	राजनारायण बसु	द न्यू बंगाल प्रेस, कलकत्ता
76.	बांगालो कविर काव्य चिंता उनिश शतक	आलोक राय	पेपिराम, कलकत्ता
78.	बांगला काव्ये पाश्चात्य प्रभाव	उज्ज्वल कुमार मजुमदार	संस्कृति प्रकाश, कलकत्ता
78.	ईश्वरगुप्तेर ग्रंथावली	ईश्वरगुप्त	वसुमति प्रकाशन कलकत्ता

79.	बांगला साहित्येतर इतिहास, भाग-1, भाग-4	सुकुमार सेन	देज पब्लिशिंग, कलकत्ता
80.	बांगलार नवजागृति	विनय घोष	संस्कृति प्रकाशन, कलकत्ता
81.	आधुनिकता ओ रवीन्द्रनाथ	अबू सईद अय्यूब	देज पब्लिशिंग, कलकत्ता

ENGLISH BOOKS

1.	Indian Renainsance	K.Ayyappa Paniker	Sterlin Publishers Pvt. Ltd. New Delhi-16
2.	India's struggle for Independance	Bipan Chandra	Penguin Books India(P) Ltd. New Delhi-19
3.	How India won Freedom	Saurav Chaudhuri	S.Chand & Company (P) Ltd. New Delhi-55
4.	History of India's Freedom movement	P.Srinivas Murthy	S.Chand & Company Pvt.Ltd. New Delhi-55
5.	British Paramountancy	R.C.Majumdar	Penguin Books India (P) Ltd. New Delhi-19.
6.	Nationalism Literature	Terry Eagleton, Fredric Jameson, Edward J.Said	University of Minnesota's Press
7.	History of Bengal	Sir Jadunath Sarkar	National Publishing House, New Delhi-2
8.	Encyclopaedia Britannica Vol.15		

9. Encyclopaedia Americana - Vol-4, 7, 23

10. Encyclopaedia of Social Science - Vol-I

11. Every man's Encyclopaedia - Vol-13

12. The New Encyclopaedia - Vol - 16.

पत्र - पत्रिकाएं

1. पूर्वाग्रह सितम्बर - दिसम्बर, 1988
मार्च - दिसम्बर, 1990

2. हंस नवम्बर, 1998